प्रकाशक—
केदारनाथ गुप्त, एम० ए०
प्रोप्राइटर—छात्रहितकारी पुस्तकमाला,
दारागंज, प्रयाग।

मुद्रक—
श्री रघुनाथप्रसाद वर्मा
नागरी प्रेस,
दारागंज, प्रयाग।

प्रस्तावना

हिन्दी के काव्य-जगत् में आदित्य की भांति आलोकित भक्तप्रवर गोस्वामी तुलसीदासजी की जीवनी के सम्बन्ध में अब तक जो कुछ लिखा गया है, एक प्रकार से अपूर्ण है। गोस्वामीजी किस संवत् में पैदा हुए थे, उनकी मृत्यु कब हुई थी, उन्होंने जन्म लेकर किस कुल को गौरवान्वित किया था, इत्यादि बातें अब तक निश्चित् नहीं हो सकीं। तथापि हिन्दी-साहित्य के इतिहास की सामग्री का अनुशीलन करनेवाले विद्वानों ने इस दिशा में अनुसन्धान करके जो कुछ निष्कर्ष निकाला है, वह भी कम विचारणीय नहीं है। यहां पर आरम्भ में गोस्वामीजी की जीवनी के सम्बन्ध में उन्हीं विद्वानों के विचारों का दिग्दर्शन कराया जायगा और अन्त में कवितावली के सम्बन्ध में कुछ लिखा जायगा।

जीवन-चरित्र

'गार्सां द तासी' नामक एक फ्रेंच विद्वान ने फ्रेंच भाषा में एक* हिन्दी-साहित्य का इतिहास लिखा था, जिसमें समर्पण तिथि १५ अप्रैल सन् १८३६ दी हुई है। पुस्तक पेरिस में ही ग्रेट-ब्रिटेन तथा आयरलैंड की प्राच्य-साहित्य-अनुवादक-समिति की ओर से मुद्रित की गई है। गार्सां का हिन्दी-साहित्य का इतिहास सबसे पुराना होने के कारण विद्वानों तथा उच्च-कक्षा के विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त महत्व का है; किन्तु मूल पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद न होने के कारण उसकी सामग्री का अभी तक समुचित उपयोग नहीं हो सका है। गोस्वामीजी

---

* इस्त्वार द ला लितरेत्योर इंदुई ए इंदुस्तानी—Histoire de la Litteraturo Hindoui et Hindoustani.

के सम्बन्ध में इस विद्वान लेखक ने जो कुछ लिखा है, वह अनुवाद रूप में नीचे दिया जाता है :—

"तुलसीदास हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकारों में अपना एक प्रमुख स्थान रखते हैं। भक्तमाल में उनके जीवन पर जो प्रकाश डाला गया है, उससे प्रकट होता है कि वे अपनी पत्नी को बहुत प्यार करते थे; राम-भक्ति की ओर प्रेरित होने का संकेत उन्हें पत्नी द्वारा ही मिला था। तदनन्तर उन्होंने भ्रमणशील जीवन को अंगीकार किया। वे बनारस गये और वहां से चित्रकूट पहुँचे, जहां पर उन्हें हनुमानजी का दर्शन हुआ और उनसे उन्हें कवित्व की ऐसी प्रेरणा मिली।.. उन्होंने अपने आपको सहज ही चमत्कार-पूर्ण बना लिया। दिल्ली तक उनका यश फैल गया। उस समय वहां शाहजहां राज्य करता था, उसने उन्हें बुला भेजा। परन्तु उनके धार्मिक सिद्धान्तों से असन्तुष्ट हो जाने के कारण उन्हें कारागार में डाल दिया गया। तब सहस्रों वानर एकत्रित हो-होकर उस कारागार को ही ध्वंस करने को आरूढ़ हो गये। शाहजहां को इस पर बड़ा विस्मय हुआ। उसने उन्हें तुरन्त मुक्त कर दिया। इसके सिवा अपने अनुचित व्यवहार के प्रायश्चित के लिए उनसे कुछ याचना करने के लिए कहा। इस पर तुलसीदासजी ने कहा कि आप पुरानी दिल्ली छोड़ दीजिये; क्योंकि यह राम का निवास-स्थान है। शाहजहां ने उनकी बातें मान ली। उसने एक नया नगर बसाया, जिसका नाम शाहजहांनाबाद रक्खा। इसके पश्चात् गोस्वामी जी वृन्दावन गये, जहां उन्होंने नाभाजी से भेंट की। वे वहां रहने भी लगे। वहां रहते हुए उन्होंने जनता को राधाकृष्ण की उपासना की अपेक्षा राम और सीता की उपासना करने की शिक्षा दी।

विल्सन साहब * ने भक्तमाल की इस अनोखी किंवदन्ती में थोड़ा और जोड़ दिया है। उसका सार यहां दिया जा रहा है। उनके

* देखो एशियाटिक रिसर्चेज़ भाग १६, पृष्ठ ४८।

कथनानुसार तुलसीदास सरयूपारीण ब्राह्मण थे। वे चित्रकूट के सन्निकट हाजीपुर के निवासी थे। प्रौढ़ावस्था में वे बनारस गये और उस नगर के राजा के मंत्रित्व का कार्य-संचालन करने लगे।

उनके आध्यात्मिक गुरु महात्मा जगन्नाथदासजी थे। श्रीजगन्नाथ-दासजी नाभाजी के शिष्य थे और नाभाजी महात्मा अग्रदास के शिष्य थे। उन्होंने अपने गुरु के साथ वृन्दावन के समीपवर्ती गोवर्द्धन पर्वत का पर्य्यटन किया। इसके बाद वे फिर बनारस लौट आये। यहीं पर ३१ वर्ष की अवस्था में, इन्होंने रामायण की रचना प्रारम्भ की। यहां निवास करते हुए उन्होंने सीताराम का एक मन्दिर बनवाया और इसके निकट ही एक विद्यालय स्थापित किया, जो अब तक विद्यमान है। इनकी मृत्यु जहांगीर* के शासनकाल में (संवत् १६८० वि० में) हुई।

रामायण की रचना पूर्वी भाषा में हुई है। यह सात काण्डों में विभक्त है। इसका प्रथम अध्याय बालकाण्ड है, जिसमें राम रूप में विष्णु का अवतार होने के कारणों पर विचार किया गया है। इसमें राम-जन्म और उनकी बाल-लीला का वर्णन है। दूसरा अयोध्याकाण्ड है, जिसमें अयोध्या में किये गये रामचन्द्रजी के कार्यों का वर्णन है। तीसरा आरण्यकाण्ड है, जिसमें वनों और मरुस्थलों में किये गये रामचन्द्रजी के कार्यों का वर्णन है। चौथा किष्किन्धाकाण्ड है। रावण सीता को अपहरण कर लंका कैसे ले गया, इसमें इसी का विवरण है। इसके पश्चात् सुन्दरकाण्ड आता है, जिसमें भगवान रामचन्द्र तथा उनकी स्त्री सीता के गुणों का वर्णन है। लङ्काकाण्ड में सीता के लंका में रहने का वर्णन है। अन्त में उत्तरकाण्ड है, जिसमें राम के लंका से अयोध्या लौटने का वर्णन है।

---

* देखो एशियाटिक रिसर्चेज़ भाग १६, पृष्ठ ४८।

रामायण का एक संस्करण खिदिरपुर (खिजरपुर) में लक्ष्मीनारायण की संरक्षकता में बाबूराम ने तैयार किया और सन् १८३२ में देवनागरी लिपि में कलकत्ता में लीथो में छपाया गया। इसके अतिरिक्त अनेक पुस्तकालयों में इसकी हस्तलिखित प्रतियां भी उपलब्ध हुई हैं। कवित्त रामायण के रूप में इसकी संक्षिप्त कथा खिज़िरपुर से प्रकाशित की गई है। तुलसीदासजी के अतिरिक्त अन्य लोगों ने भी रामायण लिखने का प्रयत्न किया है। ईस्ट-इंडिया-हाउस के पुस्तकालय में एक ऐसी ही प्रति मिली है, जिसे सन् १७२५ ई० में दिल्ली में मुहम्मदशाह ने नक़ल करवाया था। वह फ़ारसी लिपि में सूरजचन्द्र नामक किसी कवि की लिखी हुई है। रामायण के अतिरिक्त तुलसीदासजी ने जिन अन्य अनेक ग्रन्थों की रचना की है, वे इस प्रकार हैं—

१. सतसई—इसमें भिन्न-भिन्न विषयों पर १०० छन्दों का संग्रह है।
२. रामगानावली—इसके पद्य भगवान् रामचन्द्र जी की प्रशंसा में लिखे गये हैं।
३. गीतावली—इसके गीत नैतिक और धार्मिक दृष्टि से लिखे गये हैं।
४. विनयपत्रिका—इसमें कवित्त, राग और पदों में भगवान् रामचन्द्र और उनकी सहधर्मिणी सीता का यशोगान किया गया है।

विल्सन साहब के बतलाये हुए इन ग्रन्थों के अतिरिक्त वार्ड साहब ने कुछ अन्य ग्रन्थों का भी उल्लेख किया है—

रामजन्म—यह पुस्तक भोजपुरी बोली * में लिखी हुई है।
राम-शलाका—यह पुस्तक कन्नौजी बोली † में लिखी हुई है।

---

* देखो एशियाटिक रिसर्चेज भाग १६, पृष्ठ ४०।
† देखो हिन्दुओं का इतिहास भाग २, पृष्ठ ४८०।

तुलसीदास के ये समस्त ग्रन्थ भारत भर में विख्यात हैं। लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वान विल्सन साहब * तो यहाँ तक कहने के लिए तैयार हैं कि हिन्दू जनता पर, संस्कृत की असंख्य पुस्तकों से भी अधिक, इन ग्रन्थों का प्रभाव पड़ा है। यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि कथावर-माला की रचना तुलसीदासजी ने ही की थी। इसमें ऐतिहासिक आख्यान है। मैं इसके विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकता। परन्तु इसका नाम मुहम्मदबख्श की हस्तलिखित पुस्तकों की सूची में आया है और उसी से यह विदित होता है कि इसके रचनाकार तुलसीदासजी हैं।"

गोस्वामी तुलसीदासजी की जीवन-चरित्र-सम्बन्धी घटनाओं का तासी ने प्रारम्भ में जो ऊपर लिखित उल्लेख किया है, उसका आधार नाभादासजी कृत भक्तमाल ही है। भक्तमाल में गोस्वामीजी के सम्बन्ध में केवल एक ही छप्पय है, जो नीचे उद्धृत किया जाता है :—

त्रेता काव्य निबंध करी सतकोटि रमायन।
इक अच्छर उच्चरे ब्रह्म हत्यादि परायन॥
अब भक्तन सुखदेन बहुरि वपु धरि (लीला) बिस्तारी।
रामचरन रसमत्त रहत अहनिसि व्रतधारी॥
संसार अपार के पार को सुगम रूप नौका लियो।
कलिकुटिल जीव निस्तार हित वालमीकि तुलसी भयो॥

भक्तमाल की रचना† संवत् १६४२ के बाद नाभादासजी ने की थी। इस छप्पय में नाभादासजी ने वर्तमानकालिक क्रिया का प्रयोग किया है, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि श्रीनाभाजी तुलसीदासजी के समकालीन थे। संवत् १७६६ में नाभाजी के शिष्य प्रियादास ने भक्त-

* देखो एशियाटिक रिसर्चेज़ भाग १६, पृष्ठ ४६।

† देखो पंडित रामचन्द्र शुक्ल लिखित, हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १२६

माल की टीका की, जिसमें ११ छन्दों में तुलसीदासजी के सम्बन्ध में उस समय तक प्रचलित किंवदन्तियों का समावेश कर दिया। प्रियादासजी के छन्दों का संक्षिप्त अर्थ नीचे दिया जाता है :—

तुलसीदासजी अपनी पत्नी को बहुत प्यार करते थे। एक दिन वह बिना पूछे अपने मैके चली गई। तुलसीदासजी उसके प्रेम में विह्वल होकर रात्रि को ही अपनी ससुराल पहुँचे। जब स्त्री से भेंट हुई, तो उसने कहा—'इस अस्थिचर्ममंडित शरीर से इतना प्रेम रखते हो! ऐसा ही प्रेम राम के साथ करते'! वे पत्नी की यह बात सुनकर इतने प्रभावित हुए कि पछताते हुए तुरन्त ही ससुराल से काशी लौट आये। वहाँ रहकर भगवद्-भक्ति का प्रकाश पाकर संयम-नियम में उत्तरोत्तर दृढ़ होते गये ॥ ५०० ॥

एक दिन शौच का अवशिष्ट जल पाकर कोई एक विशेष भूत प्रकट होकर प्रसन्नता-पूर्वक उनसे वार्तालाप करने लगा। उसने कहा कि एक स्थान पर रामायण की कथा होती है। वह बड़ी श्रुतिमधुर है। एक व्यक्ति उसे सुनने को सबसे पहले आता और सबसे पीछे जाता है। उसका रूप घृणास्पद है। वे हनुमानजी हैं। तुलसीदासजी एक बार इसी प्रकार के व्यक्ति के पीछे चलते हुए उन्हें पहचान गये। हृदय में उनकी भक्ति का उद्भव हुआ और जब हनुमानजी एक बन के बीच में पहुँचे तो वे दौड़कर उनके पैरों से लिपट गये। सीत्कार करते हुए उनसे कहने लगे—हमें छुड़ा न सकोगे। मैंने रस-तत्त्व को समझ लिया है। जैसा सुना था, आपने वैसा ही रूप धारण कर रक्खा है ॥ ५०१ ॥

उन्होंने कहा—वर माँगो। वे बोले—उपमारहित रूपवान उन राजा रामचन्द्रजी का दर्शन करवाइये, जिनको देखने के लिए मेरे नेत्र नित्य ही अत्यन्त अभिलषित रहते हैं। उन्होंने संकेत से बतला दिया। उसी दिन से उनमें उनकी भक्ति हो गई और उसी समय से

उनको कवित्व का भी ज्ञान हो गया। एक दिन रामचन्द्र जी के साथ लक्ष्मणजी रंगीन घोड़े पर चढ़े हुए आये। हनूमानजी ने पीछे से आकर पूछा—प्राण प्यारे आये थे, क्या तुमने देखा ? उन्होंने कहा—मैंने तो उन्हें ज़रा भी नहीं देखा। तब हनुमानजी ने कहा—ख़ैर, इतना ही बहुत है ॥ ५०२ ॥

एक बार एक ब्राह्मण ब्रह्महत्या करके तीर्थाटन करते हुए आया। वह "राम-राम" कहता हुआ बोला—मुझ हत्यारे का पातक निवारण कीजिये। सुन्दर 'राम' का नामोच्चारण सुनकर उन्होंने उसे अपने निवासस्थान पर बुलाया, फिर उसके हाथ का प्रसाद लेकर उसे शुद्ध कर लिया। इस पर विरोध में ब्राह्मणों की सभा हुई। उसमें उन्हें बुलाया गया। लोगों ने पूछा—बताओ, कैसे पाप-मोक्ष हुआ ? नहीं तो साथ ही तुम भी समाज से अलग हो जाओ। तब उन्हें तुलसीदास जी ने बतलाया—तुम पुस्तक तो पढ़ते हो, पर तुम लोगों के हृदयों में सच्चा भाव अब भी नहीं आया। तुम्हारा ज्ञान कच्चा है। वह अन्धकार को दूर नहीं करता ॥ ५०३ ॥

लोगों ने कहा—पुस्तकें हम लोगों ने देखी हैं। नाम की जो महिमा कही गई है वह भी सच्ची है; फिर भी हत्या करने पर कोई कैसे तर सकता है। बतलाइये तो ! इस पर उन्होंने कहा—जब इसके हाथ की वस्तु शिव-नन्दी ग्रहण कर ले, तब तो आप हमें समाज में लेंगे ? तब तो विश्वास होगा ? (तब सबने यह शर्त मान ली) उस ब्राह्मण के हाथ पर, थार में, प्रसाद दिया गया। नन्दी ने उसे ग्रहण कर लिया। तब तुलसीदासजी ने कहा—अब तो नाम के प्रसाद का बोध हुआ ? यह सुनकर सब मुग्ध हो गये। उनके जय-जयकार की ध्वनि करने लगे। बोले—आपने इसको जैसा कुछ समझा, उसका वर्णन हम लोग अब कैसे कर सकते हैं ! (वह वर्णनातीत है) ॥ ५०४ ॥

एक बार तुलसीदासजी के यहां चोर चोरी करने के लिए आये। चोरों ने देखा—कोई श्यामवर्ण का आदमी धनुष-बाण लिये हुए पहरा दे रहा है। ज्योंही वे भीतर जाने की चेष्टा करते, त्योंही वह बाण चलाने का उपक्रम करता। (बड़ी रात तक यही होता रहा।) अन्त में चोर लोग चले गये। सवेरा होने पर तुलसीदासजी से एक ने पूछा—वह श्यामकिशोर कौन है, जो रात भर आपकी ड्योढ़ी पर पहरा देता है? (तुलसीदासजी यह सुनकर बहुत दुखी हुए।) मौन रहकर वे अश्रुपात करने लगे। यह जानकर कि यह पहरा अपने भक्त के लिए राजा रामचन्द्रजी ने ही दिया है, उन्होंने अपना सब संचित धन कँगलों को लुटा लिया। तबसे उन्होंने निर्धन रहने की शिक्षा लेकर अपने आपको निश्चिन्त कर लिया॥ ५०५॥

एक ब्राह्मण मर गया था। उसकी स्त्री मृतक पति के शव के साथ हो ली। उसने गोस्वामीजी को देखकर उन्हें दूर से प्रणाम किया। तुलसीदास जी ने आशीर्वाद में कहा—"सौभाग्यवती रहो।" उसने कहा—"मेरा पति तो मर गया है मैं सती होने जा रही हूँ।" तब उन्होंने उत्तर दिया—"अब तो मैंने जो कहा सो कहा। जाओ, राम का ध्यान करो।" स्त्री चली गई। उसने अपने कुटुम्बियों से कहा—राम की भक्ति से सब सिद्ध हो सकता है। तब वह बात पूरी हुई। भगवत् कृपा से उसका पति जी उठा। उसकी साधना सिद्ध हुई। उसकी व्याघ मिट गई। जो भगवान की भक्ति करता है, उसकी मनोकामना पूरी होती है। वह कभी विमुख नहीं जाता॥ ५०६॥

दिल्ली-अधिपति तत्कालीन सम्राट ने तुलसीदासजी के पास आदमी भेजकर उन्हें बुलाया। दूत ने उनसे कहा—"आपने ब्राह्मण को जीवित कर दिया था, उसकी बात वे सुन चुके हैं। वे आपको देखना चाहते हैं। उन्होंने बहुत विनय-पूर्वक आपको बुलाया है। आप उनकी प्रार्थना स्वीकार कीजिये।" इस पर वे सम्राट के पास गये। सम्राट ने आदरपूर्वक उन्हें उच्च आसन पर बैठाया। मृदुल संभाषण करते हुए उसने

कहा—"आपके चमत्कारों ने संसार में प्रसिद्धि पाई है। ऐसा ही कोई चमत्कार यहां भी दिखलाइये। तुलसीदासजी ने कहा—चमत्कार की सब बातें झूठी हैं। केवल राम को पहचानो ॥ ५०७ ॥

'देखना चाहता हूँ, वे कैसे राम हैं?' ऐसा कहकर उसने उन्हें कैद करवा दिया। तब तुलसीदासजी ने हनुमानजी से प्रार्थना की। कहा—अब कृपालु बनकर हम पर दया कीजिये। उसी क्षण करोड़ों नवीन बन्दर वहां फैल गये। वे लोगों को नोचते, बेगमों के वस्त्र खींचते किले की चहारदीवारी तोड़ते, लोगों पर चोट करते, सब कुछ तोड़ते-फोड़ते धराशायी करते, सारांश यह कि नितान्त प्रलयकाल ही उपस्थित करने लगे। लोग चीत्कार करके कहने लगे—अब किसकी शरण ग्रहण करें (कहां जायँ?) इस दुख-सागर को देख (उसका स्वाद चख) सम्राट की आंखें हुईं (उसकी आंखें खुलीं)। वह कहने लगा—मैं यह सब धन-माल न्यौछावर करने को तैयार हूं। अब वे हमारी रक्षा करें ॥ ५०८ ॥

सम्राट आये; बोले—तुमने दिया, हमने पाया। अब हमारे प्राण बचाइये। इस पर तुलसीदासजी ने कहा—"तनिक चमत्कार तो देख लीजिये।" सम्राट लज्जा से दब गये। तब तुलसीदासजी ने कहा—अब तो यह घर रामचन्द्रजी का हो गया। आप इस किले को त्याग दीजिये। सम्राट ने किला छोड़ दिया और अपने लिए उसने नया किला बनवाया। इसके पश्चात् तुलसीदासजी काशी गये। फिर वृन्दावन जाकर नाभाजी से मिले ॥ ५०९ ॥

(वृन्दावन के एक मन्दिर में) भगवान कृष्ण की मूर्ति देखकर कहा—मेरे नयनों में तो केवल एक राम के ही इष्ट के भाव जमे हुए हैं। तब उस मूर्ति ने वैसा ही स्वरूप धारण कर लिया। अपने मन के अनुरूप पाकर तुलसीदासजी को वह मूर्ति बहुत अच्छी लगी। किसी

ने कहा—कृष्णावतार की महत्ता अधिक है। किसी ने कहा—राम में उनका अंश है। इस पर अपने मत के अनुसार उन्होंने कहा—मेरा अनुराग तो राम से है। उन्हीं दशरथ-पुत्र को मैं अनूप मानता हूँ। उन्हीं में ईश्वरत्व है, जिससे मेरे मन में करोड़ों बार भक्ति का जागरण हुआ है॥ ५१०॥

भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास ने गोस्वामीजी के सम्बन्ध में उस समय प्रचलित समस्त बातों का समावेश अपनी टीका में कर दिया है। चमत्कार-पूर्ण होने के कारण यद्यपि ऊपर की घटनाओं का कोई विशेष ऐतिहासिक महत्व नहीं है, फिर भी गोस्वामीजी के प्रायः सभी जीवनी-लेखकों ने स्वलिखित जीवन-चरित्र में इन विचारों को स्थान दिया है। पत्नी की प्रेरणा से राम-भक्ति, हनुमानजी के दर्शन तथा दिल्ली के बादशाह से मिलने की कथा तासी ने भी इसी टीका से ली है। प्रियादास ने बादशाह का नाम नहीं लिखा है। आपने केवल इतना ही निर्देश किया है:—

दिल्लीपति बादशाह अहिदो पठाए लैन॥

किन्तु तासी ने तो स्पष्ट रूप से शाहजहां का नाम लिखा है। शाहजहां का राजत्वकाल संवत् १६८४ से संवत् १७१५ तक था। इधर गोस्वामीजी का परलोक-गमन सम्भवतः संवत् १६८० में हो चुका था। पता नहीं, तासी ने शाहजहां का नाम कैसे लिख दिया? आगे चलकर विद्वान लेखक ने विल्सन साहब का मत उद्धृत किया है, जिन्होंने स्पष्ट रूप से लिखा है कि गोस्वामीजी की मृत्यु जहांगीर के राजत्वकाल में हुई थी। जहांगीर का समय संवत् १६६२ से १६८४ तक है और इस प्रकार विल्सन साहब का मत गोस्वामीजी के मृत्यु-सम्बन्धी लोक-प्रचलित संवत् से ठीक मिल जाता है। इस सम्बन्ध में कुछ और विचारों का दिग्दर्शन नीचे कराया जाता है।

कवितावली के एक छन्द* में गोस्वामीजी ने क्षेम-करी का शुभ दर्शन करते हुए अपने महा-प्रस्थान की चर्चा की है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि कवितावली के कतिपय छन्द गोस्वामीजी की इहलीला समाप्त करने के कुछ ही दिन पूर्व लिखे गए थे। उधर कवितावली के निम्न-लिखित छन्द में गोस्वामीजी ने काशी में महामारी के प्रकोप की भी चर्चा की है :—

मृत्यु

आस्रम बरन कलि-बिवस विकल भय,
निज निज मरजाद मोटरी सी डार दी।
संकर सरोष महामारी ही तें जानियत,
साहिब सरोष दुनी दिन दिन दार दी।
नारि नर आरत पुकारत सुनै न कोउ,
काहू देवतनि मिलि मोटी मूठि मार दी।
तुलसी सभीत-पाल सुमिरे कृपालु राम,
समय सुकरुना सराहि सनकार दी।

उत्तरकाण्ड ॥ १८३ ॥

इस महामारी के सम्बन्ध में प्रयाग-विश्वविद्यालय के स्नातक बाबू माताप्रसाद गुप्त एम्० ए०, एल्-एल्० बी० ने सम्राट जहांगीर के शब्दों में ही एक सुन्दर ऐतिहासिक प्रमाण ढूँढ़ निकाला है।†

* कुंकुम रंग सुअंग जितो, मुखचंद सों चंद सों होड़ परी है।
बोलत बोल समृद्धि चुवै, अवलोकत सोच विषाद हरी है॥
गौरी कि गंग बिहंगिनि बेष, कि मंजुल मूरति मोद भरी है।
पेखि सप्रेम पयान समै सब सोच बिमोचन छेमकरी है॥
(उत्तरकाण्ड १८०)

† श्रीमाताप्रसाद गुप्त : 'तुलसी-संदर्भ' पृष्ठ २१

उसके अनुसार इसका प्रकोप पंजाब, लाहौर तथा दिल्ली में संवत् १६७३ में हुआ था। काशी में इसके फैलने का कोई निश्चित समय किसी इतिहास-लेखक ने नहीं दिया है, किन्तु गुप्तजी का अनुमान है कि यहां पर यह संवत् १६७६-१६८० के बीच प्रकट हुई होगी। गोस्वामीजी की मृत्यु महामारी से नहीं हुई, फिर भी इतना अनुमान अवश्य किया जा सकता है कि इसके आस-पास ही यह घटना हुई होगी। आपके गोलोकवास के सम्बन्ध में निम्नलिखित दोहा जनता में अत्यधिक प्रचलित है :—

संवत् सोरह सै असी, असी गङ्ग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो सरीर।

किन्तु बाबा वेणीमाधवदास-कृत गोसाईं-चरित में दूसरी पंक्ति इस प्रकार है :—

श्रावण कृष्णा तीज शनि तुलसी तज्यो सरीर॥

गोस्वामीजी के घनिष्ट मित्र टोडर के वंश में तुलसीदासजी की मृत्यु-तिथि के दिन एक सीधा देने की परिपाटी अब तक चली आती है। और वह सीधा श्रावण के कृष्णपक्ष में तृतीया के दिन दिया जाता है। इससे वेणीमाधवदास के कथन की पुष्टि हो जाती है। वेणी-माधव कृत गोसाईंचरित की प्रामाणिकता के विषय में, मैं आगे चल कर विचार करूँगा। किन्तु यहां पर इतना जान लेना आवश्यक है कि गोस्वामीजी की मृत्यु के सम्बन्ध में अनुप्रास-युक्त ऊपर का दोहा बहुत प्रसिद्ध है। विल्सन साहब ने भी इनकी मृत्यु का संवत् १६८० ही माना है। काशी में महामारी फैलने का समय भी यही है। अतएव ऐसा कोई कारण नहीं प्रतीत होता कि परम्पराकथित उनकी इस निधन तिथि को प्रामाणिक न माना जाय। फिर एक बात यह भी है कि विल्सन साहब को गोसाईंचरित का पता न था। नहीं तो इसका

उल्लेख वे अवश्य करते। नाभाजी के भक्तमाल और उनके शिष्य प्रियादासजी की टीका में भी गोस्वामीजी की मृत्यु के सम्बन्ध में इस संवत् का उल्लेख नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसीदासजी की मृत्यु के सम्बन्ध में यह दोहा जनता में बहुत दिनों से प्रचलित था और उसका उपयोग विल्सन साहब तथा वेणीमाधवदास ने स्वतन्त्र रूप से किया है। इस सम्बन्ध में दोनों का स्रोत सम्भवतः एक ही रहा है; और वह है जन-श्रुति।

× × ×

गोस्वामी तुलसीदासजी के दो जीवन-चरितों का अब तक पता लगा है। एक तो उनके शिष्य बाबा वेणीमाधवदास कृत गोसाईं चरित है, जिसका उल्लेख शिवसिंहसरोज में भी जन्म तथा कुल मिलता है। दूसरा उनके एक और शिष्य महात्मा रघुवरदासजी कृत तुलसीचरित कहा जाता है, जिसकी सूचना 'मर्यादा' पत्रिका की ज्येष्ठ १९६९ वि० की संख्या में श्रीयुत इन्द्रदेवनारायणजी ने दी थी। गोसाईंचरित में तुलसीदासजी के जन्म और कुल के सम्बन्ध में निम्नलिखित विवरण दिया हुआ है :—

"सरवार सुदेस के विप्र बड़े। सुचिगोत परासर टेक कड़े॥
सुभ थान पतेजि रहे पुरपे। तेहिते कुल नाम पड़ो दुरपे॥
जमुना तट दूबन को पुरवा। बसते सब जातिन कौ कुरवा॥
सुकृती सतपात्र सुधी मपिया। रजियापुर राजगुरू मुखिया॥
तिनके घर द्वादस मास परे। जब कर्क के जीव हिमांसु चरे॥
कुज सप्तम अष्टम भानु तनै। अभिहित सुठि सुन्दर साँझसमै॥

पंद्रह सै चौवन विषै, कालिन्दी के तीर।
सावन सुक्ला सत्तिमी, तुलसी धरेउ सरीर॥"

ऊपर लिखित उद्धरण से ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसीदासजी पराशर गोत्री सरवरिया ब्राह्मण थे और उनका जन्म संवत् १५५४ में हुआ था। यद्यपि वेणीमाधवदासजी ने कहीं भी उन्हें दुवे नहीं लिखा है, तथापि पत्यौजा से उनकी वंश-परम्परा को आरम्भ करना ही उन्हें दुवे प्रमाणित करता है। काष्ठजिह्वा स्वामी ने भी कहा है—'तुलसी परासर गोत दुवे पत्यौजा के।' तुलसीदासजी के पिता यशस्वी विद्वान् और सत्पात्र थे। मूल गोसाईंचरित में उनका नाम नहीं मिलता। किन्तु जनश्रुति के अनुसार गोस्वामीजी के पिता का नाम आत्माराम दुवे कहा जाता है। उनकी माता का नाम हुलसी था, इसका उल्लेख मूल गोसाईंचरित में मिलता है; जैसा कि निम्नलिखित पद से स्पष्ट है :—

"हुलसी प्रियदासि सों लागि कहै। सखि प्रान पखेरु उड़ान चहै।।"

× × ×

चुपचाप चई सो गई सिसुलै। हुलसी उर सूनु वियोग फबै॥

प्रसिद्ध कवि रहीम कवि का भी, इनकी माता के सम्बन्ध में, निम्नलिखित दोहा प्रसिद्ध है :—

सुरतिय, नरतिय, नागतिय, यह जानत सब कोय।
गर्भ लिये हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय।

अब बाबा रघुवरदासजी के "तुलसी-चरित" पर एक दृष्टि डालने की आवश्यकता है। उनके मतानुसार गोस्वामीजी के प्रपितामह परशुराम मिश्र सरवार प्रान्त में मझौली से तेइस कोस पर कसया ग्राम के निवासी थे। वे तीर्थाटन करते हुए चित्रकूट पहुँचे और उसी ओर राजापुर में बस गये। उनके पुत्र शंकर मिश्र हुए। शंकर मिश्र के रुद्रनाथ मिश्र और उनके मुरारी मिश्र हुए, जिनके पुत्र तुलाराम ही

आगे चलकर भक्तप्रवर महाकवि तुलसीदास के रूप में हिन्दी-साहित्य-जगत में अवतीर्ण हुए।

तुलसीदासजी के इन दोनों जीवन-चरितों के वृत्तान्तों में परस्पर पर्य्याप्त विरोध है, किन्तु उनमें यत्र तत्र कुछ सादृश्य भी है। दोनों ने गोस्वामीजी को सरवरिया ब्राह्मण माना है और उनका जन्म संवत् १५५४ वि० दिया है। इस संवत् को तुलसीदासजी का जन्म-संवत् ग्रहण करने से और १६८० निधन संवत् मानने से उनकी अवस्था १२६-१२७ वर्ष ठहरती है। शिवसिंहसरोजकार ने लिखा है कि गोस्वामीजी संवत् १५८३ के लगभग उत्पन्न हुए थे। मिर्ज़ापुर के प्रसिद्ध रामभक्त और रामायणी पंडित रामगुलाम द्विवेदी भक्तों की जनश्रुति के आधार पर इनका जन्म संवत् १५८९ मानते हैं। डाक्टर सर जार्ज ग्रियर्सन ने भी इस पिछले संवत् को ही स्वीकार किया है। किन्तु तासी ने अपने इतिहास में विल्सन साहब का उद्धरण देते हुए लिखा है :—

'गोस्वामीजी ने केवल इकतिस वर्ष की अवस्था में रामचरित मानस की रचना की।' रामचरितमानस में स्वयं कवि ने उसका रचना-काल संवत् १६३१ दिया है। गोस्वामीजी के सम्बन्ध में एक यही ऐसी तिथि है, जिसकी ऐतिहासिकता पर किसी प्रकार का आक्षेप नहीं किया जा सकता। यदि तुलसीदासजी ने सचमुच इकतिस वर्ष की अवस्था में रामायण की रचना की, तो उनका जन्म संवत् १६०० के आसपास ठहरता है। रामायण की प्रौढ़ शैली को देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह गोस्वामीजी के मध्यकालीन जीवन की रचना है। इसकी रचना के समय गोस्वामीजी केवल 'नाना पुराण निगमागम' के कोरे विद्वान् ही नहीं थे; किन्तु संसार के दुख-सुख तथा अनेक अनुभवों से भी अपरिचित न थे। यदि गोस्वामीजी का जन्म संवत् १५५४ था, तो रामायण की रचना के समय उन की अवस्था ७७ वर्ष की थी। इस वृद्धावस्था में गोस्वामीजी ने रामायण का आरम्भ किया, इसमें

आश्चर्य प्रतीत होता है। शिवसिंह सेंगर के मतानुसार रामायण की रचना के समय गोस्वामीजी की अवस्था ४८ वर्ष की ठहरती है और पंडित रामगुलाम द्विवेदी तथा डाक्टर ग्रियर्सन के मतानुसार रामायण की रचना के समय उनकी अवस्था ४२ वर्ष ही ठहरती है। तर्क की दृष्टि से जन्म के सम्बन्ध में पंडित रामगुलाम द्विवेदी तथा डाक्टर ग्रियर्सन द्वारा समर्थित संवत् ही ठीक प्रतीत होता है। इस समय कवि अपने जीवन के मध्यकाल में था। वह उस समय अपने पांडित्य तथा सांसारिक अनुभवों के बल पर रामचरित-मानस जैसे सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ की रचना करने के सर्वथा योग्य था।

बाबू श्यामसुन्दरदास तथा डाक्टर पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने मूल गोसाईंचरित के आधार पर गोस्वामीजी का जन्म संवत् १५५४ ही माना है। आप लोग हिन्दुस्तानी एकेडेमी से प्रकाशित "गोस्वामी तुलसीदास" में पृष्ठ ३१ पर लिखते हैं :—

"यह बात अवश्य है कि १५५४ गोसाईंजी का जन्म संवत् मानने से उनकी १२६ वर्ष की लम्बी आयु हो जाती है, जिस पर बहुत से लोगों की विश्वास करने की प्रवृत्ति न होगी। परन्तु आजकल भी समाचार-पत्रों में डेढ़-डेढ़ सौ वर्ष की अवस्थावालों के समाचार छपते ही रहते हैं। तब एक संयमी योगी महापुरुष की १२६ वर्ष की आयु पर क्यों अविश्वास किया जाय ?"

अविश्वास करने की तो इसमें सचमुच कोई बात नहीं, किन्तु तुलसीदासजी के इस जन्मसंवत् को स्वीकार करने के पूर्व एक बार विद्वान् लेखकों को मूल गोसाईंचरित की प्रामाणिकता पर भी विचार कर लेना आवश्यक था। केवल समाचार-पत्रों की बातों का उल्लेख करके इस बात की ऐतिहासिकता प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती। हर्ष की बात है कि इस विषय का सम्यक रूप से

प्रतिपादन श्रीगुप्तजी ने स्वलिखित पुस्तक में किया है। आप अपनी पुस्तक के पृष्ट २३ पर "मूल गोसाईंचरित की ऐतिहासिकता पर कुछ विचार" शीर्षक के अन्तर्गत लिखते हैं—

"वेणीमाधवदास लिखते हैं कि मीन की सनीचरी के उतरते ही (मीन की सनीचरी का अंत १६४२ वि० के ज्येष्ठ में हुआ था) काशीपुरी में मरी का प्रकोप हुआ। उसे गोसाईंजी ने भगवान् से विनय करके भगा दिया। मरी के पीछे ही केशवदास गोस्वामीजी के दर्शनार्थ आये और एक ही रात्रि में उन्होने रामचन्द्रिका ऐसे बड़े काव्य-ग्रन्थ की रचना कर डाली। इस प्रकार मूल गोसाईंचरित के अनुसार जान पड़ता है, रामचन्द्रिका की रचना संवत् १६४३ के लगभग हुई है; किन्तु यह नितान्त अशुद्ध है; क्योंकि उक्त ग्रन्थ में ही स्पष्ट शब्दों में लिखा हुआ है कि उसकी रचना संवत् १६५२ में कार्तिक सुदी १२ बुधवार को समाप्त हुई, इसे इन्द्रजीतसिंह ने बनवाया था। अतएव मूल गोसाईंचरित का उल्लेख इस विषय में अत्यन्त अपूर्ण जान पड़ता है।"

'मूल गोसाईंचरित की ऐतिहासिकता' पर विचार करने का एक और ढंग है। और वह है इसके व्याकरण के ढांचे का अध्ययन। इस प्रकार के अध्ययन से इसके काल-निर्णय में अमूल्य सहायता मिलती। किन्तु स्थानाभाव से यहां इस बात का प्रयत्न न किया जा सकेगा। मेरा तो इस ग्रन्थ के विषय में यही अनुमान है कि गोस्वामीजी की मृत्यु के बहुत दिनों पश्चात् इसका निर्माण हुआ और उसके कर्ता ने तुलसीदासजी के सम्बन्ध में उस समय तक प्रचलित समस्त किंवदन्तियों का समावेश इसमें अत्यन्त चतुरता के साथ कर दिया।

तुलसीदासजी के गुरू — रामायण में अपने गुरू की वन्दना करते हुए गोस्वामीजी ने लिखा है :—

वन्दौं गुरु-पद कंज, कृपा-सिन्धु नर .रूपहरि।
महामोह तम पुंज, जासु वचन रविकर निकर॥

इस सोरठे के "नररूप हरि" के आधार पर कुछ विद्वानों ने नरहरिदास को इनका गुरु माना है। ये नरहरिदास रामानन्दजी के द्वादश शिष्यों में से बतलाये जाते हैं। मानस के प्रसिद्ध प्रेमी पंडित विजयानन्दजी त्रिपाठी के अनुमान के अनुसार 'हरि' के स्थान पर 'हर' पाठ होना चाहिये। इस प्रकार गोस्वामीजी ने स्वयं भगवान शंकर को ही अपना गुरु माना है। पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने 'हरि' शब्द का पर्य्यायवाची 'सिंह' लेकर अपनी रामायण की टीका की भूमिका में तुलसीदासजी के गुरू का नाम नरसिंह दिया है। मूल गोसाईंचरित में इनके गुरू का नाम 'नरहर्य्यानन्द' दिया है। तासी ने विल्सन साहब का मत उद्धृत करते हुए इनके आध्यात्मिक गुरू का नाम जगन्नाथदास दिया है। यदि 'नररूपहरि' पाठ को ही ठीक मान लिया जाय, तोभी इसका एक अर्थ मनुष्य रूप में भगवान हो सकता है। अतएव केवल इस सोरठे के बल पर नरहरिदासजी को गोस्वामीजी का गुरू मान लेना युक्ति-संगत नहीं प्रतीत होता।

गोसाईंचरित की ऐतिहासिकता पर ऊपर विचार हो चुका है। अतएव उसके आधार पर गुरू के सम्बन्ध में किसी निर्णय पर नहीं पहुँचा जा सकता। पंडित रामनरेश त्रिपाठी की कल्पना नवीन अवश्य है; किन्तु जनश्रुति अथवा कोई भी ऐतिहासिक प्रमाण इसकी साक्षी में उद्धृत नहीं किया जा सकता। एक बात इस सम्बन्ध में और है। गुरू का नाम लेना शास्त्र-वर्जित है। गोस्वामीजी शास्त्र की मर्यादा का पालन करने में सदैव कटिबद्ध रहते हैं। ऐसी अवस्था में वे गुरू का नाम स्पष्ट क्यों लिखते? इस सम्बन्ध में कुछ भी निश्चित् रूप से नहीं कहा जा सकता। यदि कल्पना ही का सहारा लेना है, तो इनके गुरू का नाम जगन्नाथदास भी हो सकता है। हरि

का पर्य्यायवाची जगन्नाथ होता है। गोस्वामीजी अपने इस सोरठे में मनुष्य रूप में अपने गुरू उन्हीं जगन्नाथदासजी की वन्दना करते हैं। इस विषय में अनुसंधान की विशेष आवश्यकता है। विल्सन साहब ने तो स्पष्ट रूप से जगन्नाथदास को गोस्वामीजी का आध्यात्मिक गुरू लिखा है और यह भी लिखा है कि ये जगन्नाथदासजी नाभादासजी के शिष्य थे।

दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता में लिखा है कि तुलसीदासजी अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि नन्ददासजी के भाई थे। इसमें स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है कि नन्ददासजी का कृष्णोपासक होना उनके भाई राम के अनन्य भक्त तुलसीदासजी को अच्छा नहीं लगा और उन्होंने उलाहना लिखकर भेजा :—

तुलसीदास और नन्ददास

'सो एक दिन नन्ददासजी के मन में ऐसी आई। जैसे तुलसीदास जी ने रामायण भाषाकरी है सो हम हूँ श्रीमद्भागवत भाषा करैं।"

गोस्वामीजी का नन्ददासजी के साथ वृन्दावन जाना और वहां "तुलसी मस्तक तब नवै धनुष-बान लेओ हाथ" वाली घटना भी उक्त वार्ता में लिखी है। इसी के आधार पर कवितावली के टीकाकार पंडित ठाकुरप्रसाद शर्मा एम० ए०, एल्-एल्० बी० अपनी टीका की भूमिका के पृष्ठ १२ पर लिखते हैं :—

"सम्भव है कि वह नन्ददासजी के भाई ही हों और बाल्यावस्था से ही पृथक हो जाने के कारण उन्होंने रुचि अथवा परिस्थिति के अनुसार भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों को अपनाया हो।"

पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने भी अपनी रामायण की टीका में 'वार्ता' को उद्धृत करते हुए गोस्वामीजी को नन्ददास का भाई बतलाया है। अब प्रश्न यहां पर यह उठता है कि जब यह बात चिर

प्रसिद्ध है कि तुलसीदासजी की माता का उनके जन्म लेते ही देहान्त हो गया था। फिर नन्ददास, जो उनके छोटे भाई वतलाये गये हैं, पैदा किससे हुए ? इस शंका का समाधान करते हुए त्रिपाठीजी ने लिखा है—"मेरा अनुमान है कि तुलसीदास नन्ददासजी के चचेरे भाई थे।"

उधर दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता को ठीक मान लेने के पूर्व एक बार उसकी प्रामाणिकता पर भी विचार करने की आवश्यकता है। इस विषय पर डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा एम० ए० का एक बहुत ही सारगर्भित लेख "हिन्दुस्तानी" पत्रिका में अप्रैल सन् १९३२ में प्रकाशित हुआ है। इसका शीर्षक है—"क्या दो सौ बावन वार्ता गोकुलनाथ कृत है ?" आप हिन्दुस्तानी के पृष्ठ १८७ पर लिखते हैं—"अब मैं एक ऐसा प्रमाण देना चाहता हूँ, जो व्यापक रूप से समस्त ग्रन्थ पर लागू होता है और जिससे स्पष्ट रीति से यह सिद्ध हो जाता है कि ८४ वार्ता तथा २५२ वार्ता के रचयिता दो भिन्न-भिन्न व्यक्ति थे और २५२ वार्ता निश्चित् रूप से सत्रहवीं शताब्दी के बाद की रचना है। "ब्रजभाषा का विकास" शीर्षक खोज ग्रन्थ की सामग्री जमा करते समय मैंने चौरासी तथा दो सौ बावन वार्ताओं के व्याकरण के ढांचों का भी अध्ययन किया था। इस अध्ययन से मुझे यह बात आश्चर्य्यजनक मालूम हुई कि इन दोनों वार्ताओं के व्याकरण के अनेक रूपों में बहुत अन्तर है।*

इसके बाद व्याकरण के रूपों तथा वाक्यों की तुलना करते हुए वर्माजी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि दो सौ बावन वार्ता गोकुलनाथ कृत नहीं हो सकती। कदाचित चौरासी वार्ता के अनुकरण में सत्रहवीं शताब्दी के बाद किसी वैष्णव भक्त ने इसकी रचना की होगी।

---

* देखिये हिन्दीस्तानी भाग २, अङ्क २, अप्रैल १९३२, पृष्ठ १८७।

वार्ता की प्रामाणिकता पर दूसरे ढंग से विचार करते हुए हिन्दी के विद्वान आलोचक तथा इतिहास-लेखक पंडित रामचन्द्र शुक्ल भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं। आप अपने हिन्दी-साहित्य के इतिहास में लिखते हैं :—

"गोस्वामीजी का नन्ददासजी से कोई सम्बन्ध न था, यह बात पूर्णतया सिद्ध हो चुकी है। अतः उक्त वार्ता की बातों को, जो वास्तव में भक्तों का गौरव प्रचलित करने और वल्लभाचार्य्य की गद्दी की महिमा प्रकट करने के लिए पीछे से लिखी गई है, प्रमाण कोटि में नहीं ले सकते।"*

ऊपर वार्ता की प्रामाणिकता के विषय में लिखा जा चुका। अब यह बात स्पष्ट हो जाती है कि केवल साम्प्रदायिक गौरव को महत्व देने के लिए वार्ता में तुलसीदासजी का नन्ददासजी के भाई होने का सम्बन्ध जोड़ा गया है। पर वास्तव में तुलसीदासजी का नन्ददासजी के साथ कोई सम्बन्ध नहीं था। ऐसा जान पड़ता है कि गोस्वामी तुलसीदासजी की अत्यधिक प्रतिष्ठा-संवृद्धि होते देखकर पीछे से किसी वैष्णव भक्त ने उनका नन्ददासजी के साथ इस प्रकार का सम्बन्ध जोड़ दिया है।

तुलसीदासजी की जन्म-भूमि

गोस्वामी तुलसीदासजी की जन्म-भूमि के विषय में भी अनेक कल्पनाएँ की गई हैं। बाबू शिवनन्दनसहाय के मत से 'तारी' ही तुलसीदासजी का जन्म-स्थान है। बाबू श्यामसुन्दरदास तथा डाक्टर बड़थ्वाल राजापुर इनका जन्म-स्थान मानते हैं। उधर तासी ने विल्सन साहब के मत को उद्धृत करते हुए लिखा है :—

---

* देखिये हिन्दी-साहित्य का इतिहास पृष्ठ १६८।

Selon ces documents, Tulcidas etait un Brahmane de la branche des serwariah. et natif d' Hajipur, pres de chitrakuta.†

अर्थात् "तुलसीदास सरवरिया ब्राह्मण थे और चित्रकूट के सन्निकट हाजीपुर के निवासी थे।" तुलसीदासजी की जन्मभूमि के विषय में सबसे अन्तिम खोज पण्डित रामनरेश त्रिपाठी की है। पण्डितजी अक्टूबर सन् १६३५ में इस पुनीत स्थान की खोज के लिए अन्त में घर से निकल ही पड़े और भिन्न-भिन्न स्थानो में होते हुए तारीख २० अकटूबर को सोरों पहुँचे। वहां पर वे विद्वद्वर पंडित गंगावल्लभ पांडेय "व्याकरणाचार्य्य" "काव्यतीर्थ" "न्यायशास्त्री" "वैद्यराज" "प्रिंसिपल मेहता-संस्कृत-विद्यालय" पंडित गोविन्द वल्लभ शास्त्री तथा अन्य कतिपय विद्वानों से मिले। इसके पश्चात् आपने राह चलते हुए साधारण व्यक्तियों से, जिसमें हिन्दू मुसलमान दोनों सम्मिलित थे, पूँछतांछ की; सबने गोस्वामीजी की जन्मभूमि सोरों बतलाई! योगमार्ग मुहल्ले में आपने गोस्वामीजी का घर भी देखा और सोरों के पास ही एक फलांग की दूरी पर बदरिया नामक गांव में आपने तुलसीदासजी की ससुराल भी देखली। इन प्रमाणों के रहते हुए पंडितजी को गोस्वामी जी की जन्मभूमि सोरों मानने के लिए बाध्य होना पड़ा। किन्तु आपने शुद्ध अनुसन्धान की प्रवृत्तिवाले विद्यार्थी के समान केवल इन्ही प्रमाणों से सन्तोष न करके इसमत की पुष्टि के लिए भाषा-विज्ञान का भी सहारा लिया। आपने कवितावली, गीतावली, दोहावली और विनय-पत्रिका से अनेक शब्दों और मुहावरों का प्रयोग उद्धृत करके अन्त में इसे सिद्ध ही कर दिया कि इनका प्रयोग सोरों में आमतौर से प्रचलित

† देखिये गार्सां द तासी : 'इस्त्वार द ला लितरेत्योर इंदुई ए इंदुस्तानी' भाग १, पृष्ठ २०८।

है। अतएव तुलसीदासजी की जन्म-भूमि सोरों ही है। उदाहरण स्वरूप पंडितजी के "अन्य प्रमाण" शीर्षक से कुछ उद्धरण नीचे दिये जाते हैं। आप लिखते हैं :—

हौं तो बिगरायल ओर को।

(विनय-पत्रिका)

'ओर को' का अर्थ सोरों में है अन्त का। पर राजापुर और उसके आसपास 'ओर' का अर्थ है आदि। जैसे—ओर-छोर।

खेलत अवध खोरि, गोली भँवरा चकडोरि।

(गीतावली)

ब्रज और उसके आसपास के ज़िलों में भँवरा और चकडोरी खेलने का रिवाज बहुत है। लड़के बाज़ी लगाकर यह खेल खेलते हैं। अयोध्या, बनारस और राजापुर में इस खेल का प्रचार शायद ही है। सोरों में इसका बड़ा प्रचार है। इससे तो और भी प्रमाणित होता है कि तुलसीदास का जन्म ऐसे स्थान में हुआ था, जहां भँवरा और चकडोरी खेलने का बड़ा रिवाज था।"

इसी प्रकार के कतिपय और उदाहरण देकर रामनरेशजी ने तुलसीदासजी का जन्म-स्थान सोरों को ही मान लिया है। त्रिपाठीजी का परिश्रम सर्वथा स्तुत्य है और इसके लिए वे समस्त हिन्दी-संसार के ओर से बधाई के पात्र हैं। किन्तु इस विषय में इतना ही जान लेना पर्याप्त है कि केवल कुछ शब्दों के प्रयोग के आधार पर जन्म-भूमि के सम्बन्ध में किसी निश्चय पर नहीं पहुँचा जा सकता। प्रथम तो त्रिपाठीजी ने जो उद्धरण लिये हैं वे गोस्वामीजी के ब्रजभाषा-सम्बन्धी ग्रन्थों से हैं। दूसरे इन शब्दों के प्रयोग का क्षेत्र क्या है, इसका विवेचन उन्होंने नहीं किया है। यदि केवल कुछ शब्दों के प्रयोग से

ही गोस्वामीजी पछाईं बन जाते हैं, तो उससे कई गुने शब्द उद्धृत कर यह सरलता-पूर्वक सिद्ध किया जा सकता है कि वे पूर्वी प्रान्त के निवासी थे। स्वर्गीय बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' काशी के निवासी थे। काशी भोजपुरी क्षेत्र में है। फिर भी रत्नाकरजी की समस्त रचनाएँ ब्रजभाषा में हैं। अतएव उनकी कविता की भाषा को देखकर हम उन्हें ब्रजवासी कहने लगें, तो यह कहां तक युक्ति-संगत होगा।

इसके अतिरिक्त भाषा में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। जब तक त्रिपाठीजी एक-एक शब्द का इतिहास न लिख डालें, तब तक यह कैसे प्रामाणिक मान लिया जाय कि जिन शब्दों का प्रयोग सोरों में जिन अर्थों में आज हो रहा है, तीन सौ वर्ष पहले भी उन्हीं अर्थों में उनका प्रयोग होता ही होगा। अस्तु, जब तक और प्रमाण उपलब्ध न हों तब तक जन्मभूमि के सम्बन्ध में कुछ भी निश्चय रूप से नहीं कहा जा सकता।

किसी कवि की कविता का पूर्ण रीति से अध्ययन करने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक होता है कि रचना के काल के अनुसार उसका क्रम रखा जाय। इस प्रकार के अध्ययन से कवि के मानसिक विकास को हृदयंगम करने में बड़ी सहायता मिलती है। बाबू माताप्रसाद गुप्त ने 'गोस्वामी तुलसीदासजी की रचनाओं का काल-क्रम' शीर्षक एक सारगर्भित निबंध लिखा है। गुप्तजी ने गोस्वामीजी की रचनाओं का जो काल-क्रम दिया है, वह नीचे दिया जाता है :—

रचनाओं का काल-क्रम

(१) पूर्व	रामलला नहछू	सं० १६११ के	लगभग	(?)
	जानकी-मंगल	सं० १६२१ "	"	"
	रामाज्ञा	सं० १६२३ "	"	"
	वैराग्य संदीपिनि	सं० १६२५ के	"	"

(२) मध्य	रामचरित-मानस	सं० १६३१
	सतसई	सं० १६४२
	पार्वती-मंगल	सं० १६४५
	गीतावली	सं० १६४४—'४८
	कृष्ण-गीतावली	सं० १६४६ — १६५०
(३) उत्तर	विनय-पत्रिका	सं० १६५६ — १६५६
	बरवै	सं० १६४२ — १६६४
	दोहावली	सं० १६६५ — १६८०
	बाहुक	" " "
	कवितावली	" " "

तासी ने अपने हिन्दी-साहित्य के इतिहास में रामचरित-मानस के अतिरिक्त केवल निम्नलिखित ग्रन्थों का उल्लेख किया है:—

(१) सतसई
(२) राम गानावली
(३) गीतावली
(४) कवित्त रामायण
(५) विनय-पत्रिका।

इन चार ग्रन्थों के अतिरिक्त वार्ड महोदय ने गोस्वामीजी रचित 'रामजन्म' तथा 'राम-शलाका' दो और ग्रन्थों का उल्लेख किया है। रामजन्म की भाषा को वार्ड ने भोजपुरी तथा राम-शलाका की भाषा को कन्नौजी बतलाया है। गोस्वामीजी भोजपुरी बोली से परिचित थे, उनके ग्रन्थों को देखने से इसका स्पष्ट प्रमाण मिलता है। किन्तु उन्होंने 'राम-जन्म' उसी भाषा में लिखा, यह तब तक प्रामाणिक नहीं माना जा सकता, जब तक उसकी कोई प्राचीन हस्तलिखित प्रति न मिल जाय। 'राम-शलाका' की भाषा तो स्पष्ट रीति से अवधी है।

'रामगानावली' नामक पुस्तक की गोस्वामीजी ने रचना की अथवा नहीं, यह संदिग्ध है।

कवितावली का रचना-काल

गोस्वामीजी के ग्रन्थों में कवितावली की रचना सबसे अन्त तक होती रही है। बहुत संभव है कि इसका संग्रह गोस्वामीजी की मृत्यु के पश्चात् हुआ हो। पंडित रामनरेश त्रिपाठी का अनुमान है कि इसमें तुलसीदास की छात्रावस्था से लेकर उनके जीवन के अन्त समय तक की रचनाएँ सम्मिलित हैं और उसमें उनकी कवित्व-शक्ति के विकास का एक मनोरञ्जक इतिहास भी सन्निविष्ट है।

गोस्वामीजी की छात्रावस्था कब से प्रारम्भ होती है, इस सम्बन्ध में निश्चित् रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इधर इसमें संगृहीत छन्दों का सम्पादन भी काल-क्रम से नहीं हुआ है। अतएव कौन छन्द पहले लिखे गये और कौन बाद में, इसका निश्चय करना सरल कार्य नहीं है। फिर भी गोस्वामीजी की अन्य रचनाओं से इसकी तुलना करने से कवितावली के रचनाकाल पर प्रकाश अवश्य पड़ता है। 'गीतावली में लक्ष्मण-परशुराम-संवाद नहीं है, किन्तु कवितावली में है और वह मानस के उक्त संवाद से बहुत साम्य रखता है। अतः ऐसा जान पड़ता है कि कवितावली का उक्त प्रसंग मानस (सं० १६३१) के लगभग की रचना होगी।'

इसके अतिरिक्त कवितावली के कतिपय छन्दों में रामायण के पदों का वाक्य-विन्यास भी ज्यों-का-त्यों आ गया है, जिससे सहज ही में यह अनुमान किया जा सकता है कि दोनों का रचनाकाल एक ही है। भाव-साम्य तथा वाक्य-विन्यास का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है :—

नदी पनच सर सम दम दाना। सकल कलुष कलि साउज नाना।

चित्रकूट जनु अचल अहेरी। चुकै न घात मार मुठभेरी।

रा० अयोध्याकाण्ड

मंदाकिनी मंजुल कमान असि, बान जहाँ,
बारि धार धीर धरि सुकर सुधारि है।
चित्रकूट अचल अहेरि बैठ्यो घात मार्नो,
पातक के व्रात घोर सावज सँहारि है॥

कवितावली उ० काण्ड॥ १४२॥

गीतावली का रचनाकाल सं० १६४४ से, ४८ के लगभग है। भाव-साम्य तथा वाक्य-विन्यास सम्बन्धी नीचे के उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवितावली के कतिपय छन्दों की रचना इसी समय में हुई है :—

सोइ प्रभु कर परसत टूट्यो जनु हुतो पुरारि पढ़ायो।

गीतावली, बालकाण्ड

'तुलसी' सो राम के सरोज पानि परसत ही,
टूट्यो मानो बारे ते पुरारि ही पढ़ायो है॥

कवितावली, बालकाण्ड॥ १०॥

कवितावली के उत्तर काण्ड में भी ऐसे छन्द मिलते हैं, जो वाक्य-विन्यास तथा भाव में विनय-पत्रिका से साम्य रखते हैं। इसका एक उदाहरण नीचे दिया जाता है :—

नाँगो फिरै कहै माँगतो देखि "न खाँगो कछू जनि माँगिए थोरो"।
राँकनि नाकप रीझि करै, तुलसी जग जो जुरै जाचक जोरो॥
"नाक सँवारत आयो हौं नाकहि, नाहिं पिनाकहि नेकु निहोरो"।
ब्रह्म कहै "गिरिजा! सिखवो, पति रावरो दानि है बावरो भोरो"॥

कवितावली, उत्तरकाण्ड॥ १५३॥

बावरो रावरो नाह भवानी।
दानि बड़ो दिन देत दए बिनु बेद बड़ाई भानी।
निज घर की घरबात बिलोकहु तुम हौ परम सयानी।
सिव की दई संपदा देखत श्रीसारदा सिहानी॥
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नहीं निसानी।
तिन रंकन को नाक सँवारत हौं आयों नकवानी॥
दुख दीनता दुखी इनके दुख जाचकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिये औरहिं भीख भली मैं जानी॥
प्रेम प्रसंसा विनय व्यंग जुत सुनि विधि की वर बानी।
तुलसी मुदित महेस मनहिंमन जगतमातु मुसकानी॥

विनयपत्रिका

कवितावली में ऐसे अनेक छन्द हैं जो स्पष्टतः कवि की जरावस्था की ओर संकेत करते हैं :—

जरठाइ दिसा, रवि काल उग्यो, अजहूँ जड़ जीव न जागहि रे॥ उ० का० ३१॥
काल बिलोकि कहै तुलसी मन में प्रभु की परतीति अघाई॥ उ० का० ५८॥
कीजै न विलंब, बलि, पानीभरी खाल है ॥ उ० का० ६५॥
अब जोर जरा जरि गात गयो, मन मानि गलानि कुबानि न मूकी॥ उ० का० ८८॥
कियो न कछू, करिबो न कछू, कहिबो न कछू, मरिबोइ रहो है॥ उ० का० ६१॥

कवितावली के अन्तिम छन्दों में कवि ने रुद्रबीसी, मीन की सनीचरी, महामारी और उसकी शांति, विषम वेदना और प्रयाण-समय के क्षेमकरी-दर्शन का उल्लेख किया है :—

गणना से रुद्रबीसी का समय संवत् १६६५ से संवत् १६८५ तक माना जाता है। इस समय काशी में बहुत उत्पात मचा हुआ था। इस छन्द की और इसके बाद के कतिपय छन्दों की रचना, जिनमें

कलि के उपद्रवों का चित्र खींचा गया है, संवत् १६६८-१६६६ के लगभग हुई होगी। 'रुद्रबीसी' के पूर्व 'मीन की सनीचरी' का समय था। इसके विषय में कवितावली में निम्नलिखित कवित्त मिलता है :—

एक तो कराल कलिकाल सूल मूल तामें,
कोढ़ में की खाजुसी सनीचरी है मीन की।
वेद धर्म दूरि गए, भूमि चोर भूप भए,
साधु सीद्यमान जानि रीति पाप-पीन की।
दूबरे को दूसरो न द्वार, राम दयाधाम,!
रावरीई गति बल-बिभव बिहीन की।
लागैगो पै लाज वा बिराजमान बिरुदहि,
महाराज आजु जौ न देत दादि दीन की॥

उत्तरकांड ॥ १७७ ॥

गणना से मीन की सनीचरी संवत् १६६६ से १६७१ तक थी। अतएव इस ऊपर के छन्द की रचना संवत् १६६६ से १६७१ के बीच में हुई होगी।

महामारी का उल्लेख तो कवितावली के उत्तरकांड में कई बार हुआ है—

रोष महामारी परितोष, महतारी! दुनी;
देखिए दुखारी मुनि-मानस-मरालिके ॥ उ० का० १७३ ॥
देवता निहोरे महा मारिन्ह सों कर जोरे,
भोरानाथ जानि भोरे अपनी सी ठई है ॥ उ० का० १७५ ॥
संकर सहर सर, नरनारि बारिचर,
बिकल सकल महामारी माँजा भई है ॥ उ० का० १७६ ॥

काशी में महामारी के प्रकोप के सम्बन्ध में अन्यत्र विचार हो चुका है। फलतः इन छन्दों की रचना संवत् १६७८-१६७६ में हुई होगी।

इस प्रकार उपर्युक्त प्रमाणों से यह सिद्ध हो जाता है कि कविता-वली की रचना संवत् १६३१ से संवत् १६८० के बीच में हुई है।

कवितावली के छन्दों की रचना भिन्न-भिन्न स्थानों में हुई है

इस अवधि में गोस्वामीजी अयोध्या, चित्रकूट, काशी तथा अन्य स्थानों में भ्रमण करते हुए कवितावली के छंदों की रचना करते रहे होंगे। कवितावली के जिन तीन छंदों की रचना उन्होंने वारिपुर और दिगपुरा के बीच, सीतामढ़ी में, सीतावट के नीचे की थी, उनमें से एक नीचे दिया जाता है:—

'जहाँ बालमीकि भए, ब्याध ते मुनीन्द्र साधु,
'मरा मरा' जपे सुनि सिष ऋषि सात की।
सीय को निवास लव-कुश को जनम-थल,
तुलसी छुवत छाँह ताप गरे गात की॥
बिटप महीप सुर-सरित समीप सोहै,
सीतावट पेखत पुनीत होत पातकी।
वारिपुर दिगपुर बीच बिलसति भूमि,
अंकित जो जानकी चरन जलजात की॥ १॥

उत्तरकांड ॥१३८॥

इसके आगे के दो छंदों की रचना भी इसी स्थान पर हुई थी। तदनन्तर दो छंद चित्रकूट में रचे गये थे। उदाहरण-स्वरूप इनमें से एक नीचे दिया जाता है:—

जहाँ बन पावनो सुहावने बिहंग मृग,
देखि अति लागत अनंद खेत खूँट सो।
सीताराम-लखन-निवास, बास मुनिन को,
सिद्ध साधु साधक सबै बिबेक बूट सो॥

झरना झरत झारि सीतल पुनीत वारि,
मंदाकिनी मंजुल महेस जटाजूट सो।
तुलसी जौ राम सों सनेह साँचो चाहिये
तौ सेइए सनेह सौं विचित्र चित्रकूट सो॥
उत्तरकांड १४१

कवितावली के अनेक छंदों की रचना काशी में हुई थी। यह 'महामारी', 'मीन की सनीचरी,' 'रुद्रबीसी' आदि के वर्णनों से स्पष्ट हो जाता है। कवितावली के उत्तरकाण्ड के सभी छन्द, जिनका सम्बन्ध गोस्वामीजी की वृद्धावस्था से है, काशी में ही रचे गये थे। आरम्भ के छंद, जिनमें भगवान् रामचन्द्रजी की बाललीलाओं का वर्णन है, अयोध्या में निर्माण किए हुए प्रतीत होते हैं। इस प्रकार कवितावली के छंदों की रचना न केवल कई वर्षों में हुई है, वरन् कई स्थानों में भी हुई है।

कवितावली मुक्तक काव्य है, रामचरित-मानस की भांति प्रबन्ध-काव्य नहीं। यद्यपि इसमें कवित्त, सवैया आदि छंदों में रामायण की

कवितावली मुक्तक रचना है।

मूल कथा का उल्लेख प्रबन्ध-काव्य के रूप में ही हुआ है; फिर भी इस प्रकार के काव्य के लिए जीवन-सम्बन्धी जिन जटिल समस्याओं तथा गम्भीर परिस्थितियों के प्रदर्शन की आवश्यकता होती है, उनका इसमें सर्वथा अभाव है। प्रबन्ध-काव्य में एक पद का दूसरे से इतना घनिष्ट सम्पर्क रहता है कि कथा की परम्परा के निर्देश के बिना अर्थ तथा भाव का हृदयङ्गम करना एक प्रकार से असम्भव हो जाता है। किन्तु मुक्तक अथवा स्फुट काव्य में यह बात नहीं होती; यहां प्रत्येक पद स्वतंत्र है। अर्थ तथा भाव के लिए वह दूसरे का आश्रित नहीं है। कवितावली में ठीक यही बात है। इसमें कवि की प्रवृत्ति कथा-वर्णन से सर्वथा उदासीन रहती है। इसके

मुक्तक होने का एक दूसरा प्रमाण है, आरम्भ में मंगलाचरण का अभाव। गोस्वामीजी के प्रायः सभी ग्रन्थों में आरम्भ में मंगलाचरण मिलता है, किन्तु कवितावली में गोस्वामी जी उसे कैसे भूल गये? यह एक विचारणीय बात है। इसका एक ही समाधान है और वह यह है कि सम्भवतः कवितावली के रूप में इसका संग्रह गोस्वामीजी की मृत्यु के कुछ दिन पश्चात् उनके किसी शिष्य ने किया हो। उत्तरकांड में संग्रहीत छन्द तो इसके मुक्तक होने के प्रमाण को और दृढ़ करते हैं। कवि ने इस कांड को अनेक देवताओं की स्तुति तथा अपनी दीनता-प्रदर्शन में ही समाप्त कर दिया है। वास्तव में इसका भगवान रामचन्द्र के चरित्र से कोई सम्बन्ध नहीं है।

कवितावली में प्रयुक्त छन्द

कवितावली में सवैया, मनहरण, कवित्त, छुप्पय और झूलना छन्दों का ही प्रयोग किया गया है। सवैया भी मत्तगयंद, दुर्मिल आदि अनेक प्रकार के हैं। प्राचीन काल में कवित्त, सवैया तथा छुप्पय इन तीनों छन्दों को कवित्त ही कहते थे। सम्भवतः इसी कारण से इस ग्रन्थ का नाम कवित्त रामायण पड़ा। कवितावली की छुप्पय-रचना पर वीरगाथा-काल की छुप्पय-पद्धति की स्पष्ट छाप है, जैसा कि निम्नलिखित उदाहरण से प्रतीत होता है—

डिगति उर्वि अति गुर्वि, सर्व पब्बै समुद्र सर।
ब्याल बधिर तेहिकाल, बिकल दिगपाल चराचर ॥
दिग्गयन्द लरखरत, परत दसकण्ठ मुक्खभर।
सुरबिमान हिमभानु भानु संघटित परस्पर ॥
चौंके बिरञ्चि संकर सहित, कोल कमठ अहि कलमल्यौ।
ब्रह्मांड खंड कियो चंड धुनि जबहि राम सिवधनु दल्यौ ॥ १ ॥

बालकांड ॥ ११ ॥

इसी प्रकार गंग आदि भाटों की कवित्त सवैया पद्धति की भी छाप 'कवितावली में है। यही कारण है कि कवितावली के छंद भाटों चारणों और बन्दीजनों के पढ़ने के लिये बड़े ही उपयुक्त हैं। उदाहरण के लिये नीचे इस प्रकार का एक छंद दिया जाता है :—

जाहिर जहान में जमानो एक भांति भयो,
बेंचिये बिबुधधेनु रासभी बेसाहिए।
ऐसेऊ कराल कलिकाल में कृपालु तेरे
नाम के प्रताप न त्रिताप तन दाहिए॥
तुलसी तिहारो मन वचन करम, तेहि
नाते नेह-नेम निज ओर तें निवाहिए।
रंक के निवाज रघुराज राजा राजनि के,
उमरि दराज महाराज तेरी चाहिए॥ १॥

उत्तरकांड ॥७६॥

तुलसीदासजी ने अपने काव्य ग्रन्थों में दो भाषाओं का प्रयोग किया है। एक ब्रजभाषा और दूसरी अवधी। कवितावली की भाषा ब्रजभाषा ही है। यह भाषा शौरसेनी अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी है। इसका मुख्य स्थान ब्रजमंडल है। किन्तु उत्तर की ओर यह गुड़गांव जिले के पूर्वी भाग तक बोली जाती है। उत्तर पूर्व की ओर बरेली होते हुये यह नैनीताल के तराई परगनों तक चली गई है। इसका केन्द्रस्थान मथुरा है और वहीं की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है। इस भाषा की मुख्य विशेषता यह है कि इसकी आकारान्त पुल्लिंग संज्ञायें, विशेषण और भूतकृदन्त तथा कहीं कहीं वर्तमान कृदन्त भी ओकारान्त होते हैं; जैसे:—घोड़ो, चल्यो कियो आदि।

भाषा

प्राचीन काल में ब्रजभाषा साहित्य की एक सामान्य भाषा थी, जिसका प्रयोग समस्त हिन्दी कवियों ने किया है। राजपूताने में यह भाषा 'पिङ्गल' नाम से प्रख्यात थी। सोलहवीं शताब्दी के पूर्वी प्रान्तनिवासी कवियों ने भी साहित्य में इसका प्रयोग किया है। यद्यपि गोस्वामी जी ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ राम-चरित-मानस की रचना अवधी में ही की है, किन्तु विनय-पत्रिका, गीतावली और कवितावली में ब्रजभाषा ही का प्रयोग हुआ है। गोस्वामीजी ब्रजवासी नहीं थे। अतएव इनकी ब्रजभाषा में अवधी का पुट मिलना स्वाभाविक था। उदाहरण के लिये "एहिघाट तें थोरिक दूरि अहै" में 'अहै' क्रिया अवधी की है। ब्रजभाषा में इसका रूप होगा "है"। इसी प्रकार "रावरे दोष न पायन को" में 'रावरे' सर्वनाम् भोजपुरी का है। भोजपुरी में—बराबर वालों के लिये—मध्यम पुरुष, एक वचन में "तू" तथा बालक, स्त्री एवं छोटी जाति के लोगों के लिये 'तें' का प्रयोग होता है। खड़ी बोली के 'आप' की तरह भोज-पुरी मध्यम पुरुष, एकवचन में आदर प्रदर्शन के लिये 'रउआँ' अथवा 'रउएँ' का प्रयोग होता है। दक्षिण पटना तथा गया की मगही में यह 'आप' अथवा 'अपने' का रूप धारण कर लेता है और दक्षिणी दरभंगा, उत्तरी मुँगेर एवं भागलपुर की मैथिली में इसके रूप 'आइस' 'आहां, अथवा 'अपने' हो जाते हैं। अवधी में तो इस सर्वनाम का प्रायः अभाव है। सम्बन्ध कारक में 'रउआं' का रूप 'राउर, हो जाता है और इसी से गोस्वामी जी ने 'रावरे' रूप को ग्रहण किया है।

गोस्वामी जी ने अन्य भाषा के शब्दों का भी बड़ी स्वतन्त्रता से प्रयोग किया है, किन्तु इस प्रकार के शब्दों का उन्होंने तत्सम रूप नहीं ग्रहण किया है। अरबी और फारसी के शब्दों को तो ध्वनि परिवर्तन करके ही आपने उनका प्रयोग किया है। इस प्रकार के परिवर्तन के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं :—

(१) 'क़' के लिये क जैसे लायक़ के लिये लायक।
(२) ख़ के लिये ख जैसे ख़लक के लिये खलक।
(३) ग़ के लिये ग जैसे ग़रीब के लिये गरीब।
(४) ज़ के लिये ज जैसे बाज़ के लिये बाज।
(५) ज़ के लिये 'द' और 'र' जैसे ग़ुज़र के लिये गुदरत और कागज़ के लिये कागर।
(६) 'श' के लिये 'स' जैसे निशान के लिये निसान।
(७) 'ह' के लिये ह जैसे साहब के लिये साहिब, साहिह के लिये साहि।

इसी प्रकार से कवितावली में अरबी के हबूब, पाइमाल, हलक़, कहरी, किसब, हराम, तमाइ, और उमरि एवं फ़ारसी के फहम, रहम, रवा, खुआर, जबार आदि शब्दो का प्रयोग किया गया है किन्तु इन शब्दों को गोस्वामी जी ने इस प्रकार से अपना लिया है कि ये अपना विदेशी रूप परिवर्तित करके अत्यन्त श्रुति मधुर हो गये हैं। सरीक में आपने हिन्दी का 'ता' प्रत्यय जोड़ कर सरीकता और सरताज के सामासिक रूप को परिवर्तित करके आपने सिरताज बना दिया है।

गोस्वामीजी ने कवितावली में निःसंकोच भाव से अपभ्रंश काल के उन शब्दों का भी प्रयोग किया है जो उस समय साधारण बोलचाल में एक प्रकार से अप्रचलित हो चले थे, किन्तु जिनका प्रयोग कवि लोग बराबर करते आये थे। जैसेः—मयन (मदन) पब्वै (पर्वत) सायर (सागर), आदि।

संस्कृत की कोमलकान्त पदावली और उसके तत्सम शब्दों का प्रयोग करना गोस्वामी जी की एक विशेषता है। क़ुतुबन, जायसी तथा हिन्दी के अन्य सूफ़ी कवियों की अवधी भाषा से रामायण की भाषा की तुलना करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है। गोस्वामी जी संस्कृत

के पंडित थे। भला शब्दों का प्रयोग करते समय वह उसे कैसे भुलाते? अस्तु, कवितावली में आपने अर्बुद, सीयमान, खेचर, अहः आदि तत्सम शब्दों का प्रयोग तो किया ही है, कहीं-कहीं वदति क्रिया को भी तत्सम रूप में ही रख दिया है। आपने संस्कृत के कतिपय अप्रचलित शब्दों का भी प्रयोग किया है। जैसे—बालिश (मूर्ख), सरवाक, बेर (शरीर) आदि।

भाषा को टकसाली बनाने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसमें प्रचलित शब्दों, मुहावरों और कहावतों का प्रयोग किया जाय। गोस्वामीजी ने भी कवितावली में प्रचलित मुहावरों एवं लोकोक्तियां का प्रयोग किया है, जिनमें से कुछ में तो प्रान्तीयता है। किन्तु शेष का प्रयोग सर्वत्र है। जैसे—गोद कै लै (गोद में लेकर), भाए जाना (घूम-घूमकर देखना) इत्यादि बुन्देलखण्डी मुहावरे हैं। पसारि पायँ सूति हौं (निश्चिन्त होना) में भोजपुरी की स्पष्ट छाप है। उनकी लोकोक्तियों का प्रयोग तो प्रायः सार्वदेशिक है। जैसे—'धोबी कैसो कूकर न घर को न घाट को', 'बयो लुनियत सब याही दाढ़ीजार को', 'काटिये न नाथ विषहू को रुख लाइकै' आदि।

छन्द की गति ठीक रखने के लिए गोस्वामीजी के पूर्ववर्ती तथा परवर्ती कवियों ने शब्दों को खूब तोड़ा मरोड़ा है, जिसका एक परिणाम यह हुआ है कि भाषा में दुरूहता आ गई है। गोस्वामीजी की भाषा में यह दोष नहीं है। आपके शब्दों के परिवर्तन ध्वनि शास्त्र के नियमों के अनुकूल होने के कारण अत्यन्त स्वाभाविक बन पड़े हैं। जैसे—सारिखो (सदृश), चारिखो (चारि को) चुवा (चौपाया) आदि। अग्नि के लिए इन्होंने 'खरखौकी' शब्द का प्रयोग किया है। जिसका अर्थ देखते ही स्पष्ट हो जाता है।

भाषा को रसानुकूल बनाने के लिए कवि को तीन गुणों का भी ध्यान रखना पड़ता है। जिनके नाम माधुर्य, ओज और प्रसाद हैं।

काव्यगुण

जिस आनन्द के कारण अन्तःकरण द्रवीभूत हो जाता है, उसे माधुर्य गुण कहते हैं। * यह गुण सम्भोग शृङ्गार से करुण में, करुण से वियोग शृङ्गार में और वियोग शृङ्गार से शांत रस में अधिकाधिक होता है। ट ठ ड ढ के अतिरिक्त स्पर्श वर्ण वर्गान्त के ङ ञ ण न म अनुसार युक्त वर्ण, ह्रस्व र और ण एवं समास-रहित पद माधुर्य गुण व्यञ्जक होते हैं। जैसे—

तुलसी मनरंजन रंजित अंजन नयन सुखंजन जातक से।

बालकाण्ड ॥ १ ॥

× × ×

अरविन्द सो आनन, रूप मरन्द अनंदित लोचन-भृंग पिये।

बालकाण्ड ॥ २ ॥

ओज गुण के श्रवण से मन में तेज उत्पन्न होता है। वीर वीभत्स और रौद्र रस में क्रमशः इसकी अधिकाधिक स्थिति रहती है।† द्वित्त्व वर्ण, संयुक्त वर्ण अर्द्ध रकार, टवर्ग एवं लम्बे लम्बे समास-युक्त पद ओज गुण की व्यञ्जना करते हैं। यथा—

डिगति उर्वि अति गुर्वि, सर्व पब्वै समुद्र सर।

× × ×

दिग्गयंद लरखरत, परत दसकण्ठ मुक्खभर।

बालकाण्ड ॥११॥

---

* चित्तद्रवी भावमयो ह्लादोमाधुर्यमुच्यते। साहित्यदर्पण

† ओजश्चित्तस्य विस्ताररूपं दीप्तत्वमुच्यते।
वीर वीभत्स रौद्रेषुक्रमेणाधिक मस्यतु। साहित्य-दर्पण ॥

प्रसाद गुण की स्थिति सभी रसों और सारी रचनाओं में हो सकती है। वस्तुतः माधुर्य्य और ओजगुण का सम्बन्ध शब्द के वाह्य रूप से होता है; किन्तु प्रसाद का सम्बन्ध उसके अर्थ से है। अतएव शब्द सुनते ही जिसका अर्थ हृदयङ्गम हो जाय, ऐसा सरल और सुबोध पद प्रसादगुण-व्यञ्जक होता है। गोस्वामीजी की कवितावली इस गुण से सर्वथा ओतप्रोत है। आरम्भ में भगवान रामचन्द्रजी के बालचरित का वर्णन विवाह के समय सौभाग्यवती स्त्रियों की राम-रूप-दर्शन में तल्लीनता एवं उत्तर-काण्ड के विनय-पद प्रसाद गुण पूर्ण हैं। स्थान संकोच से केवल एक ही उदाहरण नीचे दिया जाता है :—

दूब दधि रोचना कनक थार भरि भरि,
आरती सवाँरि वर नारि चलीं गावतीं।
लीन्हें जयमाल करकंज सोहैं जानकी के,
"पहिराओ राघोजू को" सखियाँ सिखावतीं॥
तुलसी मुदित मन जनक नगर जन,
झाँकती झरोखे लागीं सोभा रानी पावतीं॥
मनहुँ चकोरी चारु बैठीं निज निज नीड़,
चंद की किरन पीवैं, पलकैं न लावतीं॥
बालकाण्ड ॥१३॥

कवितावली के काव्य-गुणों का विवेचन ऊपर किया जा चुका है। अब यहां पर इसके रसों का विवेचन किया जाता है। वास्तव में गुण रस के धर्म हैं। काव्य में रस ही दुर्ज्ञेय एवं सर्वोपरि वस्तु है। यही कारण है कि आचार्यों ने इसे काव्य की आत्मा कहा है। रस नव हैं जिन्हें क्रमशः शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त कहते हैं। कुछ साहित्याचार्यों ने इन नव रसों के

अतिरिक्त प्रेयान्, वात्सल्य, लौल्य और भक्ति आदि और भी रस माने हैं। किन्तु आचार्य मम्मट के अनुसार रसों की संख्या नव ही है और वात्सल्य और भक्ति को क्रमशः पुत्रादि विषयक रतिभाव और भक्ति रस को देव विषयक रतिभाव के अन्तर्गत मानना चाहिए। यहां भाव और रस में भी अन्तर जान लेना आवश्यक है। जहां ये स्थायी भाव, विभाव अनुभाव और संचारियों से परिपुष्ट न हो, वहां इनकी भाव संज्ञा हो जाती है, किन्तु जहां ये परिपुष्ट होते हैं, वहां इनकी रस संज्ञा हो जाती है। यद्यपि हिन्दी-साहित्य में वात्सल्य-भाव के आचार्य्य प्रज्ञाचक्षु महाकवि सूर ही हैं, किन्तु गीतावली और कवितावली में गोस्वामीजी ने भी पुत्र-विषयक रतिभाव (वात्सल्य) का बहुत ही मार्मिक प्रदर्शन किया है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पद देखिए—

तन की दुति स्याम सरोरुह लोचन कंज की मंजुलताई हरैं।
अति सुन्दर सोहत धूरि भरे छवि भूरि अनंग की दूरि धरैं।

कबहूँ ससि माँगत आरि करैं, कबहूँ प्रतिबिम्ब निहारि डरैं।
कबहूँ करताल बजाइ कै नाचत, मातु सबै मनमोद भरैं॥

बालकाण्ड ॥ ३, ४ ॥

गोस्वामीजी के देवविषयक रतिभाव (भक्ति) का एक पद देखिये। आपने अपने इष्टदेव बालरूप भगवान् रामचन्द्र जी के प्रति कैसा उत्कट प्रेम प्रदर्शित किया है—

पग नूपुर औ पहुँची करकंजनि, मंजु बनी मनिमाल हिये।
नवनील कलेवर पीत झँगा, झलकैं पुलकैं नृप गोद लिये।
अरविंद सो आनन, रूपमरंद अनंदित लोचन भृंग पिये।
मन में न बस्यो अस बालक जो तुलसी जग में फल कौन जिये।

बालकाण्ड ॥२॥

सौम्य शृङ्गार की जैसी बांकी झांकी गोस्वामीजी की कविता में देखने को मिलती है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। रीतिकाल के कवियों ने तो इसका ऐसा भद्दा और अमर्यादित वर्णन किया है कि शृङ्गार रस की गरिमा ही भूलुंठित हो गई है। पर गोस्वामीजी के शृङ्गार वर्णन में सात्विकी वृत्तियों की शृंखलित मर्यादा का ऐसा आवरण है कि कहीं भी उसका सौम्य भाव हिलडुल तक नहीं सका है; सर्वत्र ही उसमें निर्मल प्रेम का निर्झर-कल्लोल प्रतिध्वनित मिलता है। विवाह के समय सीताजी श्रीरामचन्द्र जी का प्रतिबिम्ब कङ्कण के नग में देख रही हैं। वे निर्निमेष दृष्टि से उनके रूपदर्शन में तल्लीन हैं। देखिये गोस्वामीजी ने इसका वर्णन कैसा मनोरम किया है।

दूलह श्री रघुनाथ बने, दुलही सिय सुन्दर मंदिर माहीं।
गावति गीत सबै मिलि सुन्दरि, वेद जुवा जुरि विप्र पढ़ाहीं।
राम को रूप निहारति जानकि कंकन के नग की परछाहीं।
याते सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टारति नाहीं॥

ऊपर के पद में रस के चारों अंग स्पष्ट परिलक्षित हैं। इसका स्थायी भाव रति है। राम-सीता आलम्बन विभाव, राम का प्रतिबिम्ब उद्दीपन, एक टक देखना, कर का स्थिर कर लेना अनुभाव तथा जड़ता, मतिहर्ष आदि संचारी भाव हैं इस प्रकार इस छन्द में शृङ्गार रस की स्थापना हुई है।

अब गोस्वामीजी के हास्यरस की भी एक बानगी देखिये।— विन्ध्य पर्वत के निवासी ऋषि स्त्रियों के बिना दुखी थे। वे एकांत जीवन में एक प्रकार की नीरसता का अनुभव करने लगे थे। उधर भगवान रामचन्द्र ने गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या का शाप मोचन करके उसे एक सुन्दरी में परिणित कर दिया। अब इस घटना से उन ऋषियों के हृदय में भी आशा का संचार हुआ। जब भगवान

रामचन्द्रजी की चरण-धूलि एक शिला को सुन्दरी के रूप में परिणित कर सकती है, तो विन्ध्य पर्वत की अनेक शिलाएँ चन्द्रमुखी क्यों नहीं बन सकतीं ! अतएव, उस ओर भगवान रामचन्द्र के पदार्पण से ऋषियों को बड़ी प्रसन्नता हुई। इसी का वर्णन तुलसीदासजी ने यहां किया है। इस पद में गोस्वामीजी ने सांकेतिककला का (Suggestivo art) बहुत ही सुन्दर निदर्शन किया है। बेचारे ऋषियों को उन चन्द्र-मुखियों के दर्शन का सुअवसर भले ही न मिला हो, पर इससे भगवान रामचन्द्रजी की चरण-धूलि की महत्ता तो प्रकट ही हो जाती है। इस सम्बन्ध का पद इस प्रकार है :—

बिंध्य के वासी उदासी तपोव्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे।
गौतमतीय तरी, तुलसी, सो कथा सुनि भे मुनिवृन्द सुखारे।
ह्वै हैं सिला सब चन्द्रमुखी परसे पद-मंजुल-कंज तिहारे।
कीन्हीं भली रघुनायकजू, करुनाकरि कानन को पगु धारे॥

अयोध्या काण्ड ॥ २८ ॥

कवितावली के लङ्काकाण्ड में रावण की सभा के बीच अंगद की प्रतिज्ञा तथा उसके 'पांव रोपने' के रूप में कवि ने वीर रस का अच्छा परिपाक दिखलाया है। इसी प्रकार सुन्दरकाण्ड में लंका-दहन का वर्णन करते हुए कवि ने भयानक रस की भयानकता का अच्छा प्रदर्शन किया है। लङ्काकाण्ड का निम्न-लिखित पद तो बीभत्स रस का एक सुन्दर उदाहरण है :—

ओझरी की झोरी कांधे, आंतनि की सेल्ही बाँधे,
मूड़ के कमंडलु, खपर किए कोरि कै।
जोगिनी झुटुंग झुंड-झुंड बनी तापसी सी,
तीर तीर बैठीं सो समर-सरि खोरि कै॥
सोनित सों सानि सानि गूदा खात सतुआ से,
प्रेत एक पियत बहोरि घोरि-घोरि कै।

तुलसी बैताल-भूत साथ लिए भूतनाथ,
हेरि-हेरि हँसत हैं हाथ-हाथ जोरि कै ॥
लंका काण्ड ॥१०॥

वस्तु-वर्णन तथा काव्य की उत्कृष्टता-प्रदर्शन में गुण और अलंकार दोनों की आवश्यकता पड़ती है। रस तो जैसा ऊपर कहा गया है, काव्य की आत्मा ही है। अब गुण और

अलंकार

अलंकार के अन्तर को भी स्पष्ट रूप से जान लेना चाहिए। वास्तव में गुण रस के धर्म हैं, क्योंकि वे सदैव रस के साथ रहते हैं; किन्तु अलंकार रस का साथ छोड़कर नीरस काव्य में भी रहते हैं। इसके अतिरिक्त गुण सदैव रस का उपकार करते हैं ; किन्तु अलंकार रस के साथ रहकर कभी उपकारक होते हैं और कभी नहीं।

गोस्वामीजी की कवितावली में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकार स्वाभाविक रूप से आये हैं, जिनकी ओर विद्वान टीकाकार ने इस टीका में निर्देश किया है, अतएव अलंकार के सम्बन्ध में यहां अधिक लिखने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। उदाहरण के लिए केवल रूपक-सम्बन्धी एक छन्द यहां उद्धृत किया जाता है :—

रावन सो राजरोग बाढ़त बिराट उर,
दिन दिन बिकल सकल सुखराँक सो।
नाना उपचार करि हारे सुर सिद्ध मुनि,
होत न बिसोक, औत पावै न मनाक सो।
राम की रजायतें रसायनी समीर-सूनु,
उतरि पयोधि पार सोधि सरवाक सो।
जातुधानु बुट, पुटपाक लंक जात रूप,
रतन जतन जारि कियो है मृगांक सो।
सुन्दरकांड ॥२४॥

शब्द द्वारा उपमान का उपमेय के साथ अभेद आरोपित करना ही रूपक का मुख्य उद्देश्य होता है। यह आरोप रूपसादृश्य एवं साधर्म्य की उत्कृष्ट व्यञ्जना से ही हो सकता है। ऊपर के छन्द में कवि अपने असाधारण नैपुण्य से इस अभिव्यञ्जना में सर्वथा सफल हुआ है।

कवितावली में प्रकृति-चित्रण

संस्कृत के कवियों ने अपने काव्यों में प्रकृति का सजीव चित्रण किया है। कालिदास की उपमाएँ श्रेष्ठ बतलायी गई हैं, किन्तु उनका प्रकृति-चित्रण भी कम श्रेष्ठ नहीं है। कुमार-सम्भव के प्रारम्भ में आपने हिमालय का जैसा सुन्दर चित्र खींचा है, वैसा अन्यन्त्र मिलना दुर्लभ है। हिन्दी के कवि तो प्रकृति-चित्रण में बहुत पीछे हैं। इसका एक कारण है। वास्तव में हिन्दी-साहित्य का आरम्भ उस समय से हुआ, जब संस्कृत-साहित्य में कृत्रिमता की बाढ़ आ गई थी। यही कारण है कि हिन्दी-कविता में वन्यजन्य अलंकारों से अलंकृत प्रकृति-सुन्दरी का दर्शन नहीं होता। गोस्वामीजी भी इस नियम के अपवाद नहीं हैं। फिर भी इनकी कविता में कहीं-कहीं प्रकृति-चित्रण की झांकी आ ही गई है। इनके बाद रीतिकाल में तो शृङ्गारिकता की इतनी बाढ़ आई कि प्रकृति नायक-नायिकाओं की केवल उद्दीपन मात्र की सामग्री रह गई। मेघ इसलिए गर्जन नहीं करता था कि वह प्रकृति का स्वभाव-जन्य व्यापार है, वरन् उसके गर्जन से यह तात्पर्य था कि वह प्रोषित पतिकाओं के हृदय में भय संचार करे। इस प्रकार के वर्णन का एक परिणाम यह हुआ कि हिन्दी-साहित्य से स्वाभाविक प्रकृति-वर्णन का एक प्रकार से बहिष्कार हो गया। महाकाव्य में अर्णव (समुद्र), शैल (पर्वत) तथा चन्द्रोदय, ऋतु आदि का वर्णन आवश्यक है। इस नियम के पालन के लिए महाकाव्य के रचयिताओं ने इनका वर्णन तो किया, किन्तु इसे उन्होंने इतना निर्जीव और

कृत्रिम बना दिया कि उसकी गणना स्वाभाविक प्रकृति-चित्रण के अन्तर्गत नहीं की जा सकती। रामायण में वर्षा तथा शरद्-वर्णन इसी कोटि के हैं। किन्तु कवितावली की रचना में गोस्वामीजी ने कहीं-कहीं दृश्य-चित्रण बहुत सुन्दर किया है। प्रयाग के गंगा-जमुना संगम का दृश्य अत्यन्त मनोरम है। कवितावली के निम्नांकित छन्द में उसी दृश्य का कैसा सुन्दर वर्णन गोस्वामीजी ने किया है :—

देव कहैं अपनी अपना अवलोकन तीरथराज चलो रे।
देखि मिटै अपराध अगाध, निमज्जत साधु-समाज भलो रे।
सोहै सितासित को मिलिबो, तुलसी हुलसै हियहेरि हलोरे।
मानो हरे तृन चारु चरैं बगरे सुरधेनु के धौल कलोरे।

उत्तरकाण्ड ॥१४४॥

गोस्वामीजी ने रावण के उपवन का भी कैसा सुन्दर वर्णन किया है, देखिये :—

बासव बसन विधि बन तें सुहावनो,
दसानन को कानन बसंत को सिंगारु सो।
समय पुराने पात परत, डरत बात,
पालत ललात रतिमारु को बिहारु सो।
देखे बर बापिका तड़ाग बाग को बनाव,
रागबस भो बिरागी पवनकुमारु सो।
सीय की दसा बिलोकि बिटप असोक तर,
तुलसी बिलोक्यो सो तिलोक सोक-सारु सो।

सुन्दरकाण्ड ॥१॥

लंका में भीषण अग्नि का वर्णन गोस्वामीजी ने विस्तार के साथ किया है। इस वर्णन को पढ़कर अग्निकाण्ड का भयानक दृश्य आंखों

के सामने घटनावत् उपस्थित हो जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि गोस्वामीजी ने इस प्रकार का दृश्य कहीं स्वयं देखा भी था। उद्धरण रूप में केवल दो छन्द यहां दिये जाते हैं :—

"लागि लागि आगि" भागि भागि चले जहाँ-तहाँ,
धीय को न माय, बाप पूत न सँभारहीं।
छूटे बार, बसन उघारे, धूमधुंधअंध,
कहैं बारे बूढ़े 'बारि-बारि' बार बारहीं॥
हय हिहिनात, भागे जात, घहरात गज,
भारी भरि ठेलि पेलि रौंदि खौंदि डारहीं॥
नाम ले चिलात, बिललात अकुलात अति,
"तात तात तौंसियत, झौंसियत झारहीं॥

सुन्दरकाण्ड ॥१५॥

पान, पकवान विधि नाना को, सँधानो; सीधो,
विविध विधान धान बरत बखारहीं।
कनक किरीट कोटि, पलंग, पेटारे, पीठ,
काढ़त कहार, सब जरे भरे भारही ॥
प्रबल अनल बाढ़ै, जहाँ काढ़ै, तहाँ डाढ़ै,
झपट लपट भरे भवन भँडारही।
तुलसी अगार न पगार न बजार बच्यो,
हाथी हथिसार जरे, घोरे घोरसारहीं॥

सुन्दरकाण्ड ॥२३॥

कवितावली की रचना वस्तुतः मुक्तक रूप में हुई है, पहले इसकी चर्चा की जा चुकी है। मुक्तक रचना में कवि को अपने हार्दिक भावों

कवितावली गोस्वामीजी का हृदयोद्गार है ।

को प्रदर्शित करने का यथेष्ट अवसर मिलता है । प्रबन्ध-काव्य में कथा निर्वाह के लिए उसे जिस परतन्त्रता का अनुभव होता है, मुक्तक रचना में वह उससे सर्वथा स्वतंत्र किंवा बन्धन-मुक्त हो जाता है । यही कारण है कि मुक्तक में कवि अपने ईर्ष्या-द्वेष तथा सांसारिक सुख-दुःखों का जिस प्रकार वर्णन कर सकता है, प्रबन्ध-काव्य में वैसा नहीं कर सकता । कवितावली मुक्तक रचना है, अतएव इसमें गोस्वामीजी ने स्थान-स्थान पर अपने हृदयोद्गार प्रदर्शित किये हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि गोस्वामीजी की समृद्धि एवं विभूति को देखकर लोग उनसे ईर्ष्या करने लगे थे । रामायण में ऐसे दुष्टों और ईर्ष्यालुओं की भी गोस्वामीजी ने वन्दना की है । पर कवितावली में ऐसे लोगों के प्रति उत्पन्न हुई स्वाभाविक क्रोधाग्नि को वे अपने अन्तराल में संवरण नहीं कर सके । यही कारण है कि इस ग्रन्थ में स्थल-स्थल पर उनकी यह भीम भावना स्पष्ट रूप से लक्षित हो गई है । इस सम्बन्ध का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है :—

धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ ।
काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब, काहू की जाति बिगारौं न सोऊ ।
तुलसी सरनाम गुलाम है रामको, जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ ।
माँगिकै खैबो मसीत को सोइबो, लैबे को एक न दैबे को दोऊ ॥

उत्तरकाण्ड ॥१०६॥

आगे के दो छन्दों* में भी गोस्वामीजी ने अपने सम्बन्ध में निवेदन किया है । आप कहते हैं—जाति का घमण्ड मैं नहीं रखता, न किसी की जाति-पांति मैं चाहता ही हूँ । मेरा किसी से कोई कार्य सिद्ध नहीं होता, न मैं ही किसी से कोई प्रयोजन सिद्ध कर सकता हूं । मेरा तो इहलोक और परलोक, सभी कुछ, एक रघुनाथजी के हाथ है ।

---

* उत्तरकांड १०७—१०८

मुझे तो केवल राम-नाम का ही समधिक अवलम्ब है। नितान्त मूर्ख लोग इस कहावत को भी नहीं समझते कि सेवक भी स्वामी के ही गोत्र का अधिकारी होता है। मैं साधु हूँ चाहे असाधु, भला हूँ चाहे बुरा, मुझे इसकी चिन्ता नहीं। क्या मैं किसी के द्वार पर धरना दिये पड़ा हुआ हूँ? जैसा कुछ भी मैं हूँ, (अपने) राम का ही तो हूँ॥ १०७॥

कोई कहता है कि यह तुलसी निन्द्य तत्वों के पुञ्जों से शोभित है, बड़ा ही धूर्त है। कोई कहता है कि यही तो राम का वास्तविक सेवक है। सज्जन मुझे महासज्जन समझते हैं और दुर्जन लोग महा-दुर्जन समझते हैं। इस तरह करोड़ों प्रकार की सच्ची-झूठी चर्चाएं उठा करती हैं। परन्तु मैं किसी से कुछ नहीं चाहता, न किसी के सम्बन्ध में कुछ कहता ही हूँ। सब के आक्षेप सहन करता रहता हूँ, ऊब उठने का उर-अन्तर में ज़रा भी भाव नहीं लाता। मेरा तो भला-बुरा रामचन्द्रजी के ही हाथ है। उनकी भक्ति रूपी भूमि में मेरी मति दूब रूप में उगी हुई है॥ १०८॥

ऊपर गोस्वामीजी ने जो आत्म-निवेदन किया है, उससे स्पष्ट हो जाता है कि वह ब्रह्मानन्दरूपी रसायन का स्वाद लेकर प्रमत्त होगये थे। ऐसे ही महात्माओं को जीवन-मुक्त संज्ञा से सम्बोधित किया जाता है। कहा भी है—

> शान्त संसार कलनः कलावानपिनिष्कलः
> यः सचित्तोऽपि निश्चित्तः सजीवन्मुक्त उच्यते॥

एवं भूतः साधकः सचित्तोऽप्यचित्त इव सचक्षुरप्यचक्षुरिव सकर्णोऽप्यकर्ण इव विज्ञोऽप्यज्ञ इव प्रबुद्धोऽपि निद्राण इवास्ति।*

अर्थात् जिस मनुष्य का सांसारिक विकार शांत होगया है (जो संसार के झमेलों को छोड़कर ब्रह्म-परायण हो चुका है) वह व्यवहार

* वासुदेवरसानन्द, पृष्ठ ८०

दृष्टि से सांसारिक होने पर भी उसके विकारों से परे है। और जो व्यावहारिक दृष्टि से मानसिक क्रियाओं को करते हुए भी उनके प्रभाव से बचा रहता है ऐसे ज्ञानी पुरुष को जीवन्मुक्त कहना चाहिये। इस प्रकार का साधक समस्त इंद्रियों के विकारों से अलिप्त रहने के कारण, सर्वसाधारण की दृष्टि में, आंख, कान, नाक, आदि इन्द्रियों के रहते हुए भी उनसे रहित, ज्ञानवान होने पर भी अज्ञानी, जागते हुए भी सोया हुआ, और मन के बने रहने पर भी बिना मन का-सा समझा जाता है। किन्तु वह "मेरे सम्बन्ध में लोगों की क्या धारणा है, वे मुझे कैसा समझते हैं," इन तुच्छ बातों पर ध्यान ही नहीं देता। वह तो आत्मचिन्तन की मस्ती में मस्त रहता है।

तुलसीदासजी की भावुकता

मार्मिक स्थलों पर ही कवि को भावुकता प्रदर्शन करने का अवसर मिलता है। ऐसे स्थलों की योजना अपने काव्य में कवि स्वयं करते हैं। गोस्वामीजी ने रामायण में अनेक ऐसे स्थलों की सृष्टि की है। ऐसे अवसरों पर गोस्वामीजी की भावुकता उमड़ पड़ी है। भगवान रामचन्द्र, सीता तथा लक्ष्मण के साथ वन जा रहे हैं। विशेष नियमों में आबद्ध रहने के कारण उन्हें पैदल ही यह यात्रा करनी पड़ रही है। जब वह किसी ग्राम के निकटवर्ती मार्ग से होकर निकलते हैं, तो उनके सुन्दर रूप को देखकर स्त्री-पुरुष मुग्ध हो जाते हैं। यदि वे अकेले होते तो वैसी कोई बात नहीं थी। किन्तु उनके साथ में रति को भी रूप में पराजित करनेवाली चन्द्रमुखी सीता भी है, जिनके विषय में जानने के लिये ग्रामीण स्त्रियों की उत्सुकता और बढ़ जाती है। जब उनको इस बात का समाचार मिल जाता है कि इनके वनवास का कारण रानी कैकेयी हैं, तो वे उनके कठोर हृदय की भर्त्सना करने में तनिक भी नहीं

चूकतीं। ग्रामीण स्त्रियों की तीव्र आलोचना के दूसरे लक्ष्य राजा दशरथ जी हैं। वे एक-दूसरे से कहती हैं—"रानी तो वज्रहृदया है ही, किन्तु राजा भी तो ज्ञानी नहीं प्रतीत होते, जिन्होंने स्त्री के संकेत पर इस प्रकार का कठोर कार्य्य किया है। पता नहीं, इस प्रकार की सुन्दर मूर्तियों के वियोग में वे वहां कैसे जीते हैं! ये तो आंखों में रखने योग्य हैं! इन्हें वनवास क्यों दिया गया है?"

इस तर्क-वितर्क के पश्चात् स्त्रियों का स्वाभाविक आकर्षण सीता जी की ओर होता है। वे बार-बार उनसे पूछती हैं कि हे सीते, तनिक बतलाओ तो कि इनमें आपके प्रीतम कौन हैं! इसपर स्त्री-जन-सुलभ लज्जा की रक्षा करती हुई सीताजी केवल संकेत से रामचन्द्र को बतलाती हैं। इस विषय में निम्नांकित पद देखिए। इसमें गोस्वामीजी की भावुकता ने कितना उच्च स्थान ग्रहण कर लिया है, यह स्पष्ट हो जाता है—

सुनि सुन्दर बैन सुधारस साने, सयानी हैं जानकी जानी भली।
तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हैं समुझाइ कछू मुसुकाइ चली।
तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचन-लाहु अली।
अनुराग तड़ाग में भानु उदै बिगसीं मनो मंजुल कंज कली॥

अयोध्याकण्ड ॥२२॥

रामचन्द्रजी से इस प्रकार परिचय प्राप्त करने के पश्चात् ग्रामीण स्त्रियां उनपर मुग्ध होकर उनसे कुछ समय तक और अपना सम्बन्ध बनाये रखने के लिए उत्कण्ठित हो उठती हैं। प्रेमपथ के पथिक के लिए इस प्रकार की उत्कण्ठा नितान्त स्वाभाविक है। उन्हें भली भांति यह विदित है कि लोचन-तृप्ति के इस संवाद को सुनकर लोग उनका उपहास करेंगे। किन्तु उनके हृदय के भाव तो लोक-लज्जा सम्बन्धी इस सीमा को पहले ही से पार कर चुके थे। अब

उन्हें संसार की आलोचना-प्रत्यालोचना का कुछ भी ध्यान न रहा। वे तो उनकी सुन्दर बातें सुनने के लिये उत्सुक थीं। देखिये, नीचे के पद में गोस्वामीजी ने इस मार्मिक स्थल का कितना सुन्दर दृश्य उपस्थित किया है! इसे कहते हैं भावुकता!

धरि धीर कहैं "चलु देखिय जाइ जहाँ सजनी रजनी रहिहैं।
करिहै जगपोच, न सोच कछू, फल लोचन आपन तौ लहिहैं॥
सुख पाइहैं कान सुने बतियाँ, कल आपुस में कछु पै कहिहैं।
तुलसी अति प्रेम लगीं पलकैं, पुलकी लखि राम हिये महिहैं॥

अयोध्याकाण्ड ॥ २३ ॥

सामाजिकदशा

रामायण में गोस्वामीजी ने तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति का कई स्थलों पर चित्रण किया है। मुसल्मानों का शासन सुदृढ़ हो जाने पर हिन्दू जनता राजनैतिक बातों से किस प्रकार खिन्न और उदासीन होगई थी, इसका प्रमाण मन्थरा के शब्द हैं। जब वह कहती है कि "कोई राजा हो, इसमें मेरी क्या हानि है। मुझे "चेरी" छोड़कर "रानी" थोड़े ही होना है"। इस राजनैतिक दशा के साथ-साथ हिन्दुओं की धार्मिक दशा में भी परिवर्तन हो चला था। निर्गुणवादियों का एक दल, जो श्रुति-स्मृति-सम्मत धर्म का विरोधी था, वर्णाश्रमधर्म के जड़ में कुठाराघात कर रहा था। कुवासनाओं ने कर्म एवं उपासना-क्षेत्र को अपवित्र कर दिया था। दंभ और पाखण्ड का तो इतना आधिक्य हो चला था कि लोग ज्ञानियों के से वचन बोलकर और विरागियों का सा वेष धारणकर धर्म-परायण एवं श्रद्धालु गृहस्थों को ठगने लगे थे। गोरखपंथियों ने तो अलख जगाकर एक प्रकार से जनता को रामभक्ति से विमुख ही कर रक्खा था। इस विषय में गोस्वामी जी का निम्नलिखित पद देखिए—

बरन-धरम गयो, आस्रम निवास तज्यो,
आसन चकित सो परावनो परो सो है।
करम उपासना कुवासना विनास्यो, ज्ञान
वचन, बिराग वेप जगत हरो सो है।
गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग,
निगम नियोगते सो केलि ही छरो सो है।
काय मन बचन सुभाय तुलसी है जाहि,
रामनाम को भरोसो ताहि को भरोसो है।

उत्तरकाण्ड ॥ ८४ ॥

एक दूसरी परिस्थिति, जिसकी ओर रामायण में चर्चा की गई है, वह है शैव और वैष्णवों का पारस्परिक वैमनस्य। वैष्णव होते हुए भी गोस्वामीजी इसके विरोधी थे। यही कारण है कि कविता-वली में, अनेक छन्दों में शिव की स्तुति की गई है। इस सम्बन्ध में गोस्वामीजी का सिद्धान्त निम्नलिखित प्रतीत होता है—

आकाशात्पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्।
सर्वदेव नमस्कारः केशवं प्रति गच्छति ॥

जिस प्रकार आकाश से वृष्टि द्वारा नीचे गिरा हुआ जल सागर में ही जाता है, उसी प्रकार सब देवताओं के लिए किया हुआ नमस्कार भगवान केशव को ही प्राप्त होता है।

उत्तरकाण्ड में गोस्वामीजी ने पार्वती, अन्नपूर्णा तथा सीतावट की महिमा एवं गंगाजी के माहात्म्य का भी वर्णन किया है। तीर्थराज काशी तथा अयोध्या को भी आप नहीं भूले हैं। इससे इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि इन देवताओं तथा स्थानों के प्रति उस समय लोगों की विशेष श्रद्धा थी।

कवितावली में गोस्वामीजी ने अपने सम्बन्ध में भी कई स्थलों पर निवेदन किया है जिससे उनकी

आत्म-निवेदन परिस्थिति एवं जीवनी पर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। नीचे इस सम्बन्ध में कुछ उद्धरण दिये जाते हैं—

(१) मात-पिता जग जाय तज्यो, विधिहू न लिखी कछु भाल भलाई।

(२) जायो कुल मंगन बधावनो बजायो सुनि,
भयो परिताप ताप जननी जनक को।
बारे तें ललात बिललात डार-डार दीन,
जानत हौं चारि फल चारि ही चनक को।

(३) रामबोला नाम हौं गुलाम राम साहि को।

इन ऊपर लिखित उद्धरणों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि गोस्वामी जी को माता-पिता के लालन-पालन का सुख नहीं मिला था। सम्भवतः उनके जन्म लेने से माता-पिता को विशेष कष्ट हुआ था। बचपन में इनका नाम रामबोला था, यह तो विनयपत्रिका से भी सिद्ध हो जाता है—

राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम।

मृत्यु के कुछ दिन पूर्व गोस्वामीजी के बाहु में पीड़ा थी, जिसके लिए उन्हें हनुमान बाहुक की रचना करनी पड़ी थी। इस रोग का आभास कवितावली के निम्नलिखित छन्दों में भी है—

(१) अविभूत वेदन विषम होत, भूतनाथ,
तुलसी विकल पाहि पचत कुपीर हौं।
मारिए तौ अनायास कासी बास खास फल,
ज्याइये तो कृपा करि निरुज सरीर हौं।

उत्तरकांड ॥१६६॥

(२) रोग भयो भूत सो, कुसूत भयो तुलसी को,
भूतनाथ पाहि पद-पंकज गहतु हौं।
ज्याए तौ जानकीरमन जन जानि जिय,
मारिए तौ मांगी मीचु सूधिये कहतु हौं।

उत्तरकांड ॥१६७॥

हम अन्यत्र इस बात की चर्चा कर चुके हैं कि कवितावली के उत्तरकाण्ड का वास्तव में भगवान रामचन्द्रजी के चरित्र से कोई सम्बन्ध नहीं है। वरन् इस कांड में भगवान रामचन्द्र जी के संबन्ध में अनेक विनय-सम्बन्धी पद कहे गए हैं। इसी की यहां संक्षेप में, विवेचना की जायगी।

विनय

यदि तनिक विचार करके देखा जाय, तो यह संसार दुःख से ही ओत-प्रोत जान पड़ेगा। भगवान बुद्ध को तो इसी दुख से दुखित होकर अपने यौवन के प्रारम्भ में ही इस संसार का त्याग करना पड़ा था। इस दुःख की विवेचना में एक स्थान पर भगवान कहते हैं—

भिक्षुओ! यह दुख आर्य्य सत्य है। जन्म, बुढ़ापा, रोग, मृत्यु, अप्रियों से संयोग, प्रियों से वियोग, इच्छित वस्तुओं की अप्राप्ति—यह सभी दुःख हैं।

अब प्रश्न यह है कि जब संसार में दुःख का इतना प्राधान्य है, तो उससे किस प्रकार बचा जाय? आर्य्य धर्म्म ने इसके लिए मोक्ष प्राप्त करना ही सर्वोत्तम उपाय बतलाया है। किन्तु इस मार्ग में सबसे बड़ी वाधा है चित्त की चञ्चलता। गीता में अर्जुन भगवान कृष्ण से कहते हैं—

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।

अर्थात्—मन बड़ा ही चञ्चल और बलवान है; वह इन्द्रियों को उन्मथित करने की क्षमता रखता है। उसको वश में करना उतना

ही कठिन है, जितना वायु को वश में करना । श्रुति भी इसका समर्थन करती है—

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः ।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम् ॥

मनुष्य का मन ही उसके बन्धन और मोक्ष का प्रधान कारण है । जब वह विषयों में फँस जाता है, तब तो बन्धन का कारण बन जाता है और जब विषयों में लिप्त नहीं होता, तब मुक्ति का साधक हो जाता है ।

अब यहां पर प्रश्न यह उपस्थित होता है कि मन को किस प्रकार विषयों से विमुख किया जाय । इसके लिए दो उपाय बतलाये गए हैं—ज्ञान और भक्ति । ज्ञान का मार्ग अतीव दुष्कर है, अतएव सर्वसाधारण के लिए भक्ति मार्ग ही श्रेयस्कर बतलाया गया है । कहा भी है—

ये कीर्तयन्ति वचसा हरिनामधेयं
संचिन्तयन्ति हृदि माधवरूपधेयम् ।
ते भुञ्जते सुकृत सम्मत भागधेयं
तेषां न शिष्यत इतोऽन्यदि हावधेयम् ॥

तात्पर्य्य यह है कि मन वच, कर्म—इन तीनों से भगवद्भक्ति में अपने आपको संलग्न करना चाहिए । इसीसे सब सुख प्राप्त होते हैं । भक्ति के भी अचार्यों ने अनेक मार्ग बतलाये हैं, जिनमें से श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवा, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्म-निवेदन मुख्य है । इन मार्गों पर आरूढ़ होने के पूर्व मनुष्य को अपने हृदय को शुद्ध बनाना पड़ता है । और हृदय की शुद्धि विनय के द्वारा ही हो सकती है । जब इष्टदेव का महत्व, उसकी भक्त-वत्सलता तथा सहायता देने की प्रवृत्ति के भावों से हृदय

आप्लावित हो जाता है तो उसके प्रति विनय सम्बन्धी भाव अनायास ही उच्छ्वास रूप में प्रस्फुटित होजाते हैं। ऐसी स्थिति में साधक अपने अहंभाव को भूल जाता है। उसमें मोह, दर्प और अभिमान का भी लेश नहीं रह जाता। चित्त की चञ्चलता भी प्रशान्त हो जाती है और उसको विश्व में अपने इष्टदेव ही की विभूति का प्रकाश देदीप्यमान दीख पड़ता है। उसके सामने वह अपने को बहुत ही क्षुद्र समझने लगता है। इस प्रकार के सतत अभ्यास से साधक भक्ति तथा विनय द्वारा अपने इष्टदेव के वास्तविक रूप का दर्शन एवं अपनी आत्मा को विशुद्धकर मोक्ष का अधिकारी होता है। वह विनय द्वारा साधारण परिश्रम से ही उन साधनों को प्राप्त कर लेता है, जिन्हें ज्ञान द्वारा प्राप्त करने में अनेक वर्ष लग जाते हैं। इसलिए भक्ति और विनय का मार्ग राजमार्ग कहा गया है।

गोस्वामी जी इसी राजमार्ग के पथिक हैं। इसीलिये तो वे दूसरों को भी इस पर चलने का आदेश देते हैं। आप सांसारिक लोगों को भगवान रामचन्द्र से ही याचना करने का उपदेश देते हैं। उनकी याचना से ही मनुष्य जन्म-मरण की बाधा से मुक्त हो सकता है। इस सम्बन्ध में नीचे का पद देखिये—

जग जाँचिये कोऊ न, जाँचिये जौ जिय जाँचिये जानकी जानहि रे।
जेहि जाँचत जाचकता जरि जाइ जो जारत जोर जहानहि रे॥
गति देखु विचारि विभीषन की, अरु आनु हिये हनुमानहि रे।
तुलसी भजु दारिद-दोष-दवानल, संकट-कोटि-कृपानहि रे॥

उत्तरकाण्ड॥ २८॥

आह! भगवान कितने दयालु हैं! उनके यहां जाति-पांति अथवा उच्च-नीच की भेद-भावना नहीं है। जिसने उनका नाम लिया, उसे अपनाने में वे कभी न चूके। देखिए, गोस्वामीजी लिखते हैं—

सोक समुद्र निमज्जत काढ़ि, कपीस कियो जग जानत जैसो ।
नीच निसाचर बैरी को बंधु, विभीषन कीन्ह पुरन्दर कैसो ॥
नाम लिए अपनाइ लियो, तुलसी सो कहौ जग कौन अनैसो ।
आरत आरति-भंजन राम गरीबनेवाज न दूसरो ऐसो ॥ उ० कां० ॥४॥

ऊपर गोस्वामीजी तथा कवितावली के सम्बन्ध में थोड़ा-सा ही निवेदन किया जा सका है। बहुत सी बातें तो इच्छा रहने पर भी स्थान-संकोच से नहीं दी जासकीं, फिर भी इसमें

उपसंहार

गोस्वामीजी के जीवन तथा उनकी कविता पर जो कुछ प्रकाश डाला गया है, वह उनके अन्य ग्रन्थों के मार्ग प्रदर्शन में यत्किञ्चित सहायक तो हो ही सकता है। गोस्वामीजी निखिल शास्त्र पारंगत विद्वान थे। भगवद्भक्ति, सांसारिक अनुभव एवं प्रतिभा ने उनकी विद्वता में और भी मणिकाञ्चन संयोग उपस्थित कर दिया था। उन्होंने हिन्दूसमाज के सम्मुख राम के जिस आदर्श रूप की प्रतिष्ठा की, उसके मार्ग पर चलने से उसका सदैव कल्याण होना ही सम्भव है। विल्सन साहब के शब्दों में जिसका उल्लेख अन्यत्र हो चुका है, संस्कृत के अनेक ग्रन्थों से हिन्दू समाज को इतना लाभ नहीं पहुँचा, जितना गोस्वामी जी के भाषा ग्रन्थों से पहुँचा है। मुसल्मान धर्म क्या है, इसकी व्याख्या सरल है। ईसाई धर्म के स्वरूप का वर्णन करना उससे भी सरल है। किन्तु हिन्दूधर्म क्या है, इसका सर्वाङ्गीण रूप एक मात्र गोस्वामीजी के ही ग्रन्थों में यथार्थ रूप से मिलता है। इन ग्रन्थों में नाना पुराण निगमागम सम्मत धर्म की ही विशद रूप से व्याख्या की गई है। आशा है, हिन्दूसमाज इस व्याख्या का अध्ययन एवं मनन करके अपने ध्रुव लक्ष्य की ओर अग्रसर होता जायगा।

उदयनारायण त्रिपाठी
एम्० ए० साहित्यरत्न

—:o:—

बालकांड

(दुर्मिल सवैया)

अवधेस के द्वारे सकारे गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकि हौं सोच-बिमोचन को ठगि-सी रही, जे न ठगे धिक से॥
'तुलसी' मनरंजन रंजित अंजन नैन सु-खंजन-जातक से।
सजनी ससि में समसील उभै नवनील सरोरुह से बिकसे॥१॥

शब्दार्थ—सकारे = सवेरे। हौं = मैं। सोच-विमोचन = शोक दूर करने वाले। ठगि सी रही = मुग्ध हो गई। सुखंजन-जातक = सुन्दर खंजन पक्षी का बच्चा। से = वे। समसील = एक समान।

पदार्थ—(अयोध्यापुर वासिनी एक स्त्री अपनी सखी से कहती है) हे सखी, मैं आज सवेरे महाराज दशरथ के महल के द्वार पर गई थी। मैंने देखा कि राजा अपने कुमार रामचद्र को गोद में लेकर बाहर निकले। मैं शोक को दूर करने वाले राजकुमार को देखकर मुग्ध-सी हो गई! जो उन्हें देखकर मुग्ध न हो उसे धिक्कार है। तुलसीदास जी कहते हैं कि वह स्त्री अपनी सखी से कहती है कि हे सखी वे मन को आनन्दित करने वाली, आँजन लगी हुई, सुन्दर खंजन पक्षी के बच्चे की तरह, आंखें देखने में ऐसी जान पड़ती हैं मानों चन्द्रमा में एक ही तरह के दो नये नीले कमल खिले हों।

अलंकार—धर्म लुप्तोपमा और गम्योत्प्रेक्षा।

पग नूपुर औ पहुँची करकंजनि, मंजु बनी मनिमाल हिये।
नवनील कलेवर पीत झँगा झलकैं, पुलकैं नृप गोद लिये॥
अरबिंद सो आनन, रूप-मरंद अनंदित लोचन-भृंग पिये।
मन मों न बस्यो अस बालक जौ 'तुलसी' जग में फल कौन जिये॥२॥

शब्दार्थ—कलेवर = देह। पीत झँगा = पीली झिंगुली। अरविंद = कमल। मरन्द = पराग।

पद्यार्थ—उनके पैरों में नूपुर (घुँघरू), कमलवत हाथों में पहुँची और छाती पर सुन्दर मणियों की माला विराजमान थी। नये नीले (कमल के समान) देह में पीली झिंगुली झलक रही है। राजा उन्हें गोद में लिये हुए आनन्द से गद्गद् हो रहे हैं। राजा के नेत्र रूपी भौंरे रामचन्द्र के मुख-रूपी कमल के सौन्दर्य रूपी पराग का पान करके आनन्दित हो रहे हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि जिस मनुष्य के मन में ऐसे बालक की माधुरी मूर्ति न बसी उसके संसार में जन्म लेने से क्या लाभ?

अलंकार—उपमा और रूपक।

तन की दुति स्याम सरोरुह, लोचन कंज की मंजुलताई हरैं।
अति सुन्दर सोहत धूरि भरे, छवि भूरि अनंग की दूरि धरैं॥
दमकैं दँतियाँ दुति दामिनि ज्यों, किलकैं कल बाल-विनोद करैं।
अवधेस के बालक चारि सदा, 'तुलसी'-मन-मन्दिर में विहरैं॥३॥

शब्दार्थ—दुति = कान्ति। सरोरुह = कमल। मंजुलताई = कोमलता। भूरि = अधिक। कल = सुन्दर।

पद्यार्थ—उनके शरीर की कान्ति नीले कमल की तरह है। उनकी आँखें कमल से भी अधिक कोमल हैं। श्रीरामचद्र जी का शरीर धूल से भरे होने पर भी अत्यन्त सुन्दर जान पड़ता है और वह सुन्दर शरीर कामदेव के अत्यन्त अधिक शोभा को भी धूल में मिला देता है

(लज्जित करता है)। छोटे छोटे दाँतों की चमक बिजली की चमक की तरह है। वह खिलवाड़ करते हुए किलकारी भरते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि महाराजा दशरथ के ये चारों बालक मेरे मन रूपी मन्दिर में सदा विहार किया करें।

अलंकार—पहले चरण में वाचक लुप्तोपमा, तीसरे चरण में पूर्णोपमा ।

कबहूँ ससि माँगत आरि करैं, कबहूँ प्रतिबिंब निहारि डरैं।
कबहूँ करताल बजाइ कै नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं॥
कबहूँ रिसिआइ कहैं हठि कै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
अवधेस के बालक चारि सदा, 'तुलसी'-मन-मन्दिर में बिहरैं॥४॥

शब्दार्थ—आरि करैं = हठ करते हैं। करताल = ताली। अरैं = अड़ जाते हैं।

पद्यार्थ—कभी चन्द्रमा को लेने की हठ करते हैं, कभी अपनी ही छाया देख कर डर जाते हैं। कभी ताली बजाते हुए नाचते हैं जिसको देख कर माताओं का चित्त प्रसन्न हो जाता है। कभी क्रोध में भर कर हठ करके कुछ कहते हैं और फिर जिसके लिये अड़ जाते हैं उसी को लेकर मानते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि महाराजा दशरथ के ये चारो बालक मेरे मन रूपी मन्दिर में सदा विहार किया करें।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

बर दंत की पंगति कुंदकली, अधराधर-पल्लव खोलन की।
चपला चमकै घन बीच, जगै छबि मोतिनमाल अमोलन की॥
घँघुरारी लटैं लटकैं मुख ऊपर कुंडल लोल कपोलन की।
निवछावरि प्रान करै 'तुलसी', बलि जाउँ लला इन बोलन की॥५॥

शब्दार्थ—कुंद = एक फूल विशेष का नाम जो सफ़ेद होता है। अधराधर = दोनों होंठ। चपला = बिजली। लोल = चंचल।

पद्यार्थ—उनके सुन्दर दांतों की कतारें कुन्द की कली के समान हैं और हँसते समय कोमल लाल पत्ते की तरह उनके दोनों होंठ खुल जाते हैं। बहुमूल्य मोतियों की माला (सांवले शरीर पर) ऐसी चमकती है जैसे बिजली काले बादलों के बीच में कौंधती है। उनके घुँघराले बालों की लटें मुख पर लटक रही हैं और दोनों कपोलों पर कुण्डल हिल रहे हैं। इन सब पर तथा उनकी (प्यारी तोतली) बोली पर तुलसीदास जी बलि जाते हैं और अपने प्राण को न्यौछावर करते हैं।

अलंकार—उपमा।

पदकंजनि मंजु बनी पनहीं, धनुहीं सर पंकजपानि लिये।
लरिका सँग खेलत डोलत हैं, सरजूतट, चौहट, हाट, हिये॥
'तुलसी' अस बालक सों नहिं नेह कहा जप जोग समाधि किये।
नर ते खर सूकर स्वान समान, कहौ जग में फल कौन जिये॥६॥

शब्दार्थ—डोलत हैं = घूमते हैं। चौहट = चौराहा।

पद्यार्थ—कमल के समान पैरों में जूता शोभा दे रहा है और वह अपने कमलवत् हाथों में धनुष बाण लिये हुए हैं। वह सरयू के किनारे, चौराहे, बाज़ार तथा (भक्तों के) हृदय में खेलते फिरते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि ऐसे बालक से जिसने स्नेह नहीं किया उसके जप, योग, समाधि आदि क्रियाएँ करने से क्या लाभ? ऐसे मनुष्य गधे, कुत्ते और सूअर के समान हैं। भला कहिये, उन्हें संसार में जीने से कौन सा फल मिलता है?

अलंकार—रूपक और स्वभावोक्ति।

सरजू वर तीरहि तीर फिरैं, रघुवीर सखा अरु वीर सबै।
धनुहीं कर तीर, निषंग कसे कटि, पीत दुकूल नवीन फबै॥

'तुलसी' तेहि औसर लावनिता दस, चारि, नौ, तीन इकीस सबै ।
मति भारति पंगु भई जो निहारि, विचारि फिरी उपमा न पबै ॥७॥

शब्दार्थ—बीर = भाई । सवै (सवय) = समान अवस्था के या हमजोली । निषंग = तरकस । दुकूल = रेशमी कपड़ा । लावनिता = सुन्दरता । दस = दसो दिग्पाल । चारि = भगवान के चार रूप । नौ = नवो अवतार (रामावतार को छोड़ कर) । तीन = त्रिदेव (ब्रह्मा, बिष्णु, महेश) । इक्कीस = बढ़कर । सबै = सब से । भारति = सरस्वती ।

पद्यार्थ—श्रीरामचन्द्र जी अपने समान अवस्था वाले मित्रों तथा भाइयों को साथ लेकर सरयू के किनारे किनारे घूमते फिरते हैं । उन सब के हाथों में धनुष बाण हैं और वे कमर में तरकस कसे हुए हैं तथा उनके शरीर पर पीला रेशमी वस्त्र सुशोभित है । तुलसीदास जी कहते हैं कि उन लोगों की उस समय की सुन्दरता दसों दिग्पालों, भगवान् के चारों रूपों, नवों अवतारों और त्रिदेवों की शोभा से भी बढ़ कर थी । उनकी (अपूर्व) शोभा को देख कर सरस्वती की बुद्धि उपमा ढूँढ़ने चली । किन्तु उपमा खोजते खोजते वह लंगड़ी हो गई । (इतने पर भी जब उपमा न मिली तो वह यह विचार कर) वापस लौट आई (कि अब उपमा का मिलना असंभव है) ।

नोट—कुछ विद्वानों ने दस से दस माधुर्य, चारि से चार प्रताप, नव से नव ऐश्वर्य, तीन से तीन स्वभाव, इक्कीस से इक्कीस यश अर्थ लिया है जो सब श्रीरामचन्द्र जी में विद्यमान थे । यह अर्थ ऊपर के अर्थ से भी अच्छा जान पड़ता है । क्योंकि श्रीरामचंद्र जी पूर्ण अवतार थे । उनका उपरोक्त देवताओं से बढ़कर होना कोई आश्चर्य की बात नहीं । ये माधुर्य, प्रताप, आदि गुण अवतार भेदों को दिखलाने के लिये लिखे गये हैं ।

अलंकार—अतिशयोक्ति ।

(कवित्त)

छोनी में के छोनीपति छाजै जिन्हें छत्रछाया,
छोनी-छोनी छाये छिति आये निमिराज के।
प्रबल प्रचंड वरिबंड बर बेप बपु,
बरबे को बोले बयदेही बरकाज के।
बोले वंदी बिरुद बजाय वर बाजने ऊ,
बाजे-बाजे बीर बाहु धुनत समाज के।
'तुलसी' मुदित मन पुर-नर-नारि जेते,
बार-बार हेरैं मुख औध-मृगराज के॥ ८॥

शब्दार्थ—छोनी = पृथ्वी। छोनीपति = राजा। छाजै = सुशोभित है। छोनी छोनी = कई अक्षौहिणी। निमिराज = राजा जनक। वरिबंड = बलवान। वपु = शरीर। बरकाज = विवाह। विरुद = यश। बाजे-बाजे = कोई कोई। बाहु धुनत = भुजा ठोकते हैं। औध-मृगराज = अयोध्या के सिंह अर्थात श्रीरामचन्द्र जी।

पद्यार्थ—पृथ्वी भर के राजा जिनके ऊपर राजछत्र सुशोभित हो रहा था बहुत अधिक संख्या में जनकपुरी में एकत्रित हुए हैं। वे बड़े बलवान, प्रतापी, सुन्दर वेष धारण किये हुए, तथा सुन्दर रूप वाले हैं। वे यहां पर सीता के स्वयंवर में वरण किये जाने के लिये बुलाये गये हैं। बन्दी लोग बाजे बजाबजा कर उन राजाओं के यश का बखान करते हैं जिसे सुनकर कई राजा भुजाएँ ठोक रहे हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि इस समय जनकपुर के रहने वाले सभी स्त्री-पुरुष प्रसन्न हो रहे हैं और बार बार श्रीरामचन्द्र जी के मुँह की तरफदेख रहे हैं।

अलंकार—वृत्त्यानुप्रास और यमक।

सीय के स्वयंवर, समाज जहाँ राजनि को
राजनि के राजा महाराजा जानै नाम को?

पवन, पुरंदर, कृसानु, भानु, धनद से,
गुन के निधान रूपधाम सोम-काम को ?
बान बलवान जातुधानप सरीखे सूर,
जिन्हके गुमान सदा सालिम संग्राम को।
तहाँ दसरत्थ के, समर्थ नाथ 'तुलसी के
चपरि चढ़ायो चाप चंद्रमा-ललाम को॥ ६॥

शब्दार्थ—पुरंदर = इन्द्र। सोम = चन्द्रमा। जातुधानप = रावण। सालिम = दृढ़। चपरि = फुर्ती से। चन्द्रमा-ललाम = शंकर जी।

पद्यार्थ—सीता के स्वयंवर में अनेकों राजा, महाराजा और राजाओं के राजा हैं, उनके नाम को कौन बतला सकता है। वे पवन, इन्द्र अग्नि, सूर्य, कुवेर के समान गुणों की खान हैं और उनकी सुन्दरता के सामने चन्द्रमा और कामदेव क्या चीज़ हैं, अर्थात् वे भी तुच्छ हैं। बाणासुर और रावण जैसे बलवान, जिन्हें अपने बल और युद्धकौशल का बड़ा अभिमान था धनुष को उठा न सके। वहां दशरथ के पुत्र और तुलसीदास के समर्थ स्वामी रामचन्द्र जी ने शिव के धनुष को फुर्ती से चढ़ा दिया।

अलंकार—उपमा।

मयनमहन पुरदहन गहन जानि,
आनि कै सबै को सारु धनुप गढ़ायो है।
जनक सदसि जेते भले-भले भूमिपाल,
किये बलहीन, बल आपनो बढ़ायो है।
कुलिस कठोर कूर्मपीठ तें कठिन अति,
हठि न पिनाक काहू चपरि चढ़ायो है।
'तुलसी' सो राम के सरोजपानि परसत ही,
टूट्यो मानो बारे तें पुरारि ही पढ़ायो है॥ १०॥

शब्दार्थ—मयनमहन = कामदेव को मथन करनेवाले अर्थात् शिव जी। पुर = त्रिपुरासुर। गहन = कठिन। आनि कै = बटोर कर। सारु = सार। बारे तें = लड़कपन से।

पद्यार्थ—जिस धनुष को शिव जी ने त्रिपुरासुर को भस्म करना कठिन जानकर सब शक्तिमान पदार्थों का सार लेकर बनाया था, जिसने जनक की सभा में एकत्रित बड़े बड़े राजाओं को बलहीन करके अपने बल का प्रताप दिखलाया था, जो वाज़ से कठोर, कच्छप की पीठ से कड़ा था, जिसको किसी ने हठ करके भी फुर्ती से नहीं चढ़ाया, वही कठोर धनुष रामचन्द्र जी के कमल सरीखे हाथ से छूते ही टूट गया मानो शिवजी ने उसे लड़कपन में ही सिखा रखा था (कि रामचन्द्र के छूते ही टूट जाना)।

अलंकार—द्वितीय विभावना और उत्प्रेक्षा।

(छप्पय)

डिगति उर्वि अति गुर्वि, सर्व पव्वै समुद्र सर।
ब्याल बधिर तेहि काल, बिकल दिगपाल चराचर॥
दिग्गयंद लरखरत, परत दसकंठ मुक्खभर।
सुरबिमान, हिमभानु, भानु संघटित परस्पर॥
चैांके बिरंचि संकर सहित, कोल कमठ अहि कलमल्यौ।
ब्रह्मांड खंड कियो चंड धुनि, जबहिं राम सिवधनु दल्यौ॥११॥

शब्दार्थ—उर्वि = पृथ्वी। गुर्वि = भारी। पव्वै = पर्वत। दिग्गयंद = दिशाओं के हाथी। मुक्ख भर = मुख के बल। हिमभानु = चन्द्रमा। संघटित = टकराते हैं। चंड = तेज़, भयंकर।

पद्यार्थ—ज्योंही श्रीरामचन्द्र जी ने धनुष को तोड़ा त्योंही उसकी भयङ्कर आवाज़ ने ब्रह्माण्ड को टुकड़े टुकड़े कर दिया। अत्यन्त भारी

पृथ्वी कांपने लगी, सब पहाड़, समुद्र और तालाब हिलने लगे। शेष-नाग बहरे हो गये, दिग्पाल तथा सभी जड़ चैतन्य जीव व्याकुल हो उठे। दिशाओं के हाथी लड़खड़ाने लगे, रावण मुँह के बल गिर पड़ा। देवताओं के विमान, चन्द्रमा और सूर्य आपस में टकराने लगे। ब्रह्मा, शंकर सहित, चौंक उठे और बाराह, कच्छप और शेषनाग कलमलाने लगे।

अलंकार—अतिशयोक्ति।

(घनाक्षरी)

लोचनाभिराम घनस्याम रामरूप-सिसु,
सखी कहै सखी सों तू प्रेम-पय पालि री !
बालक नृपालजू के ख्याल ही पिनाक तोर्‌यो,
मंडलीक-मंडली-प्रताप-दाप दालि री।
जनक को, सिया को, हमारो, तेरो, 'तुलसी' को,
सबको भावतो ह्वै है मैं जो कह्यो कालि री।
कौसिला की कोखि पर तोषि तन बारिये री,
राय दसरत्थ की बलैया लीजै आलि री ॥१२॥

शब्दार्थ—लोचनाभिराम = नेत्रों को प्रिय लगने वाले। पिनाक = धनुष। मंडलीक-मंडली = छोटे छोटे राजाओं के समूह। दाप = घमंड। दालि = दलन करना, चूर्ण करना। तोषि = प्रसन्न होकर।

पद्यार्थ—एक सखी दूसरी सखी से कहती है कि हे सखी! बादल के समान सांवले शरीर वाले तथा आंखों को प्रिय लगने वाले राम-चन्द्र के रूप रूपी शिशु को स्नेह रूपी दूध से पालो। राजा दशरथ के इस लड़के ने खिलवाड़ ही में धनुष को तोड़कर राजाओं के घमंड और प्रताप को नष्ट कर दिया। मैंने तुमसे कल ही कहा था कि जनक की, सीता की, हमारी, तुम्हारी, तथा सब की इच्छा

पूर्ण होगी। (सो वह इच्छा आज रामचन्द्र के धनुष तोड़ने पर पूर्ण हो गई।)

अलंकार—अनुमान।

दूब दधि रोचना कनकथार भरि-भरि,
आरती सँवारि वर नारि चलीं गावतीं।
लीन्हें जयमाल कर-कंज सोहैं जानकी के
'पहिराओ राघोजू को' सखियाँ सिखावतीं।
'तुलसी' मुदित-मन जनक नगर-जन,
झाँकती झरोखे लागीं सोभा रानी पावतीं॥
मनहुँ चकोरी चारु बैठीं निज-निज नीड़,
चंद की किरन पीवैं पलकैं न लावतीं॥१३॥

शब्दार्थ—रोचन = हल्दी। चारु = सुन्दर। नीड़ = घोंसला।

पद्यार्थ—सुन्दर स्त्रियां सोने के थालों में दूब, दही, रोचन भर भर कर, आरती संवार कर गाती हुई चलीं। जानकी के कमलवत हाथ जयमाल लिये हुए सुशोभित हो रहे हैं। सखियां उन्हें सिखलाती हैं कि श्रीरामचन्द्र जी को (यह माल) पहिनाओ। तुलसीदासजी कहते हैं कि उस समय जनकपुर के रहने वाले सभी स्त्री पुरुष प्रसन्न थे और झरोखों में लगकर उस समय की शोभा को देखती हुई रानियां इस प्रकार प्रसन्न हो रही थीं मानों सुन्दर चकोरिनें अपने अपने घोंसलों में बैठकर एक टक चन्द्रमा की किरणों को पी रही हों।

अलंकार—उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

नगर निसान वर बाजैं, व्योम दुंदुभी,
विमान चढ़ि गान कै-कै सुरनारि नाचहीं।
जय जय तिहूँ पुर, जयमाल राम-उर,
बरषैं सुमन सुर, रूरे रूप राचहीं।

जनक को पन जयो, सबको भावतो भयो,
'तुलसी' मुदित रोम-रोम मोद माचहीं।
साँवरो किसोर, गोरी सोभा पर तृन तोरी,
'जोरी जियौ जुग-जुग' सखीजन जाँचहीं ॥१४॥

शब्दार्थ—निसान = बाजे। रूरे = सुन्दर। राचहीं = अनुरक्त होते हैं। तृन तोरी = अपने प्रेम पात्र पर किसी की दृष्टि न पड़ जाय इस अभिप्राय से तिनका तोड़ा जाता है।

पद्यार्थ—जनकपुर में तरह तरह के सुन्दर बाजे और आकाश में नगाड़े बज रहे हैं। अप्सराएँ विमानों पर चढ़ चढ़कर नाच रही हैं। श्री रामचन्द्रजी के गले में जयमाल पड़ते ही तीनों लोक में जयजयकार होने लगा। देवता फूलों की वर्षा करने लगे और श्रीरामचन्द्र जी के सुन्दर रूप पर मोहित हो गये। जनक का प्रण पूरा हो गया, साथ ही सबके मन की इच्छा पूरी हुई। इस कारण सब लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए। सीताजी की सखियां सांवरे शरीरवाले रामचन्द्र और गोरे शरीर वाली सीता की शोभा पर तृण तोड़ कर ईश्वर से मनाती हैं कि यह जोड़ी सदा जीती रहे।

भले भूप कहत भले भदेस भूपनि सों,
'लोक लखि बोलिये, पुनीति रीति मारषी'।
जगदंबा जानकी, जगतपितु रामभद्र,
जानि, जिय जोवो, ज्यौं न लागै मुँह कारषी।
देखे हैं अनेक ब्याह, सुने हैं पुरान वेद,
बूझे हैं सुजान-साधु नर-नारि पारषी।
ऐसे सम समधी समाज ना बिराजमान,
राम-से न बर, दुलही न सीय सारषी ॥१५॥

शब्दार्थ—भदेस = गवांर, दुष्ट। मारषी = प्राचीन। जोवो = देखो। कारषी = कालिख, कलंक।

पद्यार्थ—भले राजा दुष्ट राजाओं से कहते हैं कि लोक और प्राचीन पवित्र रीति को देख सुन कर बोलना उचित है। जानकी को संसार की माता और रामचन्द्र जी को संसार का पिता जानकर हृदय में विचार कर देखो, जिससे संसार में तुम्हें कलंकित न होना पड़े। हम लोगों ने बहुत से ब्याह देखे हैं और वेदों और पुराणों में भी विवाह की कथाएँ सुनी हैं तथा सज्जन साधु और अनुभवी स्त्री पुरुषों से भी पूछा है। सबसे यही पता चलता है कि कहीं भी दशरथ और जनक के तरह समान गुण और स्वभाव वाले समधी और रामचन्द्र जैसे वर और सीता जैसी दुलहिन नहीं मौजूद थी!

बानी, बिधि, गौरी, हर, सेसहू, गनेस कही,
सही भरी लोमस भुसुंडि बहु बारिखो।
चारिदस भुवन निहारि नर-नारि सब,
नारद को परदा न नारद सो पारिखो।
तिन कही जग में जगमगति जोरी एक,
दूजो को कहैया औ सुनैया चष चारिखो।
रमा, रमारमन, सुजान हनुमान कही,
'सीय-सी न तीय, न पुरुष राम सारिखो' ॥१६॥

शब्दार्थ—सही भरी = समर्थन किया। बहु बारिखो = बहुत अवस्था वाले, वृद्ध। चष चारिखो = चार आँख वाले।

पद्यार्थ—सरस्वती, ब्रह्मा, पार्वती, महादेव, शेषनाग और गणेश जी कहते हैं कि रामचन्द्र और सीता के समान कोई दूसरा नहीं है। वृद्ध लोमस ऋषि और काक-भुशुंडि भी इसको सही बतलाते हैं। चौदहों भुवन के स्त्री पुरुष को देखकर नारद जी ने, जिनके लिये न तो कहीं पर्दा है और न जिनके जैसा कोई जांच करने वाला है, कहा है कि संसार में श्री रामचन्द्र और जानकी की एक मात्र जोड़ी जगमगाती है। चार आंखों वाला और दूसरा कौन है जो दूसरी ऐसी

सुन्दर और अच्छी जोड़ी की बात बतलावे और सुने । लक्ष्मी, विष्णु और साधु हनुमान ने भी कहा है कि सीता के समान न तो कोई स्त्री है और न रामचन्द्र के समान कोई पुरुष ।

अलंकार—अतिशयोक्ति ।

(सवैया)

दूलह श्रीरघुनाथ बने, दुलही सिय सुंदर मंदिर माहीं ।
गावति गीत सबै मिलि सुंदरि, वेद जुवा जुरि विप्र पढ़ाहीं ।।
राम को रूप निहारति जानकि कंकन के नग की परछाहीं ।
यातें सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टारति नाहीं ।।१७।।

शब्दार्थ—कर टेकि = हाथ स्थिर रख कर ।

पद्यार्थ—राजमहल में दुलह श्रीरामचन्द्र जी और दुलहिन सुन्दरी सीता जी सुशोभित हो रही हैं । सब सुन्दरी स्त्रियां मिलकर मङ्गल गीत गाती हैं और युवा ब्राह्मण मिलकर वेदपाठ करते हैं । जानकी जी अपने हाथ के कंगन के नग में श्रीरामचन्द्र जी का प्रतिबिम्ब देख रही हैं । इसी कारण से वह और सब बातों की (विवाह सम्बन्धी और विधियों की) सुधि भूल गईं और हाथ को स्थिर रक्खे रहीं क्योंकि कि हाथ हटाने से रामचन्द्र के प्रतिबिम्ब को देखने का मौका न मिलता । वह (रूप देखने में इतना तन्मय हो गई थीं कि) पलकों को भी नहीं गिराती थीं ।

अलंकार—प्रथम हेतु ।

(कवित्त)

भूपमंडली प्रचंड चंडीस-कोदंड खंड्यौ,
चंड बाहुदंड जाको ताही सों कहतु हौं ।
कठिन कुठार धार धारिबे की धीरताहि,
बीरता बिदित ताकी देखिये चहतु हौं ।

'तुलसी' समाज राज तजि सो विराजै आजु,
गाज्यौ मृगराज गजराज ज्यों गहतु हौं।
छोनी में न छाँड्यौ छप्यौ छोनिप को छौना छोटो,
छोनिप-छपन बाँको बिरुद बहतु हौं ॥ १८ ॥

शब्दार्थ—चंडीस = शिव। कोदंड = धनुष। चंड = बलवान। धारिवे की = सहन करने की। गाज्यौ = गरजते हुए। छप्यौ = काट डाला। छौना = बालक। छोनिप-छपन = राजाओं का संहार करने वाला, क्षत्रिय-संहारक। बाँको बिरुद = सुन्दर यश। बहतु हौं = धारण करता हूँ।

पदार्थ—परशुराम जी कहते हैं कि राजाओं की मंडली के जिस बलशाली वीर ने शिव जी के कठोर धनुष को तोड़ा है उसीसे मैं कहता हूं कि मैं उसकी प्रसिद्ध वीरता और मेरे कठिन कुल्हाड़े की तीक्ष्ण धार को सहन करने की धीरता को देखना चाहता हूं। तुलसीदास जी कहते हैं कि परशुराम जी कहते हैं कि वह मनुष्य राजाओं के समाज को छोड़कर अलग हट जाय। मैं उस पर इस तरह से टूट पड़ूंगा जैसे सिंह गरज कर हाथी पर टूट पड़ता है। मैंने पृथ्वी के (क्षत्रिय) राजाओं के छोटे-छोटे बच्चों को भी काट डाला, उन्हें भी नहीं छोड़ा, इसी से मैं क्षत्रिय-संहारक का सुन्दर यश धारण किये हुए हूँ।

अलंकार—वृत्त्यनुप्रास।

निपट निदरि बोले बचन कुठारपानि,
मानि त्रास औनिपन मानो मौनता गही।
रोपे माषे लखन अकनि अनखौहीं बातैं,
'तुलसी' विनीत बानी बिहँसि ऐसी कही ॥

'सुजस तिहारो भरो भुवननि, भृगुनाथ !
प्रगट प्रताप, आपु कहौ सो सबै सही ।
टूट्यो सो न जुरैगो सरासन महेसजू को,
रावरी पिनाक में सरीकता कहा रही ?' ॥१६॥

शब्दार्थ—औनिपन = राजा । माये = बुरा माने । अकनि = सुनकर । अनखौहों = खिझाने वाली । सरीकता = साझा ।

पदार्थ—परशुराम जी ने बिलकुल अपमान से भरी बातें कहीं । इससे राजा लोग डरकर इस प्रकार चुप हो गये मानो वे मौनव्रत धारण किये हों । तुलसीदास जी कहते हैं कि उनकी खिझानेवाली बातें सुनकर लक्ष्मण जी क्रोध से तमातमा उठे लेकिन वह क्रोध को रोककर हँस कर नम्र शब्दों में बोले, "हे परशुराम जी ! आपका यश सभी लोकों में व्याप्त है, सर्वत्र आपका प्रताप प्रकट है, आपने जो कुछ कहा (अथवा आप जो कुछ कहें) सब ठीक है । शिव जी का धनुष जो टूट गया है अब जुड़ नहीं सकता । (आप टूटे धनुष को देखकर क्रुद्ध हो रहे हैं) क्या इस धनुष में आपका साझा था ?

अलंकार—अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा ।

(मत्तगयंद सवैया)

गर्भ के अर्भक काटन को पटु धार कुठार कराल है जाको ।
सोई हौं बूझत राज-सभा 'धनु को दल्यौ ?' हौं दलिहौं बल ताको ।
लघु आनन उत्तर देत बड़ो, लरिहै. मरिहै, करिहै कछु साको ।
गोरो गरूर गुमान भरो कहौ कौसिक छोटो-सो ढोटो है काको ॥२०॥

शब्दार्थ—अर्भक = बच्चा । पटु = चतुर । हौं = मैं । साको = बहादुरी से पैदा किया हुआ यश ।

पद्यार्थ—जिसका कठोर कुठार गर्भ के बच्चों को भी काटने में चतुर है वही मैं राजसभा से पूछता हूँ कि इस धनुष को किसने तोड़ा। मैं उसके बल के अभिमान को चूर्ण करूँगा। यह जो छोटे मुँह वाला बालक बढ़ बढ़ कर उत्तर दे रहा है वह मुझसे लड़कर या तो मरेगा या बहादुरी दिखला कर यश प्राप्त करेगा। ऐ विश्वामित्र जी, यह घमंड से भरा हुआ गौर-वर्ण का छोटा बालक किसका है?

अलंकार—कारण-निबन्धना अप्रस्तुतप्रेक्षा।

(कवित्त)

भख राखिबे के काज राजा मेरे संग दये,
जीते जातुधान, जे जितैया बिबुधेस के।
गौतम की तीय तारी, मेटे अघ भूरि भारो,
लोचन अतिथि भए जनक जनेस के।
चंड बाहुदंड बल चंडीस-कोदंड खंड्यौ,
ब्याही जानकी, जीते नरेस देस-देस के।
साँवरे-गोरे सरीर, धीर महाबीर दोऊ,
नाम राम-लषन, कुमार कोसलेस के॥ २१॥

शब्दार्थ—बिबुधेस (बिबुध + ईस) = देवताओं के राजा, इन्द्र।

पद्यार्थ—विश्वामित्र जी बोले—महाराजा दशरथ ने मेरे यज्ञ की रक्षा के लिये इन्हें मेरे साथ कर दिया। इन्होंने उन राक्षसों को भी मार गिराया जो इन्द्र को भी जीतने वाले थे। इन्होंने गौतम की स्त्री का, उसके बड़े भारी पाप को नष्ट करके, उद्धार किया और ये यहां राजा जनक के नेत्रों के अतिथि हुए (अर्थात् उन्हें दर्शन दिये)। यहां पर अपनी प्रचण्ड भुजाओं के बल से शिव जी के धनुष को तोड़ा और देश-देशान्तर के राजाओं को जीतकर जानकी को ब्याहा। ये सांवरे और गोरे शरीर वाले दोनों धीर-वीर राम और लक्ष्मण के नाम से विख्यात हैं और ये राजा दशरथ के पुत्र हैं।

(मत्तगयंद सवैया)

काल कराल नृपालन' के धनुभंग सुने फरसा लिए धाए।
लक्खन-राम बिलोकि सप्रेम, महारिसि तें फिरि आँखि दिखाए॥
धीर-सिरोमनि, बीर बड़े, बिनयी, विजयी, रघुनाथ सुहाए।
लायक हे भृगुनायक सो धनुसायक सौंपि सुभाय सिधाए॥२२॥

पदार्थ—राजाओं के लिये भयानक काल-रूप परशुराम जी धनुष का टूटना सुनकर कुठार लिए हुए दौड़े आए। वहां राम लक्ष्मण को देखकर प्रेम से भर गये। फिर क्रोध से आंखें दिखाईं। धीरों में शिरोमणि अत्यन्त वीर, विनयी और विजयी श्री रामचन्द्र जी उनको अच्छे लगे। रामचन्द्र जी योग्य थे इसलिये अपने धनुष बाण उन्हें सहज ही में सौंप कर वे वहां से चले गये।

अलंकार—वृत्त्यनुप्रास।

अयोध्याकांड

(सवैया)

कीर के कागर ज्यौं नृपचीर विभूषन, उप्पम अंगनि पाई।
औध तजी मगवास के रूख ज्यौं पंथ के साथी ज्यौं लोग-लुगाई॥
संग सुबंधु, पुनीत प्रिया मनो धर्म-क्रिया धरि देह सुहाई।
राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाई॥१॥

शब्दार्थ—कीर = तोता। कागर = (कागज) यहाँ पंख। उप्पम = उपमा। लुगाई = स्त्री। बटाऊ = राही।

पद्यार्थ—वन जाते समय राजसी वस्त्र और गहने त्याग देने पर रामचन्द्र जी का शरीर उसी प्रकार सुशोभित होने लगा जिस प्रकार पंख के झड़ जाने से तोते का शरीर सुन्दर मालूम होता है। उन्होंने अयोध्या को रास्ते के वृक्ष के समान और वहां के रहनेवाले स्त्री-पुरुषों को रास्ते के साथी के समान छोड़ दिया। उनके साथ में सुन्दर भाई लक्ष्मण और पतिव्रता स्त्री सीता जी इस प्रकार शोभा दे रहे थे मानो धर्म और क्रिया मनुष्य की देह धारण कर उनके साथ सुशोभित हो रहे हों। कमल के समान नेत्रवाले रामचन्द्र जी अपने पिता के राज्य को छोड़ कर राही की तरह चल पड़े।

अलंकार—उपमा, उत्प्रेक्षा।

कागर-कीर ज्यौं भूषन चीर सरीर लस्यो तजि नीर ज्यौं काई।
मातु-पिता प्रिय लोग सबै सनमानि सुभाय सनेह सगाई॥

संग सुभामिनि भाइ भलो, दिन द्वै जनु औध हुते पहुनाई ।
राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाई ॥२॥

शब्दार्थ—लस्यो = सुशोभित हुआ ।

पद्यार्थ—राजसी वस्त्र और गहनों को उतार देने पर रामचन्द्र जी का शरीर इस प्रकार सुशोभित हुआ जिस प्रकार पंख को त्यागने से तोता अथवा काई के हटा देने से पानी सुशोभित होता है । माता-पिता प्रिय-जन और स्नेही सम्बन्धियों के प्रति सम्मान प्रकट करके, साथ में सुन्दर स्त्री और अच्छे भाई लक्ष्मण को लेकर कमल-नेत्र श्री रामचन्द्र जी अपने पिता के राज्य को छोड़ कर बटोही की तरह चल पड़े, मानो वह दो-चार दिन के लिये अयोध्या में पाहुने बन कर आये हों ।

अलंकार—उपमा और उत्प्रेक्षा ।

(घनाक्षरी)

सिथिल सनेह कहै कौसिला सुमित्राजू सों,
मैं न लखी सौति, सखी ! भगिनी ज्यौं सेई है ।
कहैं मोहिं मैया, कहौं, "मैं न मैया भरत की,
बलैया लैहौं, भैया ! तेरी मैया कैकेयी है" ।
'तुलसी' सरल भाय रघुराय माय मानी,
काय मन बानी हूँ न जानी कै मतेई है ।
बाम बिधि मेरो सुख सिरिससुमन सम,
ताको छल-छुरी कोह-कुलिस लै टेई है ॥३॥

शब्दार्थ—सेई है = सेवा की है, जाना है । मतेई = सौतेली माता । कोह-कुलिस = क्रोध रूपी बज्र । टेई है = तेज़ किया है ।

पद्यार्थ—कौशल्या जी स्नेह से गद्‌गद् होकर सुमित्रा जी से बोली कि हे सखी! मैंने कैकेयी को कभी सौत की तरह नहीं जाना बल्कि बहन की तरह उसके साथ व्यवहार रखा। जब रामचन्द्र मुझे मां कह कर पुकारते थे तो मैं कहती थी कि हे भैया! मैं तेरी बलैया लेती हूँ। मैं तुम्हारी माता नहीं हूँ, भरत की माता हूँ, तुम्हारी माता तो कैकेयी हैं। सरल स्वभाव वाले रामचन्द्र भी उसको माता ही समझते थे। मन बानी और कर्म से वह कभी प्रकट नहीं करते थे कि कैकेयी उनकी सौतेली मां है। लेकिन कुटिल ब्रह्मा ने सिरिस फूल के समान कोमल, मेरे सुख को नष्ट करने के लिये कैकेयी के छल रूपी छूरी को उसके क्रोध रूपी वज्र पर तेज़ किया है। (इस प्रकार मेरे बसे बसाये घर को ब्रह्मा ने चौपट कर दिया)।

अलंकार—उपमा और रूपक।

"कीजै कहा, जीजी जू!" सुमित्रा परि पायँ कहै,
'तुलसी' सहावै विधि सोई सहियतु है।
रावरो सुभाव राम-जन्म ही तें जानियत,
भरत की मातु को कि ऐसो चहियतु है?
आई राजघर, व्याहि आई राजघर माँह,
राज-पूत पाए हूँ न सुख लहियतु है।
देह सुधागेह ताहि मृगहू मलीन कियो,
ताहू पर बाहु बिनु राहु गहियतु है" ॥४॥

शब्दार्थ—सुधागेह = अमृत का घर, चन्द्रमा।

पद्यार्थ—सुमित्रा जी कौशल्या जी के पैरों पड़ कर कहतीं हैं कि हे बहन! क्या किया जाय, जो ब्रह्मा सहावे उसे सहना ही होगा। आपका (सरल और निष्कपट) स्वभाव तो इसी से प्रकट है कि राम सरीखा शीलवान् पुत्र आपके कोख से पैदा हुआ है। क्या भरत की माता को

आपके साथ ऐसा व्यवहार करना उचित था ? आपने राजा के घर में जन्म लिया, राजा ही के घर में आपका व्याह हुआ और आप राज-माता भी हुईं फिर भी आपको उसी प्रकार सुख नहीं मिल रहा है जिस प्रकार चन्द्रमा अमृत का घर होने पर भी, एक तो मृग के द्वारा कलंकित हुआ दूसरे बिना बाँह वाला राहु उसे ग्रसित करता है। (आपको एक ही कष्ट नहीं बल्कि दो कष्टों का सामना करना पड़ा। एक तो पुत्र राज्यपद से वंचित किया गया दूसरे उसे बनवास भी मिला)।

अलंकार—दृष्टान्त ।

(सवैया)

नाम अजामिल से खलकोटि अपार नदी भव बूड़त काढ़े।
जो सुमिरे गिरि-मेरु सिला-कन होत अजाखुर बारिधि बाढ़े॥
'तुलसी' जेहि के पद-पंकज तें प्रगटी तटिनी जो हरै अघ गाढ़े।
सो प्रभु स्वै सरिता तरिबे कहँ माँगत नाव करारे ह्वै ठाढ़े॥ ५ ॥

शब्दार्थ—तटिनी = नदी। स्वै = उसी

पद्यार्थ—जिस रामचन्द्र जी के नाम ने अजामिल के समान करोड़ों पापियों को संसार रूपी अथाह नदी में डूबने से बचाया, जिसके नाम के स्मरण करने मात्र से मेरु पर्वत पत्थर के कण के समान, और बड़ा भारी समुद्र बकरी के खुर के समान हो जाता है। (जिनके नाम का स्मरण करने से कठिन के कठिन कार्य भी साध्य हो जाता है)। तुलसीदास जी कहते हैं कि जिनके चरण-कमल से गंगा जी प्रकट हुईं, जो बड़े बड़े पापों को नष्ट कर देती हैं। ऐसे प्रतापी रामचन्द्र उसी नदी (गंगा जी) को पार करने के लिये किनारे पर खड़े होकर नाव मांग रहे हैं।

अलंकार—रूपक और उपमा।

एहि घाट तें थोरिक दूर अहै कटि लौं जल-थाह दिखाइहौं जू।
परसे पगधूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू॥
तुलसी अवलंब न और कछू, लरिका केहि भाँति जिआइहौं जू?
बरु मारिए मोहिं, बिना पग धोए हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू॥६॥

शब्दार्थ—तरनी = नाव। घरनी = स्त्री।

पद्यार्थ—केवट रामचन्द्र जी से कहता है—हे रामचन्द्र जी! इस घाट से थोड़ी ही दूर पर एक घाट है जहां पर कमर तक ही जल है, उसे मैं आपको दिखला देता हूँ। अगर आपके पैरों की धूलि को स्पर्श करने से मेरी नाव तर जायगी (अहिल्या की तरह स्त्री हो जायगी) तो मैं अपनी घरवाली को कैसे समझाऊँगा (कि मेरी नाव ही स्त्री हो गई है)। मेरी जीविका का दूसरा कोई सहारा भी नहीं है। मैं अपने बच्चों को किस तरह जिलाऊँगा? चाहे आप मार ही क्यों न डालें, बिना आपके पैरों को धोये हुए मैं अपनी नाव पर नहीं चढ़ाऊँगा।

रावरे दोष न पायँन को, पगधूरि को भूरि प्रभाउ महा है।
पाहन तें बन-बाहन काठ को कोमल है, जल खाइ रहा है॥
पावन पायँ पखारि कै नाव चढ़ाइहौं, आयसु होत कहा है?।
तुलसी सुनि केवट के बर बैन हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है॥७॥

शब्दार्थ—बनबाहन = नाव। हहा है = ठठा कर।

पद्यार्थ—केवट कहता है कि हे रामचन्द्र जी! यह आपके पैरों का कोई दोष नहीं है बल्कि आपके चरणों की धूल का बड़ा भारी प्रभाव है। (जब आपके चरण-रज के स्पर्श से पत्थर स्त्री हो जाता है तो) यह मेरी काठ की नाव पत्थर से कोमल ही है तिस पर भी जल खाने की वजह से और भी नर्म हो गई है। (इसलिये) मैं आपके चरणों को धोकर ही नाव पर चढ़ाऊंगा। आपकी (इस सम्बन्ध में) क्या आज्ञा होती है? तुलसीदास जी कहते हैं कि श्री रामचन्द्र जी केवट की प्रेम-भरी बातों को सुनकर और जानकी की ओर देखकर ठठा कर हँसे।

(घनाक्षरी)

पात भरी सहरी, सकल सुत बारे-बारे,
केवट को जाति कछू बेद ना पढ़ाइहौं।
सब परिवार मेरो याही लागि, राजा जू!
हौं दीन वित्तहीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं?॥
गौतम की घरनी ज्यों तरनी तरैगी मेरी,
प्रभु सों निषाद ह्वै कै वाद न बढ़ाइहौं।
'तुलसी' के ईस राम रावरे सौं, साँची कहौं,
बिना पग धोए नाथ नाव न चढ़ाइहौं॥ ८॥

शब्दार्थ—पात भरी = पत्तेभर। सहरी (इसका तत्समरूप सफ़री है) = मछली। बारे-बारे = छोटे छोटे।

पद्यार्थ—हे रामचन्द्र जी! पत्ते भर मछली मेरी कमाई है। मेरे सब बच्चे छोटे छोटे हैं। मैं जाति का केवट हूँ (नाव के न रहने पर) मैं अपने बच्चों को वेद न पढ़ा सकूंगा (फिर वे बच्चे अपनी जीविका कैसे चलावेंगे)? मेरा सारा परिवार इसी से जीता है। मैं बिल्कुल गरीब हूँ, दूसरी नाव को कैसे गढ़ाऊँगा? गौतम की स्त्री अहिल्या की तरह यदि मेरी नाव तर गई तो मैं केवट की जाति का होकर आप से झगड़ा न कर सकूंगा (कि मेरे लिये दूसरी नाव बनवा दीजिये)। हे रामचन्द्र जी मैं आपकी सौगन्ध खाकर आपसे सच सच कहता हूँ कि आपके पैरों को धोए बिना आपको नाव पर न चढ़ाऊँगा। (क्योंकि आपको नाव पर चढ़ाने से मुझे उससे हाथ धोना पड़ेगा)।

जिनको पुनीत वारि, धारे सिर पै पुरारि,
त्रिपथगामिनि-जसु वेद कहै गाइ कै।
जिनको जोगींद्र मुनिवृंद देव देह भरि,
करत विराग जप-जोग मन लाइ कै॥

'तुलसी' जिनकी धूरि परसि अहल्या तरी,
गौतम सिधारे गृह गौनो सो लिवाइ कै।
तेई पायँ पाइकै चढ़ाइ नाव धोए बिनु,
ख्वैहौं न पठावनी कै ह्वैहौं न हँसाइ कै ? ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—त्रिपथ गामिनि = आकाश, पाताल और मृत्युलोक में बहने वाली, गंगा जी। पठावनी = पार उतारने की मज़दूरी।

पद्यार्थ—जिनके चरण से निकले हुये पवित्र जल का वेद त्रिपथ-गामिनी कहकर बखान करते हैं तथा जिसे शंकर जी अपने सिर पर धारण करते हैं; जिनको पाने के लिये योगीश्वर मुनि और देवता देह धारण करके जप, योग, वैराग्य आदि साधना मन लगाकर करते हैं, जिनके चरणों की धूली को स्पर्श करके अहिल्या तर गई, जिसको गौतम ऋषि अपने साथ इस तरह लिवा गये मानो गौने से ले जा रहे हों, उन्हीं चरणों को पाकर बिना उनको धोए नाव पर चढ़ा कर मैं अपनी मज़दूरी खोना नहीं चाहता। क्योंकि ऐसा करने से मेरी चारो तरफ़ हंसी होगी। (लोग मुझे हंसेंगे कि जगत को तारने वाले ईश्वर को पाकर भी तूने चरणोदक तक नहीं लिया। तू बिल्कुल गँवार है)।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

प्रभुरुख पाइ कै बोलाइ बाल घरनिहिं,
बंदि कै चरन चहूँ दिसि बैठे घेरि घेरि।
छोटो सो कठौता भरि आनि पानी गंगाजू को,
धोइ पायँ पीयत पुनीत बारि फेरि फेरि॥
'तुलसी' सराहैं ताको भाग सानुराग सुर,
बरषैं सुमन जय जय कहैं टेरि टेरि।
बिबुध-सनेह-सानी बानी असयानी सुनी,
हँसे राघौ जानकी लषन तन हेरि हेरि॥ १० ॥

पद्यार्थ—श्री रामचन्द्र जी का रुख देख कर केवट ने अपनी स्त्री और बच्चों को बुलाया। वे सब रामचन्द्र जी को प्रणाम कर चारों तरफ़ से घेर कर बैठ गये। केवट गंगा जी के जल को छोटे से कठौते में भर कर लाया और उनके पैर धोकर उस पवित्र जल को बार बार पीने लगा। तुलसीदास जी कहते हैं कि देवता लोग प्रेम में भरकर उसके भाग्य की सराहना करते हैं और रामचन्द्र जी की जयजय कहकर फूलों की वर्षा करते हैं। केवट और उसके बाल बच्चों की नाना प्रकार की स्नेहभरी निष्कपट बातों को सुनकर रामचन्द्र जी लक्ष्मण और जानकी की तरफ़ देखकर हंसने लगे।

अलंकार—संबंधातिशयोक्ति।

(सवैया)

पुर तें निकसी रघुबीर-बधू, धरि धीर दये मग में डग द्वै॥
झलकीं भरि भाल कनी जल की, पुट सूखि गए मधुराधर वै॥
फिरि बूझति हैं "चलनो अब केतिक, पर्णकुटी करिहौ कितह्वै?"।
तियकी लखि आतुरता पियकी अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै॥११॥

शब्दार्थ—मधुराधर = कोमल होंठ।

पद्यार्थ—श्री रामचन्द्र जी की स्त्री, सीता जी, नगर से बाहर निकल कर बहुत धीरज के साथ कुछ दूर तक चलीं। इतने ही में उनके ललाट पर थकावट के मारे पसीने की बूंदें झलकने लगीं और उनके दोनों कोमल होंठ सूख गए। वह घबड़ा कर अपने स्वामी से पूछती हैं कि अब कितनी दूर चलना है? कहां पर पत्ते की कुटी बनाई जायगी? अपनी स्त्री की घबराहट देख कर रामचन्द्र के सुन्दर नेत्रों से आंसुओं की बूंदें टपकने लगीं।

"जल को गए लक्खन हैं लरिका, परिखौ, पिय! छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े।'
पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरु पाँय पखारिहौं भूभुरि डाढ़े"।
'तुलसी' रघुवीर प्रिया स्रम जानि कै बैठि बिलंब लौं कंटक काढ़े।
जानकी नाह को नेह लख्यो पुलको तनु बारि बिलोचन बाढ़े॥१२

पद्यार्थ—सीता जी रामचन्द्र जी से कहती हैं कि हे स्वामी, लक्ष्मण जी जल लाने के लिये गए हैं। अभी वे लड़के हैं, थोड़ी देर तक पेड़ की छाया में खड़े होकर उनकी प्रतीक्षा कीजिये। तब तक आपके पसीने को पोंछ कर मैं पंखा झलूंगी और भूभुरि में जले हुए पैरों को धोऊंगी। तुलसीदास जी कहते हैं कि सीता जी को थका जानकर रामचन्द्र जी ज़मीन पर बैठकर देर तक पैरों से कांटे निकालते रहे। सीता जी अपने स्वामी का स्नेह देखकर गद्गद् होगईं और उनकी आंखों से आंसुओं की धारा बह चली।

ठाढ़े हैं नौ द्रुम डार गहे, धनु काँधे धरे, कर सायक लै।
बिकटी भ्रुकुटी बड़री अँखियाँ, अनमोल कपोलन की छवि है॥
'तुलसी' असि मूरति आनि हिये जड़ डारिहौं प्रान निछावरि कै।
स्रम-सीकर साँवरि देह लसैं मनो रासि महातम तारक मै॥१३॥

शब्दार्थ—नौद्रुम = नया पेड़। बिकटी भ्रुकुटी = टेढ़ी भौंहें। स्रम सीकर = पसीने की बूँदें।

पद्यार्थ—रामचन्द्र जी नये पेड़ की डाली को पकड़ कर खड़े हैं। उनके कंधे में धनुष और हाथ में बाण शोभायमान हैं। उनकी भौंहें टेढ़ी और आंखें बड़ी बड़ी हैं और उनके गालों की शोभा अनोखी है। उनके सांवले शरीर पर पसीने की बूँदें इस प्रकार शोभा दे रही हैं मानों अत्यन्त अँधेरी रात तारों से सुशोभित हो। तुलसीदास कहते हैं कि ऐ मूर्ख मन! ऐसी मोहनी मूर्ति को हृदय में लाकर अपने प्राणों को न्योछावर करदो।

अलंकार—उक्तविषया-वस्तूत्प्रेक्षा।

(घनाक्षरी)

जलज-नयन, जलजानन, जटा है सिर,
जोबन उमंग अंग उदित उदार हैं।
साँवरे गोरे के बीच भामिनी सुदामिनी सी,
मुनिपट धरे, उर फूलनि के हार हैं॥
करनि सरासन सिलीमुख, निषंग कटि,
अतिही अनूप काहू भूप के कुमार हैं।
'तुलसी' बिलोकि कै तिलोक के तिलक तीनि,
रहे नरनारि ज्यों चितेरे चित्रसार हैं॥ १४॥

शब्दार्थ—सिलीमुख = बाण। चितेरे = चित्र। चित्रसार = चित्रशाला।

पद्यार्थ—(रास्ते के लोग रामचन्द्र, सीता और लक्ष्मण को मार्ग से जाते देख कर परस्पर कहते हैं) इन लोगों के नेत्र कमल के समान और मुख भी कमल के समान हैं। इनके सिर पर जटा है और इनके अंग प्रत्यंग से जवानी की उमंग प्रकट होती है। सांवरे और गोरे शरीर वालों के बीच में वह स्त्री बिजली के समान सुशोभित हो रही है। ये मुनियां के वस्त्र धारण किए हुये हैं। छाती पर फूलों की माला है, हाथों में धनुष बाण लिये हुए तथा कमर में तरकस कसे हैं। ये अत्यन्त सुन्दर रूप वाले कोई राजकुमार जान पड़ते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि तीनों लोकों में श्रेष्ठ इस त्रयमूर्त्ति को देख कर स्त्री पुरुष उनकी तरफ़ एकटक निहारते हुए मुग्ध होकर चित्रशाला के चित्र की तरह स्थिर हो गये।

अलंकार—धर्मलुप्तोपमा और उदाहरण।

आगे सोहै साँवरो कुँवर, गोरो पाछे पाछे,
आछे मुनि-वेष धरे लाजत अनंग हैं।
बान बिसिषासन, बसन बन ही के कटि,
कसे हैं बनाइ, नीके राजत निषंग हैं॥
साथ निसिनाथमुखी पाथनाथ-नंदिनी सी,
'तुलसी' बिलोके चित लाइ लेत संग हैं।
आनँद उमंग मन, जोवन उमंग तन,
रूप की उमंग उमगत अंग अंग हैं॥ १५॥

शब्दार्थ—बिसिपासन = धनुष। निसिनाथमुखी = चन्द्रमुखी। पाथनाथ-नन्दिनी = समुद्र की लड़की, लक्ष्मी।

पद्यार्थ—आगे सांवरे शरीर वाले रामचन्द्र जी और पीछे गोरे शरीर वाले लक्ष्मण जी सुन्दर मुनियों का भेष धारण किये हुए कामदेव को भी लज्जित करते हैं। हाथ में धनुष बाण लिये हुये हैं, कमर में वल्कल वस्त्र और तरकस कसे हुये हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि उनके साथ में चन्द्रमुखी सीता जी लक्ष्मी की तरह सुशोभित हो रही हैं। जो उनकी तरफ़ प्रेम से देखता है उसके चित्त को वे अपनी तरफ़ आकृष्ट कर लेते हैं। उनके मन में आनन्द की उमंग और शरीर में यौवन की उमंग है और रूप की उमंग से अंग-प्रत्यंग सुशोभित हो रहा है।

अलंकार—उपमेयलुप्तोपमा।

कवित्त

सुंदर बदन, सरसीरुह सुहाए नैन,
मंजुल प्रसून माथे मुकुट जटनि के।
अंसनि सरासन लसत, सुचि कर सर,
तून कटि, मुनिपट लूटक पटनि के॥

नारि सुकुमारि संग जाके अंग उबटि कै,
बिधि बिरचे बरूथ बिद्युत छटनि के।
गोरे को बरन देखे सोनो न सलोनो लागै,
साँवरे बिलोके गर्ब घटत घटनि के॥ १६॥

शब्दार्थ—अंसनि = कंधा। लूटक = लूटने वाले। बरूथ = समूह।

पद्यार्थ—उनके मुँह सुन्दर और नेत्र कमल के समान हैं। सिर पर जटाओं का मुकुट है जिसपर फूल गूथे हुए हैं, उनके कंधे पर धनुष, हाथ में बाण और कमर में तरकस सुशोभित है और बल्कल वस्त्र रेशमी वस्त्र से भी अधिक सुन्दर मालूम पड़ता है। उनके सङ्ग में सुकुमारी स्त्री है जिसके शरीर के मैल से ब्रह्मा ने अनेकों बिजलियों को बनाया है। गोरे लक्ष्मण की गोराई के सामने सोना भी अच्छा नहीं लगता और सांवरे रामचन्द्र को देखकर घटाओं का गर्व भी घट जाता है।

अलंकार—प्रतीप।

बल्कल बसन, धनुबान पानि, तून कटि,
रूप के निधान, घन-दामिनी-बरन हैं।
'तुलसी' सुतीय संग सहज सुहाए अंग,
नवल कँवल हू तें कोमल चरन हैं॥
औरै सो बसंत, औरै रति, औरै रतिपति,
मूरति बिलोके तन मन के हरन हैं।
तापस बेषै बनाइ, पथिक पथै सुहाइ,
चले लोक-लोचननि सुफल करन हैं॥ १७॥

पद्यार्थ—उनके वस्त्र वल्कल के हैं, हाथ में धनुष बाण लिए हुए हैं, कमर में तरकस कसे हैं। वे रूप के भंडार हैं और उनके शरीर का रङ्ग बादल के समान सांवला और बिजली के समान गोरा

है। तुलसीदास जी कहते हैं कि उनके साथ में जो स्त्री है उसके अंग स्वाभाविक सुन्दर हैं उसके कोमल चरण नूतन कमल से भी अधिक सुन्दर हैं। लक्ष्मण जी दूसरे वसन्त सीता जी दूसरी रति और रामचन्द्र जी दूसरे कामदेव के समान मालूम पड़ते हैं। उनकी मूर्ति को देखने पर वे शरीर और मन को हरण कर लेते हैं। (शरीर और मन उनकी ओर आकर्षित हो जाते हैं।) तपस्वी का भेष बनाकर ये पथिक रास्ते को सुशोभित करते हुए, लोगों के नेत्रों को सुफल करते हुए चले जा रहे हैं।

अलंकार—तद्रूप रूपक।

(सवैया)

वनिता वनी स्यामल गौर के बीच, विलोकहु, री सखी ! मोहिं सी ह्वै।
मग जोग न, कोमल क्यों चलि हैं ? सकुचात मही पद-पंकज छ्वै ॥
'तुलसी' सुनि ग्रामवधू बिथकीं, पुलकीं तन औ चले लोचन च्वै।
सब भाँति मनोहर मोहन रूप, अनूप हैं भूप के बालक द्वै ॥१८॥

शब्दार्थ—बिथकीं = मुग्ध हो गईं।

पदार्थ—(एक सखी दूसरी सखी से कहती है) हे सखी, मेरी तरफ होकर देखो; सांवरे और गोरे शरीर वाले के बीच में वह स्त्री कैसी शोभा दे रही है। ये रास्ते चलने योग्य नहीं हैं। ये कोमल शरीर वाले ऐसे कठोर मार्ग में किस तरह चलेंगे जिनके चरण-कमल को छूकर पृथ्वी भी सकुचा रही है। तुलसीदास जी कहते हैं कि इस स्त्री की बातों को सुनकर उस ग्राम की स्त्रियां मुग्ध हो गईं; उनका शरीर पुलकित हो गया और (प्रेमातिरेक से) उनके नेत्रों से आंसू गिरने लगे और वे कहने लगीं कि ये राजा के दोनों राजकुमार अनुपम शोभा वाले हैं, इनकी मोहनी मूर्ति सब प्रकार सुन्दर है।

साँवरे गोरे सलोने सुभाय, मनोहरता जिति मैन लियो है।
बान कमान निषंग कसे, सिर सोहैं जटा, मुनि बेष कियो है॥
संग लिये बिधु-बैनी बधू, रति को जेहि रंचक रूप दियो है।
पाँयन तौ पनहीं न, पयादेहि क्यों चलिहैं ? सकुचात हियो है ॥१६॥

शब्दार्थ—बिधु-बैनी (बिधु-बदनी) = चन्द्रमुखी । रंचक = थोड़ा सा ।

पद्यार्थ—सांवरे और गोरे शरीर वाले राजकुमारों ने अपनी स्वाभाविक सुन्दरता और मनोहरता में कामदेव को भी जीत लिया है। उनके हाथों में धनुष और कमर में तरकस है, सिर पर जटा सुशोभित है और वे मुनियों का सा वेष धारण किये हुए हैं, उनके साथ में चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखवाली स्त्री है । जिसने अपने रूप का थोड़ा सा अंश रति को दिया है। (जिसके रूप के सामने रति का रूप भी कुछ नहीं है) । पैरों में जूता भी नहीं है। मेरा हृदय सकुचा रहा है कि वे किस प्रकार पैदल चलेंगे ?

अलंकार—प्रतीप ।

रानी मैं जानी अजानो महा, पवि पाहन हूँ तें कठोर हियो है।
राजहु काज अकाज न जान्यो, कह्यो तिय को जिन कान कियो है॥
ऐसी मनोहर मूरति ये, बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है ?।
आँखिन में, सखि! राखिबे जोग,इन्हें किमि कै बनवास दियो है॥२०॥

शब्दार्थ—पवि = वज्र । क्यों कान कियो है = कहने पर ध्यान दिया है ।

पद्यार्थ—(एक सखी दूसरी सखी से कहती है) हे सखी ! मैं रानी को बिल्कुल मूर्ख समझती हूँ । उसका हृदय तो वज्र और पत्थर से भी कठोर जान पड़ता है। उधर राजा ने भी उचित अनुचित का विचार न किया और स्त्री के कहने पर ध्यान दिया । कैसी मन को

हरण करने वाली ये मूर्त्तियां हैं। इनसे विछोह होने पर इनके आत्मीय लोग कैसे जीते होंगे? हे सखी! ये तो आंखों में रखने योग्य हैं, इन्हें वनवास कैसे दिया गया।

सीस जटा, उर बाहु बिसाल, बिलोचन लाल, तिरीछी सो भौंहैं।
तून सरासरु बान धरे, 'तुलसी' बन-मारग में सुठि सोहैं॥
सादर बारहिं बार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं।
पूछति ग्रामबधू सिय सों "कहो साँवरे से, सखि रावरे को हैं?"॥२१॥

शब्दार्थ—सुठि = सुन्दर।

पद्यार्थ—गांव की स्त्रियां सीता जी से पूछती हैं कि जिनके सिर पर जटा है, जिनकी बाहु और छाती विशाल, नेत्र लाल और भौंहें तिर्छी सी हैं, जो धनुष बाण और तरकस धारण किये हुए वन-मार्ग में शोभा दे रहे हैं, आदरपूर्वक स्वभाव से ही बार बार जिनकी ओर देखने मात्र से ही तुम्हारी तरह जो हमारा मन भी मोहित कर रहे हैं, ऐसे सांवरे शरीर वाले आपके कौन लगते हैं?

अलंकार—स्वभावोक्ति।

सुनि सुंदर बैन सुधारस-साने, सयानी हैं जानकी जानी भली।
तिरछे करि नैन, दै सैन तिन्हैं समझाइ कछू मुसुकाइ चली॥
'तुलसी' तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचन लाहु अली।
अनुराग-तड़ाग में भानु उदै बिगसीं मनो मंजुल कंज-कली॥२२॥

पद्यार्थ—अमृत रस से भरे हुए उनके वचन सुन करके सीता जी ने अच्छी तरह जान लिया कि ये स्त्रियाँ चतुर हैं। इसलिये (स्पष्ट न कहकर) तिर्छी आंखें करके इशारा से उन्हें समझा कर वह कुछ कुछ मुसकराने लगीं। तुलसीदास जी कहते हैं कि उस समय सब स्त्रियाँ

उनको देखकर अपने नेत्रों का फल पाने लगीं। उस समय ऐसा जान पड़ा मानों सूर्योदय होने से प्रेम के तालाव में कमल की कलियां खिल उठी। (रामचन्द्र का प्रेम तालाब है रामचन्द्र सूर्य हैं और स्त्रियों की आंखें कमल-कली हैं)।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

धरि धीर कहैं "चलु देखिय जाइ जहाँ सजनी रजनी रहिहैं।
कहि है जग पोच, न सोच कछू, फल लोचन आपन तौ लहिहैं॥
सुख पाइहैं कान सुने बतियाँ, कल आपुस में कछु पै कहिहैं।"
'तुलसी' अति प्रेम लगीं पलकैं, पुलकीं लखि राम हिये महि हैं॥२३॥

शब्दार्थ—पोच = नीच। पै = तो।

पद्यार्थ—वे स्त्रियां जो प्रेम से विह्वल हो रही थीं धैर्य धारण करके आपस में करती हैं कि हे सखी, चलो हम लोग वहां पर चल कर इन को देखें जहां आज रात को ये रहेंगे। इस बात की हमें ज़रा भी परवाह नहीं है कि संसार के लोग हमें नीच (कुलटा) समझेंगे। हम अपने नेत्रों का फल तो प्राप्त करेंगे। ये लोग आपस में जो कुछ कहेंगे उन मीठी बातों को सुनकर हम लोगों के कान तृप्त होंगे। तुलसीदास जी कहते हैं कि अत्यन्त प्रेम से उनके पलक बंद होगये और रामचन्द्र को अपने हृदय में जानकर उनका शरीर पुलकायमान होगया।

पद कोमल, स्यामल गौर कलेवर, राजत कोटि मनोज लजाए।
कर बान सरासन, सीस जटा, सरसीरुह लोचन सोन सुहाए॥
जिन देखे, सखी! सत भायहुतें 'तुलसी' तिन तौ मन फेरि न पाए।
यहि मारग आजु किसोर बधू विधु-बैनी समेत सुभाय सिधाए॥२४॥

शब्दार्थ—सोन = लाल

पद्यार्थ—उनके चरण कोमल हैं उनके श्यामल और गौर शरीर सुशोभित हो रहे हैं जिनको देखकर करोड़ों कामदेव भी लज्जित

हो रहे हैं। उनके हाथ में धनुष बाण और शीश पर जटा है और उनकी आंखें कमल के समान शोभा दे रही हैं। हे सखी जो स्वभाव से भी उनकी तरफ़ देख ले तो वह अपने मन को उनकी तरफ़ से लौटा नहीं सकता अर्थात् मन उन पर मुग्ध हो जाता है। आज इसी मार्ग से राजकुमार चन्द्रमुखी स्त्री के साथ स्वभाव से ही गये।

अलंकार—उपमा।

मुख पंकज, कंज विलोचन मंजु, मनोज-सरासन-सी बनी भौंहैं।
कमनीय कलेवर, कोमल, स्यामल गौर-किसोर, जटा सिर सोहैं॥
'तुलसी' कटि तून, धरे धनु बान, अचानक दीठि परी तिरछौंहैं।
केहि भाँति कहौं, सजनी! तोहि सों, मृदु मूरति द्वै निवसीं मन मो हैं॥

पदार्थ—(एक सखी दूसरी सखी से कहती है) उनके नेत्र कमल के समान और भौंहें कामदेव के धनुष के समान शोभा दे रही हैं। उनके शरीर सुन्दर और कोमल हैं उनके शरीर का रंग सांवला और गोरा है। सिर पर जटा सुशोभित हो रही है। कमर में तरकस कसे हुए और हाथों में धनुष बाण लिये हुए हैं। अचानक उनपर मेरी दृष्टि पड़ गई। उस समय से वे दोनों सुन्दर मूर्तियां मेरे मन में बस गई हैं। तुझ से मैं किस तरह बताऊँ कि मेरे मन की हालत क्या हो रही है।

प्रेम सों पीछे तिरीछे प्रियाहि चितै चित दै, चले लै चित चोरे
स्याम सरीर पसेउ लसै, हुलसै 'तुलसी' छवि सो मन मोरे।
लोचन लोल चलैं भ्रुकुटी, कल काम-कमानहु सों तृन तोरे
राजत राम कुरंग के संग, निषंग कसे, धनु सों सर जोरे॥२६॥

शब्दार्थ—पसेउ = पसीना। तृन तोरे = निछावार होना कुरंग = हरिण।

पद्यार्थ—रामचन्द्र जी प्रेम भरी तिछीं दृष्टि से पीछे पीछे चलती हुई सीता जी की तरफ़ देखकर अपना चित्त उन्हें देकर और उनका चित्त चुरा कर चले। तुलसीदास जी कहते हैं कि उनके सांवले शरीर पर पसीने की बूँदें देखकर मेरा मन मुग्ध हो जाता है। उनके नेत्र और भौंहें चंचल हैं जिन पर सुन्दर कामदेव का धनुष भी न्योछावर किया जा सकता है। रामचन्द्र जी कमर में तरकस कसे धनुष पर बाण चढ़ाए हुए हरिण के पीछे शोभा दे रहे हैं!

अलंकार—स्वभावोक्ति ।

सर चारिक चारु बनाइ कसे कटि, पानि सरासन सायक लै ।
वन खेलत राम फिरैं मृगया, 'तुलसी' छबि सो बरनै किमि कै?
अवलोकि अलौकिक रूप मृगी मृग चौंक चकैं चितवैं चित दै।
न डगैं न भगैं जिय जानि सिलीमुख पंच धरे रतिनायक है ॥२७॥

पद्यार्थ—रामचन्द्र जी चार सुन्दर बाण अच्छी तरह से कमर में कसे हुए और हाथ में धनुप बाण लिये हुए हैं। इस प्रकार वह वन में शिकार करते फिरते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि उनकी उस समय की शोभा का किस प्रकार वर्णन किया जा सकता है? उनके उस अलौकिक रूप को देखकर हरिण और हरिणी चौंक पड़ते हैं और मन लगाकर उनकी ओर देखने लगते हैं। वे न तो वहां से हटते हैं न भागते हैं। वे रामचन्द्र जी को पंच बाण धारण करने वाला कामदेव समझते हैं।

अलंकार—भ्रम ।

बिंध्य के वासी उदासी तपोब्रतधारी महा, बिनु नारि दुखारे ।
गौतम-तीय तरी, 'तुलसी' सो कथा सुनि भे मुनिबृंद सुखारे ॥

ह्वै हैं सिला सब चंद्रमुखी परसे पद-मंजुल-कंज तिहारे ।
कीन्हीं भली, रघुनायकजू, करुना करि कानन को पगु धारे ॥२८॥

पदार्थ—विन्ध्याचल पर्वत के रहने वाले उदासी तपस्वी विना स्त्री के बहुत दुखी थे। तुलसीदास जी कहते हैं कि गौतम की स्त्री अहिल्या के तरने की बात सुनकर मुनि लोग बहुत सुखी हुए और कहने लगे कि हे रामचन्द्र जी आपके चरणों के स्पर्श से यहां के सब शिलाखंड स्त्री बन जायंगे। आपने यह बहुत अच्छा किया कि कृपाकर यहाँ पधारे।

अरण्यकांड

(मत्तगयंद सवैया)

पंचवटी वर पर्नकुटी तर बैठे हैं राम सुभाय सुहाए।
सोहै प्रिया, प्रिय बंधु लसै, 'तुलसी' सब अंग घने छवि छाए।
देखि मृगा, मृग-नैनी कहे प्रिय बैन, ते प्रीतम के मन भाए।
हेमकुरंग के संग सरासन-सायक लै रघुनायक धाए ॥१॥

पद्यार्थ—सुन्दर स्वभाव वाले श्री रामचन्द्र जी पंचवटी में पत्ते की कुटिया के नीचे बैठे हुए हैं। उनके साथ में जानकी जी और प्यारे भाई लक्ष्मण भी शोभा दे रहे हैं जिनके अंग अंग में सुन्दरता छाई हुई है। हरिण को देख करके हरिण के समान नेत्रवाली जानकी जी ने मधुर शब्दों में उस मृग को मारने के लिये कहा। यह बात रामचन्द्र जी को ठीक जँची और वह धनुष बाण लेकर सोने के मृग के पीछे दौड़ पड़े।

किष्किंधाकांड

जब अंगदादिन की मति-गति मंद भई,
पवन के पूत को न कूदिबे को पलु गो।
साहसी ह्वै सैल पर सहसा सकेलि आइ,
चितवत चहूँ ओर, औरन को कलु गो॥
'तुलसी' रसातल को निकसि सलिल आयो,
कोल कलमल्यो, अहि कमठ को बलु गो॥
चारिहू चरन को चपेट चाँपे चिपिटि गो,
उचके उचकि चारि अंगुल अचलु गो॥ १॥

शब्दार्थ—मति-गति मंद भई = बुद्धि और शक्ति ने जवाब दे दिया। न पलुगो = पल भर भी नहीं लगा। सकेलि = खेलवाड़ के साथ। कलुगो = सुख चला गया। चाँपे = दबाने से। उचकि गो = ऊँचा हो गया।

पदार्थ—जब अंगद आदि वीरों की बुद्धि और शक्ति ने जवाब दे दिया (जब उन लोगों ने समुद्र पार करने में असमर्थता प्रकट की) तब पवन के पुत्र हनुमान जी को समुद्र को कूद जाने में पल भर भी देर न लगी। वह साहस करके खेलवाड़ ही में पहाड़ पर चढ़ गये और चारों तरफ़ देखने लगे। दूसरों ने जब उनको देखा तो भय से घबड़ा गए। तुलसीदास जी कहते हैं कि (एकाएक पहाड़ पर चढ़ने से पर्बत दब गया जिसके कारण) पृथ्वी के नीचे से जल ऊपर चला आया। कोल कलमलाने लगे और शेषनाग और कच्छप का बल जाता रहा। उनके चारों पैरों के दबाव से पर्वत चपटा हो गया और उचकने से पर्वत चार अँगुल ऊपर को उठ गया।

अलंकार—अतिशयोक्ति।

सुन्दर कांड

(कवित्त)

बासव बरुन विधि बन तें सुहावनो,
दसानन को कानन बसंत को सिंगारु सो ।
समय पुराने पात परत, डरत बात,
पालत, लालत रति मार को बिहारु सो ॥
देखे बर बापिका तड़ाग बाग को बनाव,
रागबस भो विरागी पवनकुमारु सो ।
सीय की दसा बिलोक बिटप असोक तर,
'तुलसी' बिलोक्यो सो तिलोक सोक-सारु सो ॥१॥

शब्दार्थ—बासव = इन्द्र । बात = हवा । सोक सारु = शोक का घर ।

पद्यार्थ—रावण का वन इन्द्र, वरुण और ब्रह्मा के बन से भी सुन्दर था । वह बसन्त का भी श्रृंगार था (उसके वजह से बसन्त की भी शोभा बढ़ जाती थी) पुराने पत्तों के गिरने का जब समय आता है तब भी हवा वहां बहने से डरती है कि कहीं पत्ते गिर न जाँय । और रति और कामदेव के बिहार उपवन की तरह वह उसे हरा भरा तथा प्रफुल्लित रखती है । उस बन के सुन्दर तालाब, बावली और बगीचे के बनाव को देखकर हनुमान जैसे विरक्त भी आसक्त हो गये । तुलसीदास जी कहते हैं कि हनुमान जी ने जब उस वन में अशोक-वृक्ष के नीचे

दुखिया सीता को देखा तब वह वन उन्हें तीनों लोकों के दुख का स्थान जान पड़ा।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

माली मेघमाल, वनपाल विकराल भट,
नीके सब काल सींचै सुधासार नीर को।
मेघनाद तें दुलारो प्रान तें पियारो बाग,
अति अनुराग जिय जातुधान धीर को॥
'तुलसी' सो जानि सुनि, सीय को दरस पाइ,
पैठो बाटिका बजाइ बल रघुबीर को।
विद्यमान देखत दसानन को कानन सो,
तहस-नहस कियो साहसी समीर को॥२॥

शब्दार्थ—मेघमाल = बादलों की माला। समीर को = पवन के पुत्र, हनुमान।

पद्यार्थ—बादलों के समूह ही उस वन के माली हैं जो अमृत के समान जल से उसे सदा सींचा करते हैं और बड़े बड़े भयंकर योद्धा उस वन की रक्षा करने वाले हैं। वह बगीचा रावण को मेघनाद से भी अधिक प्यारा और प्राणों से भी बढ़कर प्रिय है और धैर्यशाली रावण की उस पर बड़ी ममता है। तुलसीदास जी कहते हैं कि हनुमान जी यह सब जान सुनकर और सीता जी का दर्शन पाकर रामचन्द्र जी के बल की डंका बजाते हुए उस बाग़ में घुस गए और रावण के देखते देखते उसके सामने ही उसके बगीचे को उजाड़ डाला।

बसन बटोरि बोरि-बोरि तेल तमीचर,
खोरि-खोरि धाइ आइ बाँधत लँगूर हैं।
तैसो कपि कौतुकी डरात ढीलो गात कै-कै,
लात के अघात सहै जी में कहै 'कूर हैं॥'

बाल किलकारी कै-कै तारी दै-दै गारी देत,
पाछे लोग बाजत निसान ढोल तूर हैं।
बालधी बढ़न लागी, ठौर-ठौर दीन्हीं आगि,
बिंध की दवारि, कैधों कोटिसत सूर हैं ॥३॥

शब्दार्थ—तमीचर = राक्षस। खोरि खोरि = गली गली। तूर = तुरही। बालधी = पूँछ। सूर = सूर्य।

पद्यार्थ—राक्षस गली गली से दौड़ कर वहां आए और कपड़े बटोर कर, उन्हें तेल में डुबोकर पूँछ में लपेटने लगे। वे ज्यों ज्यों लपेटते जाते हैं त्यों त्यों कौतुकी हनुमान जी अपने शरीर को ढीले करते जाते हैं। वह उनके लात की चोट को भय प्रकट करते हुए सह लेते हैं और जी में कहते हैं कि ये राक्षस बड़े क्रूर हैं। राक्षसों के बालक किलकाली मार मार कर और ताली बजाबजा कर उन्हें गाली देते हैं और उनके पीछे नगाड़े ढोल और तुरही बजाते हैं। हनुमान जी की पूँछ बढ़ने लगी और उसमें स्थान स्थान पर आग लगा दी गई। उससे बड़ी ऊंची लपटें उठने लगीं। उन्हें देख कर यह ठीक तरह से नहीं जान पड़ता था कि वे लपटें विन्भाचल की दावाग्नि हैं या करोड़ों सूर्य चमक रहे हैं।

अलंकार—संदेह।

लाइ-लाइ आगि, भागे बाल-जाल जहाँ तहाँ,
लघु ह्वै निबुकि, गिरिमेरु तें बिसाल भो।
कौतुकी कपीस कूदि कनक-कँगूरा चढ़ि,
रावन-भवन जाइ ठाढ़ो तेहि काल भो॥
'तुलसी' बिराज्यो ब्योम बालधी पसारि भारी,
देखे हहरात भट काल तें कराल भो।

तेज को निधान मानो कोटिक कृसानु भानु,
नख बिकराल, मुख तैसो रिस-लाल भो ॥४॥

शब्दार्थ—निबुकि = निकल कर। ब्योम = आकाश। हहरात = डरते हैं।

पद्यार्थ—लड़कों का समूह आग लगा लगा कर इधर उधर भाग गया। हनुमान जी छोटा शरीर धारण कर (नागपाश के बन्धन से) निकल पड़े और फिर सुमेरु पर्वत के समान बड़े हो गये। कौतुकी हनुमान जी कूद कर सोने के कँगूरे पर चढ़ गये और वहां से कूद कर रावण के महलों पर जा खड़े हुए। तुसलीदास जी कहते हैं कि उन्होंने अपनी बड़ी भारी पूँछ आकाश में फैला दी जिसको देख कर बड़े बड़े योद्धा डर गये। वह पूँछ उन्हें काल से भी भयंकर जान पड़ी। उस समय हनुमान जी का तेज करोड़ों सूर्य और अग्नि से भी बढ़ कर था उनके नख बहुत भयानक और मुँह क्रोध से लाल हो गया था।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल-जाल मानौं,
लङ्क लीलिबे को काल रसना पसारी है।
कैधौं ब्योमबीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
बीररस बीर तरवारि-सी उघारी है॥
'तुलसी' सुरेश-चाप, कैधौं दामिनी कलाप,
कैधौं चली मेरु तें कृसानु-सरि भारी है।
देखे जातुधान जातुधानी अकुलानी कहैं,
"कानन उजारयों अब नगर प्रजारी है" ॥५॥

शब्दार्थ—व्योमबीथिका = आकाश गंगा। धूमकेतु = पुच्छलतारा। सुरेस-चाप = इन्द्र-धनुष। कलाप = समूह। भजारी है = अच्छी तरह जला देगा।

पदार्थ—हनुमान जी की बड़ी भारी पूँछ से भयानक आग की लपटें निकलने लगीं। उनको देखकर ऐसा मालूम होता था मानो काल ने लंका को निगलने के लिये जीभ निकाली है। अथवा आकाश-गंगा में पुच्छल तारे भरे हुये हैं, अथवा योधा वीर रस ने तलवार निकली है, अथवा इन्द्र धनुष है, अथवा बिजलियों का समूह है, अथवा मेरु पर्वत से आग की नदी बह चली है। तुलसी-दास जी कहते हैं कि उस भीषण दृश्य को देख करके राक्षस और राक्षसी घबड़ा कर कहते हैं कि इस बन्दर ने बगीचा तो उजाड़ ही दिया था अब नगर भी जला डालेगा।

अलंकार—उत्प्रेक्षा तथा संदेह।

जहाँ तहाँ बुबुक बिलोकि बुबुकारी देत,
"जरत निकेत धाओ धाओ लागि आगि रे।
कहाँ तात, मात, भ्रात, भगिनी, भामिनी, भाभी,
छोटे-छोटे छोहरा, अभागे भोरे भागि रे॥
हाथी छोरो, घोरा छोरो, महिष बृषभ छोरो,
छेरी छोरो, सोवै सो जगाओ जागि जागि रे।
'तुलसी' बिलोकि अकुलानी जातुधानी कहैं,
"बार बार कह्यो पिय कपि सों न लागि रे!" ॥६॥

शब्दार्थ—बिबुक = आग की लपटें। बुबुकारी देत = घबड़ा कर घिघियाते हैं।

पद्यार्थ—जहाँ तहाँ आग की लपटें निकलते देख कर लोग घबड़ा कर चिल्लाने लगे, "दौड़ो, दौड़ो, आग लगी है और घर जल रहा है। कहां पिता हैं, कहां माता हैं, कहां भाई और बहनें हैं, स्त्री कहां है, भाभी कहां है, छोटे छोटे बच्चे कहां हैं, ऐ भोले भाले अभागे भागो। हाथी को खोल दो, घोड़ों, बैलों, भैंसों, बकरियों को छोड़ दो। सोते हुओं को जगाओ, जगाओ, जगाओ" तुलसीदास जी कहते हैं कि राक्षसिनियां उस भयंकर दृश्य को देख कर घबड़ा कर कहती हैं "हे प्यारे, हमने तुमसे पहले ही कहा था कि इस बन्दर से रारि न करो।"

देखि ज्वालजाल, हाहाकार दसकंध सुनि,
कह्यो 'धरो धरो' धाए वीर बलवान हैं।
लिए सूल, सेल, पास, परिघ, प्रचंड दंड,
भाजन सनीर; धीर धरे धनुवान हैं॥
'तुलसी' समिध सौंज, लंकजज्ञकुंड लखि,
जातुधान पुंगीफल, जव तिल धान हैं।
स्रुवा सो लँगूल, बलमूल प्रतिकूल हवि,
स्वाहा महा हाँकि-हाँकि हुने हनुमान हैं॥७॥

शब्दार्थ—सूल = त्रिशूल। सेल = बर्छी। पास = फन्दा। परिघ = लोहांगी। समिध = यज्ञ कुंड में डालने की पवित्र लकड़ी। सौंज = सामग्री। पुंगीफल = सुपारी। स्रूवा = हवन करने का काठ का पात्र। प्रतिकूल = शत्रु। हवि = हव्य, जो सामग्री हवन की जाती है।

पद्यार्थ—रावण आग की लपटों को देखकर तथा हाहाकार शब्द सुन कर बोला "दौड़ो, दौड़ो, पकड़ लो, पकड़ लो।" यह

सुनकर वीर, योद्धा दौड़े। उनमें से कोई त्रिशूल लिये है, कोई बर्छी लिये है, कोई फन्दा लिये है, कोई लोहांगी, कोई खूब मज़बूत लाठी और कोई जल से भरे हुए वर्तन लिए हुए हैं और कोई कोई योद्ध-धनुष-वाण धारण किये हुए है। तुलसीदास जी कहते हैं कि लंका मानो यज्ञ कुंड है, वहां की सामग्री समिधा है, राक्षस सुपारी, जौ तिल और धान हैं, शक्तिशाली पूँछ स्रुवा है, बलशाली शत्रु हव्य हैं और हनुमान जी स्वाहा स्वाहा करके इस हव्य से हवन कर रहे हैं अर्थात् राक्षसों को पूँछ में लपेट कर आग में डालते जाते हैं।

अलंकार—रूपक।

गाज्यो कपि गाज ज्यों, विराज्यो ज्वालजाल-जुत,
भाजे बीर धीर, अकुलाइ उठ्यो रावनो।
'धाओ धाओ धरो' सुनि धाई जातुधान धारि,
वारिधारा उलदैं जलद ज्यों न सावनो॥
लपट झपट झहराने, हहराने वात,
भहराने भट, परयो प्रबल परावनो।
ढकनि ढकेलि पेलि सचिव चले लै ठेलि,
"नाथ न चलैगो बल अनल भयावनो"॥८॥

शब्दार्थ—गाज्यो = गर्जा। गाज = बिजली। ढकनि = धक्का। धारि = समूह। उलदैं = उड़ेलते हैं। पेलि = हठ से, ज़बरदस्ती।

पद्यार्थ—जब हनुमान जी ने बिजली की कड़कड़ाहट की तरह से गर्जन किया और उनकी पूँछ से आग की लपटें निकलने लगीं तो वीर योद्धा भी भाग खड़े हुए, रावण भी घबड़ा उठा, और बोला, "दौड़ो, दौड़ो, पकड़ो।" उसकी आज्ञा पाकर राक्षसों का समूह

दौड़ा और इतना जल गिराने लगा जितना सावन के बादल भी नहीं बरसा सकते। आग की भीषण लपटें लहराने लगीं और हवा हरहराती हुई चलने लगी। जिससे राक्षसों में भगदड़ मच गई। मंत्री लोग धक्कों से ढकेल कर रावण को जबरदस्ती वहां से हटाने लगे और बोले "हे नाथ यहां बल से काम न चलेगा, आग बड़ी भयानक है!"

अलंकार—उपमा और व्यतिरेक।

बड़ो विकराल वेष देखि, सुनि सिंहनाद,
उठ्यो मेघनाद, सविषाद कहै रावनो।
वेग जीत्यो मारुत, प्रताप मारतंड कोटि,
कालऊ करालता, बड़ाई जीतो बावनो॥
'तुलसी' सयाने जातुधान पछिताने मन,
"जाको ऐसो दूत सो साहब अबै आवनो।"
काहे की कुसल रोषे राम वामदेव हू के,
विषम बली सों बादि बैर को बढ़ावनो॥६॥

शब्दार्थ—मारतंड = सूर्य। बावनो = बामन अवतार। वामदेव = शिव जी। बादि = व्यर्थ।

पद्यार्थ—हनुमान के बड़े भयानक वेष को देख कर और उनके सिंह की तरह गरज को सुनकर मेघनाद उठ खड़ा हुआ। रावण दुख में भरकर कहने लगा "इसने वेग में हवा को, प्रताप में करोड़ों सूर्य को, भयंकरता में काल को और बड़े होने में वामन अवतार भगवान को जीत लिया है।" तुलसीदास जी कहते हैं कि चतुर राक्षस मन में पछता कर कह रहे हैं कि जिसका दूत ऐसा भयानक है वह मालिक तो अभी आने को बाकी है। श्रीरामचन्द्र जी के क्रोध करने पर तो शिव जी भी उनके क्रोध से नहीं बचा सकते। ऐसे भयानक वीर से वैर मोल लेना व्यर्थ है।

'पानी पानी पानी' सब रानी अकुलानी कहैं,
जाति हैं परानी, गति जानि गजचालि है ॥
बसन बिसारैं, मनि भूषन सँभारत न,
आनन सुखाने कहैं "क्यों हूँ कोऊ पालिहै ?"
'तुलसी' मंदोवै मींजि हाथ, धुनि माथ कहै,
"काहू कान कियो न मैं कह्यो केतो कालि है" ।
बापुरो विभीषन पुकारि बार बार कह्यो,
"बानर बड़ी बलाइ घने घर घालिहै" ॥१०॥

शब्दार्थ—कान न कियो = ध्यान न दिया । घने घर घालि है = बहुत सा घर नष्ट करेगा ।

पदार्थ—गजगामिनी रानियां व्याकुल होकर पानी, पानी कहती हुई भगती जा रही हैं । उन्हें न अपने कपड़ों की खबर, न गहनों की । वे सूखे मुंह से कहती हैं कि कोई किस तरह हमारी रक्षा करेगा । तुलसीदास जी कहते हैं कि मंदोदरी हाथ मीज कर और माथा धुन कर कहती है कि मैंने कल कितना समझाया लेकिन किसी ने मेरे कहने पर ध्यान नहीं दिया । विचारे विभीषण ने भी बार बार पुकार करके कहा कि यह बानर बड़ा बली है, यह बहुत से घरों को नष्ट कर देगा । (लेकिन उसकी भी बात किसी ने न मानी ।)

'कानन उजारयो तौ उजारयो, न बिगारउ कछू,
बानर बिचारो बाँधि आन्यो हठि हार सों ।
निपट निडर देखि काहू न लख्यो बिसेषि,
दीन्हों न छुड़ाइ कहि कुल के कुठार सों ॥
छोटे औ बड़ेरे मेरे पूत ऊ अनेरे सब,
साँपनि सों खेलैं, मेलैं गरे छुराधार सों ।'
'तुलसी' मंदोवै रोइ-रोइ कै बिगोवै आपु,
"बार बार कह्यो मैं पुकारि दाढ़ीजार सों" ॥११॥

शब्दार्थ—अनेरे = व्यर्थ। मेलै गरे = गले से मिलते हैं। बिगोवै = विलाप करती है।

पद्यार्थ—मन्दोदरी कहती हैं कि इसने वाटिका को उजाड़ा तो उजाड़ा, इसने हमारा क्या बिगाड़ा। इस अपराध पर उस बिचारे वानर को ज़बरदस्ती बांध लाये। उसको बिलकुल निर्भय देख करके भी किसी की आंखें न खुली और किसी ने कुलकलङ्क रावण से कहकर उसे न छुड़ा दिया। मेरे छोटे और बड़े पुत्र सभी व्यर्थ हैं। वे सांपों से खेलते हैं और छूरी की धार पर अपना गला रखते हैं। अर्थात अपने सिर पर बला मोल लेते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि मंदोदरी रो रो कर विलाप करती है कि मैंने दाढ़ीजार (रावण) को बार बार पुकार कर कहा लेकिन उसने ध्यान नहीं दिया।

रानी अकुलानी सब डाढ़त परानी जाहिं,
सकैं ना बिलोकि वेष केसरी-कुमार को।
मींजि मींजि हाथ, धुनैं माथ दसमाथ-तिय,
'तुलसी' तिलौ न भयो बाहिर अगार को॥
सब असबाब डाढ़ो, मैं न काढ़ो, तैं न काढ़ो,
जिय की परी, सँभार सहन भँडार को?।
खीझति मँदोवै सविषाद देखि मेघनाद,
"बयो लुनियत सब याही दाढ़ीजार को"॥१२॥

शब्दार्थ—बयो = बोया। लुनियत = काटतो—हैं।

पद्यार्थ—रानियां जलती हुई घबड़ाकर भागती जाती हैं और हनुमान के भयङ्कर वेष को देख नहीं सकतीं। रावण की स्त्रियां हाथ मल मलकर और सिर धुन धुनकर रह गईं। किसी के घर का एक तिल भी बाहर न निकला, सब असबाब जल गया, न मैंने निकाला, न तूने

निकाला, सबको अपनी जान के लाले पड़े थे, चीज़ वस्तु को कौन संभालता। मन्दोदरी गुस्सा होकर मेघनाद को देखकर दुख से भर कर कहती है कि यह सब दाढ़ीजार (रावण) का किया हुआ है जिसको हम सब लोग भोग रहे हैं।

रावन की रानी जातुधानी बिलखानी कहैं,
"हा हा! कोऊ कहै बीसबाहु दसमाथ सों।
काहे मेघनाद, काहे काहे, रे महोदर! तू
धीरज न देत, लाइ लेत क्यों न हाथ सों?
काहे अतिकाय, काहे काहे रे अकंपन!
अभागे तिय त्यागे भोंड़े भागे जात साथ सों?
'तुलसी' बढ़ाय बादि साल तें बिसाल बाहैं,
याही बल, बालिसो! बिरोध रघुनाथ सों!" ॥१३॥

शब्दार्थ—भोंड़े = मूर्ख। बालिसो = गँवार।

पदार्थ—रावण की रानियां बिलख बिलख कर कहती हैं कि बीस भुजा वाले और दस सिरवाले रावण से जाकर कोई क्यों नहीं कहता? अरे मेघनाद, अरे महोदर, तुम लोग आकर हमें धीरज क्यों नहीं देते? हम लोगों की मदद क्यों नहीं करते? अरे अतिकाय, अरे अंकपन, अरे अभागे, अरे मूर्खो, स्त्रियों को छोड़कर क्यो भागे जा रहे हो? तुम लोगों ने इतने बड़े बड़े हाथ व्यर्थ बढ़ाए हैं। ऐ गँवारो, इसी बल पर रामचन्द्र से बैर मोल लिया है?

हाट, बाट, कोट ओट, अट्टनि, अगार, पौरि,
खोरि खोरि दौरि दौरि दीन्हीं अति आगि है।
आरत पुकारत; सँभारत न कोऊ काहू,
व्याकुल जहाँ सो तहाँ लोग चले भागि है॥

बालधी फिरावै बार बार झहरावै, झरैं,
बूँदिया सी, लंक पघिलाइ पाग पागि है।
'तुलसी' बिलोकि अकुलानी जातुधानी कहैं
"चित्र हू के कपि सों निसाचर न लागि है" ॥१४॥

शब्दार्थ—अटनि = अटारियाँ। पौरि = दरवाजा।

पदार्थ—हनुमान जी ने बाजार, रास्ते, क़िलों के ओट, महलों घरों, दरवाजों, गली गली सर्वत्र दौड़ दौड़कर खूब आग लगा दी सब लोग दुखी होकर चिल्ला रहे हैं। कोई किसी को संभालता नहीं जो जहां है वहीं से व्याकुल होकर भाग चलता है। हनुमान जी अपनी पूँछ को बार बार घुमाते हैं, झिटकाते हैं जिससे बूँदियों की तरह चिनगारियाँ झड़ती हैं, और सोने की लंका पिघलाकर पाग में डुबा जाती है। तुलसीदास जी कहते हैं कि यह देख करके राक्षसिनि व्याकुल होकर कहती हैं कि अब राक्षस चित्र के बन्दर से भी छेड़छाड़ न करेंगे।

अलंकार—उपमा।

'लागि लागि आगि' भागि-भागि चले जहाँ तहाँ,
धीय को न माय, बाप पूत न सँभारहीं।
छूटे बार, बसन उघारे, धूमधुंध अंध;
कहैं बारे बूढ़े 'बारि बारि' बार बार हीं॥
हय हिहिनात भागे जात, घहरात गज,
भारी भीर ठेलि-पेलि रौंदि खौंदि डारहीं।
नाम लै चिलात बिललात अकुलात अति,
"तात तात! तौंसियत, झौंसियत झारहीं" ॥१५॥

शब्दार्थ—बार = बाल। धूमधुंध अंध = धुएँ के धुंधकार से अन्धे हो गए। बारे = बालक। घहरात = चिग्घाड़ते हैं। पेलि =

बलात। खौंदि डालहो = घायल करते हैं। बिललात = बिल बिलाते हैं। तौंसियत = प्यासों मरना। झौंसियत = झुलसना। झार = लपट।

पद्यार्थ—'आग लगी' 'आग लगी' ऐसा कहते हुए लंकानिवासी इधर उधर भाग चले, न माता अपनी पुत्री को, न पिता अपने पुत्र को संभालते थे। स्त्रियों के बाल बिखर गये, वस्त्र खुल गये, वे नङ्गी हो भागीं, धुएं को धुंधकार से सभी अन्धे हो गये। बालक से बुड्ढे तक सभी बार बार 'पानी' 'पानी' चिल्लाने लगे। घोड़े हिनहिनाते हुए भागने लगे। हाथी चिंग्घाड़ छोड़ते हुए भागने लगे और बड़ी भारी भीड़ को बलपूर्वक ठेलकर और पैरों से कुचल कर घायल कर दिये। हर एक दूसरे का नाम ले लेकर पुकारता है और व्याकुल होकर बिलबिलाता हैं। कोई कहता है "हे तात, हे तात, हम प्यासे हैं, हम लपटों से जले जाते हैं।"

अलंकार—स्वभावोक्ति।

लपट कराल ज्वालजालमाल दहूँ दिसि,
    धूम अकुलाने पहिचानै कौन काहि रे?
पानी को ललात, बिललात, जरे गात जात,
    परे पाइमाल जात, "भ्रात! तू निबाहि रे॥
प्रिया तू पराहि, नाथ नाथ! तू पराहि, बाप,।
    बाप! तू पराहि, पूत पूत! तू पराहि रे।"
'तुलसी' बिलोकि लोग व्याकुल बिहाल कहैं
    "लेहि दससीस अब बीस चख चाहि रे" ॥१६॥

शब्दार्थ—पाइमाल = नष्ट होना। पराहि = भागो। चख = आंख। चाहि = देखो।

पद्यार्थ—आग की भयंकर लपटें दशो दिशाओं में फैल गईं! धुएँ के मारे लोग परेशान हो रहे हैं। ऐसी दशा में कौन किसको पहचानता

है। लोग प्यास के मारे व्याकुल हो रहे हैं, लोगों के शरीर जले जाते हैं, जिससे वे चिल्लाकर कहते हैं, "हे भाई, हम बरबाद हुए, मुझे बचाओ।" पति स्त्री से कहता है, कि तुम भाग जाओ', और स्त्री अपने पति से कहती है "तुम भाग जाओ।" इसी प्रकार पुत्र अपने पिता से और पिता अपने पुत्र से भाग जाने के लिये कहता है। तुलसीदास जी कहते हैं कि लोग व्याकुल और दुखी होकर कहते हैं कि 'हे रावण, तुम अपनी बीसों आंखों से यह सब देख लो।"

बीथिका बजार प्रति, अटनि अगार प्रति,
पँवरि पगार प्रति बानर बिलोकिए।
अध ऊर्ध्व बानर, बिदिसि दिसि बानर है,
मानहु रह्यो है भरि बानर तिलोकिए॥
मूँदे आँखि हीय में, उघारे आँखि आगे ठाढ़ो,
धाइ जाइ जहाँ तहाँ, और कोऊ को किए।
"लेहु अब लेहु, तब कोऊ न सिखाओ मानो,
सोइ सतराइ जाइ जाहि जाहि रोकिए" ॥१७॥

शब्दार्थ—बीथिका = गली। अटनि = अटारी। अगार = घर। पवँरि = द्वार। पगार = दीवार। अध = नीचे। ऊर्ध्व = ऊपर। सतराइ = बिगड़ना।

पद्यार्थ—लङ्का की प्रत्येक गली, प्रत्येक बाजार, प्रत्येक अटारी, प्रत्येक मकान, प्रत्येक दरवाजा और प्रत्येक दीवार पर बानर ही बानर दिखाई पड़ते हैं। नीचे ऊपर प्रत्येक दिशा में बानर ही बानर हैं, मानों तीनों लोक बानरों से भर गया है। आंखें मूदने पर हृदय में और आंखें खोलने पर सामने बन्दर खड़े दिखलाई पड़ते हैं। दौड़कर जहां पर जाते हैं वहां पर सिवा बन्दरों के और कुछ नहीं दिखाई देता।

राक्षस खिसिया कर एक दूसरे से कहते हैं "उस समय तो कोई कहना नहीं मानता था, जिसी को रोका जाता था वही बिगड़ उठता था। अब वे अपने किये का मज़ा चखें।"

एक करै धौंज, एक कहै काढ़ौ सौंज,
एक औंजि पानी पीकै कहै, 'बनत न आवनो।।'
एक परे गाढ़े, एक डाढ़त हीं काढ़े एक
देखत हैं ठाढ़े, कहैं 'पावक भयावनो।'
'तुलसी' कहत एक "नीके हाथ लाये कपि,
अजहूँ न छाँड़ै बाल गाल को बजावनो।
धाओ रे, बुझाओ रे कि बावरे हौ रावरे, या
औरै आगि लागी, न बुझावै सिंधु सावनो" ।।१८।।

शब्दार्थ—धौंज = दौड़। सौंज = सामग्री। औंजि = घबड़ाकर।

पदार्थ—कोई भगा जाता है, कोई सामान निकालने के लिये कहता है, कोई गर्मी से घबड़ा कर पानी पीकर कहता है कि 'मुझसे आते नहीं बनता।' कोई आग की लपटों से घिर जाने के कारण विपत्ति में पड़ा है, कोई किसी को जलते हुए ही निकालता है, कोई खड़े खड़े तमाशा देखता है और कहता है "आग बड़ी भयानक है।" कोई कहता है "(मेघनाद) अच्छे हाथ से बन्दर को पकड़ लाया था। लेकिन इतना सब कुछ हो जाने पर भी बालकों की सी बुद्धिवाला (रावण) गाल बजाना नहीं छोड़ता। दौड़ो, दौड़ो, आग को बुझाओ। इस पर दूसरा कोई कहता है आप लोग क्या पागल हो गए हैं, यह कोई दूसरी ही आग लगी है। इसको समुद्र या सावन का मेघ भी नहीं बुझा सकते, हम लोग किस गिनती में हैं।"

अलंकार—अतिशयोक्ति।

कोपि दसकन्ध तब प्रलय-पयोद बोले,
रावन रजाइ धाइ आए जूथ जोरि कै।
कह्यो लंकपति "लंक बरत बुताओ बेगि,
बानर बहाइ मारौ महा बारि बोरि कै"॥
"भले नाथ !" नाइ माथ चले पाथ-प्रदनाथ,
बरषैं मुसलधार बार बार घोरि कै।
जीवन तें जागी आगी, चपरि चौगुनी लागी,
'तुलसी' भभरि मेघ भागे मुख मोरि कै॥१६॥

शब्दार्थ—पयोद = बादल। रजाइ = आज्ञा। पाथ-प्रदनाथ = मेघों का स्वामी। घोरि कै = गरजकर। जीवन = जल। चपरि = जल्दी से। भभरि = घबड़ाकर।

पद्यार्थ—तब रावण ने क्रोधित होकर प्रलयकाल के बादलों को बुलाया। बादल रावण की आज्ञा पाकर झुंड बनाकर दौड़े हुए आए। रावण ने उनसे कहा कि "जलती हुई लंका को शीघ्र बुझाओ और जल की धारा से बन्दर को बहाकर मार डालो।" यह आज्ञा पाकर मेघों का स्वामी 'जो आज्ञा' कहकर सिर नवाकर चला। मेघ बार बार गर्जन करते हुए मूसलाधार पानी बरसाने लगे। लेकिन पानी पड़ने से आग और भी भभक उठी और शीघ्रता से चौगुनी हो गई। इससे बादल घबड़ाकर मुख मोड़ कर भाग खड़े हुए।

इहाँ ज्वाल जरे जात, उहाँ ग्लानि गरे गात,
सूखे सकुचात सब कहत पुकार हैं।
"जुग-षट भानु देखे, प्रलय-कृसानु देखे,
सेष मुख अनल बिलोके बार बार हैं॥

'तुलसी' सुन्यो न कान सलिल सर्पी समान,
अति अचरज कियो केसरी-कुमार है"।
वारिद वचन सुनि धुनैं सीस सचिवन्ह,
कहैं "दससीस-ईस-बामता विकार है" ॥२०॥

शब्दार्थ—जुग-पट = बारह। सर्पी = घी। विकार = प्रतिफल, बुरा फल।

पदार्थ—यहां तो बादल आग की लपटो से जले जाते हैं, वहां (रावण के पास) जाकर ग्लानि से उनका शरीर गलता जाता है। वे सूख गये हैं और लजा से पुकार पुकार कर कहते हैं "हमने प्रलय-काल के बारहों सूर्य देखे हैं, प्रलयकाल की अग्नि देखी है, और उस समय के शेषनाग के मुख की आग भी देखी है। लेकिन ऐसी आग तो कभी कानों से सुनने में न आई, जिसमें जल घी का काम करता है। हनुमान ने बिलकुल अद्भुत काम किया है।" बादलों की बातें सुनकर मन्त्री सिर धुनते हैं और कहते हैं कि यह रावण के ईश्वर-विमुख होने का फल है।

"पावक, पवन, पानी, भानु, हिमवान, जम,
काल लोकपाल मेरे डर डाँवाडोल हैं।
साहिब महेस सदा, सङ्कित रमेस मोहिं,
महातप साहस विरंचि लीन्हें मोल हैं॥
'तुलसी' तिलोक आजु दूजो न बिराजै राजा,
बाजे-बाजे राजन के बेटा-बेटी ओल हैं।
को है ईस नाम ? को जो बाम होत मोहू सो को ?
मालवान ! रावरे के बावरे से बोल हैं" ॥२१॥

शब्दार्थ—हिमवान = चन्द्रमा। ओल = गिर्वी, रेहन।

पद्यार्थ—मन्त्री की बातें सुनकर रावण बोला, "मेरे डर से अग्नि, वायु, जल, सूर्य, चन्द्रमा, यमराज और सभी लोकपाल काँपते रहते हैं। मेरे स्वामी तो शिव जी हैं। मुझसे विष्णु तक डरते हैं। मैंने अपनी कठिन तपस्या और साहस से ब्रह्मा को भी मोल ले लिया है। आज मेरे समान तीनों लोक में कोई दूसरा राजा नहीं है। किसी किसी राजा के तो लड़का लड़की मेरे यहां गिर्वी के तौर पर रक्खे हैं। 'ईश्वर' नाम का कौन व्यक्ति है जो मुझसे प्रतिकूल हो सकता है। ऐ मालवान, तुम्हारी बातें पागलों की सी हैं।

"भूमि भूमिपाल, व्याल पालक पताल, नाकपाल,
लोकपाल जेते सुभट समाज हैं।
कहै मालवान, जातुधानपति रावरे को
मनहूँ अकाज आनै ऐसो कौन आज है?
राम कोह-पावक, समीर सीय स्वास, कीस
ईस-वामता विलोकु, बानर को व्याज है।
जारत प्रचारि फेरि 'फेरि सो निसङ्क लङ्क,
जहाँ बाँको वीर तोसो सूर सिरताज है" ॥२१॥

शब्दार्थ—व्यालपालक = शेषनाग। नाकपाल = इन्द्र। अकाज = अनभल। व्याज = बहाना।

पद्यार्थ—मालवान रावण से कहता है, कि "हे रावण, पृथ्वी के जितने राजा हैं, पाताल के शेषनाग, देवपुरी के इन्द्र तथा लोकपाल आदि जितने योद्धा हैं उनमें से किसी में इतना साहस नहीं है कि आपका अनभल ताके। यह रामचन्द्र की क्रोध रूपी अग्नि है जो सीता जी के विरह के स्वास रूपी वायु के द्वारा और भी तेज हो जाती है। इसे आप ईश्वरीय कोप समझिये जो बन्दर के बहाने आया है।

इसी कारण आप जैसे वीर शिरोमणि के रहते हुए भी यह वन्दर निर्भीक होकर लंका को उलट पलट कर जला रहा है।"

अलंकार—रूपक और अपन्हुति।

पान, पकवान विधि नाना को, सँधानो, सीधो,
विविध विधान धान बरत बखार हीं।
कनककिरीट कोटि, पलँग, पेटारे, पीठ,
काढ़त कहार, सब जरे भरे भार ही।
प्रबल अनल बाढ़ैं, जहाँ काढ़ै तहाँ डाढ़ै,
झपट लपट भरे भवन भँडार ही।
'तुलसी' अगार न पगार न बजार बच्यो,
हाथी हथिसार जरे, घोरे घोरसार हीं॥८३॥

शब्दार्थ—सँधानो = अचार, चटनी। बखार = अन्न रखने का कोठिला। कनककिरीट = सोने के मुकुट। पीठ = पीढ़ा। डाढ़ै = जलाती है। अगार = अटारी। पगार = चहारदीवारी।

पद्यार्थ—उस अग्निकाण्ड में पीने के पदार्थ, नाना प्रकार के पकवान, चटनी अचार, आटा चावल तथा तरह तरह के अनाज के कोठिले जल रहे हैं। सोने के मुकुट, पलङ्ग, सन्दूक और पीढ़ों को जलते हुए ही मजदूर ढेर के ढेर निकाल रहे हैं। आग इतनी प्रचण्ड हो गई है कि जहां पर चीज़ों को निकाल कर रखा जाता है वहीं पर जलने लगती हैं। आग की लपटे घर और भंडार में झपट कर भर रही हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि लंका की अट्टालिकाएँ, चहारदीवारी और बाज़ार सब के सब जल गये, हाथी हथिसार में और घोड़े अस्तबल में ही जल कर भस्म हो गये, उनको कोई निकाल न सका।

हाट बाट हाटक पिघिलि चलो घी-सो घनो,
कनक-कराही लंक तलफति ताय सों।
नाना पकवान जातुधान बलवान सब,
पागि-पागि ढेरी कीन्हीं भली भाँति भाय सों।
पाहुने कृसानु पवमान सो परोसो,
हनुमान सनमानि कै जेंवाये चित चाय सों।
'तुलसी' निहारि अरिनारि दै दै गारि कहैं,
"बावरे सुरारि बैर कीन्हों रामराय सों" ॥२४॥

शब्दार्थ—पवमान = हवा। चायसो = आनन्द से।

पद्यार्थ—बाज़ारों में सड़कों पर सोना घी की तरह पिघल कर बह चला। लंका सोने की कड़ाही हो गई जो आग की गर्मी से तप रही है। उसमें बलवान राक्षस पकवान की तरह पक रहे हैं, उन्हें अच्छी तरह पागपाग कर हनुमान ने ढेर लगा दिया है। अग्नि पाहुना है, पवन परोसने वाला है, और हनुमान जी चित्त में प्रसन्न होकर आदर पूर्वक भोजन करा रहे हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि इसको देखकर राक्षसिनें गाली दे देकर कहती हैं कि पागल रावण ने महाराजा रामचन्द्र से बैर मोल लिया (यह सब उसी का परिणाम है)

अलङ्कार—रूपक।

रावन सो राजरोग बाढ़त बिराटउर,
दिन दिन बिकल सकल सुख-राँक सो।
नाना उपचार करि हारे सुर सिद्ध मुनि,
होत न बिसोक, ओत पावै न मनाक सो।

राम की रजाय तें रसायनी समीर-सूनु
उतरि पयोधि पार सोधि सरवाक सो।
जातुधानबुट, पुटपाक लंक जातरूप,
रतन जतन जारि कियो है मृगांक सो ॥२५॥

शब्दार्थ—राजरोग = क्षयरोग। बिराटउर = विराटपुरुप का हृदय। सुख-राँक = सुख से रङ्क, सुखहीन। श्रोत = चैन। मनाक = थोड़ा। रजाय = आज्ञा। समीर-सूनु = पवनपुत्र, हनुमान। सोधि = खोज करके। सरवाक = अच्छी तरह। बुट = बूटी। पुटपाक = फूँकने के लिये कसोरे में वन्द किया हुआ दवाओं का गोला। जातरूप = सोना। मृगांक = सोने की भस्म।

पद्यार्थ—विराट पुरुप के हृदय में रावण रूपी क्षयरोग बढ़ने लगा जिसके कारण वह सब सुखों से रहित होकर व्याकुल रहने लगा। उस रोग को दूर करने के लिये देवता, सिद्ध तथा मुनि सबों ने बहुत सी दवाएं कीं, परन्तु वे असफल रहे, विराट पुरुप का रोग न छूटा, उसे थोड़ा सा भी आराम न हुआ। रामचन्द्र की आज्ञा से रसायन में सिद्धहस्त हनुमान ने, समुद्र पार जाकर, राक्षस रूपी जड़ी बूटियों को अच्छी तरह ढूँढ़ करके, उनकी सहायता से, लंका के सोना और रत्नों का पुटपाक बनाकर और उसे यत्नपूर्वक अच्छी तरह से जलाकर मृगांक नामक रस बनाया।

अलंकार—रूपक।

जारि बारि कै विधूम, वारिधि बुताइ लूम,
नाइ माथो, पगनि भो ठाढ़ो कर जोरि कै।
'मातु! कृपा कीजै, सहदानि दीजै' सुनि सीय,
दीन्हीं है असीस चारु चूड़ामनि छोरि कै।

'कहा कहौं, तात ! देखे जात ज्यों बिहात दिन,
बड़ी अवलंब ही सो चले तुम तोरि कै।'
'तुलसी' सनीर नैन, नेह सों सिथिल बैन,
बिकल बिलोकि कपि कहत निहोरि कै॥ २६॥

शब्दार्थ—विधूम =धूएँ से रहित, खाक। लूम =पूँछ। सहदानि =चिन्ह। चूड़ामनि =सिरपर का एक गहना। विहात = बीतना।

पद्यार्थ—लङ्का को अच्छी तरह जलाकर खाक करके और समुद्र में अपनी पूँछ को बुझाकर, सीता के समीप जाकर, उनके पैरों पर माथा नवाकर हनुमान बोले, 'हे माता, कृपाकर मुझे कुछ चिन्ह दीजिये।' यह सुनकर सीता जी ने चूड़ामणि उतार कर आशीर्वाद देते हुए उन्हें दी और कहा, "हे तात जिस तरह मेरे दिन बीत रहे हैं उसे तुम देखकर ही जारहे हो, मैं तुमसे विशेष क्या कहूँ। तुम मेरे लिये बहुत सहारा थे, सो तुम उसे तोड़ कर जारहे हो।" तुलसीदास जी कहते हैं कि ऐसा कहते कहते सीता जी के नेत्रों में आंसू भर आया। प्रेमाधिक्य से वचन गद्गद् हो गये। उन्हें इस तरह व्याकुल देखकर हनुमान जी विनयपूर्वक बोले।

'दिवस छ सात जात जानिबे न, मातु धरु
धीर, अरि अंत की अवधि रही थोरिकै।
बारिधि बँधाय सेतु ऐहैं भानुकुल-केतु,
सानुज कुसल कपि-कटक बटोरि कै।'
बचन बिनीत कहि सीता को प्रबोध करि,
'तुलसी' त्रिकूट चढ़ि कहत डफोरि कै।
'जै जै जानकीस दससीसकरि-केसरी'
कपीस कूद्यो बातघात बारिधि हलोरि कै॥ २७॥

शब्दार्थ—प्रबोधकरि = सान्त्वना देकर । डफोरि कै = ललकारकर । बातघात = हवा की चोट ।

पद्यार्थ—"हे माता, ये छः सात दिन बीतते देर न लगेगी । आप धैर्य धारण किये रहिये, अब शत्रु के नाश होने में अधिक देर नहीं है । रामचन्द्र जी समुद्र पर पुल बांध करके अपने छोटे भाई लक्ष्मण के साथ बन्दरों की सेना बटोर कर कुशलपूर्वक आयेंगे । ऐसी नम्रता भरी बातें कह हनुमान जी ने सीता जी को सान्त्वना दी और वहां से चलकर त्रिकूट पहाड़ पर चढ़ गये और गर्जकर, रावण रूपी हाथी के लिये सिंह रूपी रामचन्द्र की जय हो, कहते हुए और अपने कुदान के वेग की हवा से समुद्र में हिलोरें उठाते हुए उस पार कूद गए ।

अलंकार—रूपक ।

साहसी समीरसूनु नीरनिधि लंघि, लखि,
लंक सिद्धिपीठि निसि जागो है मसान सो ।
'तुलसी' विलोकि महासाहस प्रसन्न भई,
देवी सिय सारिषी, दियो है बरदान सो ॥
वाटिका उजारि, अच्छ-धारि मारि, जारि गढ़,
भानुकुल-भानु को प्रताप-भानु भानु सो ।
करत बिसोक लोक कोकनद, कोक-कपि,
कहै जामवंत आयो आयो हनुमान सो ॥ २८ ॥

शब्दार्थ—सिद्धिपीठि = मन्त्र सिद्ध करने का स्थान । सारिषी = समान । कोकनद = कमल । कोक = चकवा चकई ।

पद्यार्थ—साहसी हनुमान ने समुद्र को लांघ कर और लंका को मन्त्र सिद्ध करने का स्थान समझ कर रात में मसान जगाया । तुलसी-

दास जी कहते हैं कि हनुमान के विकट साहस को देखकर सीता के समान देवी प्रसन्न हुई और उन्हें वरदान दिया, जिसके प्रभाव से हनुमान ने रावण की वाटिका उजाड़ डाली, अक्षयकुमार को सेना सहित मार डाला और लंका के गढ़ को जला डाला। उन्हें आते देखकर जामवन्त बोले कि सूर्यकुल के सूर्य रामचन्द्र जी के प्रताप-सूर्य हनुमान, मनुष्य रूपी कमल और चकवा चकई रूपी बन्दरों को शोकरहित करते हुए अर्थात् प्रसन्न करते हुए आ रहे हैं।

अलंकार—उपमा और रूपक।

गगन निहारि, किलकारी भारी सुनि,
हनुमान पहिचानि भये सानँद सचेत हैं।
बूड़त जहाज बच्यो पथिक-समाज, मानो,
आजु जाये जानि सब अंकमाल देत हैं॥
'जै जै जानकीस, जै जै लषन कपीस' कहि,
कूदैं कपि कौतुकी, नचत रेत-रेत हैं।
अंगद, मयंद, नल, नील, बलसील महा,
बालधी फिरावैं मुख नाना गति लेत हैं॥ २६॥

शब्दार्थ—जाये जानि =जन्मा हुआ जान कर। अंकमाल =गले से लगाकर मिलना। रेत रेत = समुद्र के किनारे इधर उधर। बालधी =पूँछ।

पदार्थ—बन्दरों ने भारी किलकारी सुनकर जब आकाश की ओर देखा तो हनुमान को पहचान कर वे अत्यन्त आनन्दित हुए और उनकी दुखजनित मूर्छा दूर हो गई। मानो डूबते हुए जहाज से यात्री बच गये हों अथवा वे आज अपना नया जन्म समझकर आपस में एक दूसरे को गले से लगाकर मिलते हों। कौतुकी बन्दर जानकीनाथ

'रामचन्द्र जी की जय, 'लक्ष्मण जी की जय, 'सुग्रीव की जय' कहकर समुद्र के किनारे रेत पर इधर उधर नाचने लगे। अत्यन्त बलशाली अंगद, मयंद, नल नील आदि बन्दर प्रसन्न होकर पूँछ हिलाने लगे और नाना प्रकार से मुँह बनाने लगे।

अलङ्कार—उत्प्रेक्षा।

आयो हनुमान प्रान-हेतु, अंकमाल देत,
लेत पगधूरि, एक चूमत लँगूल हैं।
एक बूझैं बार बार सीय समाचार, कहे,
पवनकुमार भो बिगत स्रमसूल हैं॥
एक भूखे जानि आगे आने कंद मूल फल,
एक पूजे बाहुबल तोरि मूल फूल हैं।
एक कहैं 'तुलसी', "सकल सिधि ताके जाके
कृपापाथनाथ सीतानाथ सानुकूल हैं" ॥ ३० ॥

शब्दार्थ—बिगतस्रमसूल = थकावट से रहित। पाथनाथ = समुद्र।

पद्यार्थ—सबों के प्राण बचाने वाले हनुमान को आया हुआ देखकर कोई उनके गले से लपट कर मिलता है, कोई उनके पैरों की धूल को अपने सिर में लगाता है और कोई उनकी पूँछ को चूमता है। कोई बारबार सीता जी का समाचार पूछता है और समाचार कहते हुए आनन्द के कारण हनुमान जी अपनी सब थकावट भूल जाते हैं। कोई उनको भूखा जानकर कन्द मूल फल लाकर उनके सामने रखता है, और कोई मूल फूल तोड़कर उनकी बलशाली भुजाओं की पूजा करता है। कोई कहता है कि जिसके अनुकूल कृपा के समुद्र रामचन्द्र हों उसको अगर सारी सिद्धियाँ प्राप्त हों तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

सीय के सनेह सील, कथा तथा लंक की
चले कहत चाय सों, सिरानो पथ छन में।
कह्यो जुवराज बोलि बानर-समाज, "आजु
खाहु फल" सुनि पेलि पैठे मधुबन में ॥
मारे बागवान, ते पुकारत देवान गे,
"उजारे बाग अंगद"; दिखाए घाय तन में।
कहैं कपिराज "करि काज आये कीस,
तुलसीस की सपथ महामोद मेरे मन में ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ—सिरानो = ख़तम हो गया। पेलि = ज़बरदस्ती। मधुवन = सुग्रीव के वन का नाम था। देवान = कचहरी।

पद्यार्थ—हनुमानजी सीताजी के स्नेह और शील तथा लंका की कथा बड़े आनन्द से कहते हुए चले जिससे वन्दरों का मार्ग बात की बात में कट गया। अंगद ने वानरों के समाज को बुलाकर कहा "आज मनमाना फल खाओ।" उनकी आज्ञा सुनकर सब बन्दर मधुवन में ज़बरदस्ती समा गये और मालियों को मारा। वे पुकारते हुए सुग्रीव के पास न्यायालय में गये और यह कहकर अपने शरीर का घाव दिखाने लगे कि अंगद ने बाग को उजाड़ डाला। यह सुन कर सुग्रीव ने उत्तर दिया कि बन्दर लोग रामचन्द्र जी का काम करके—सीता जी का पता लगाकर—आये हैं इससे मैं रामचन्द्र जी की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि मेरे दिल में अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है।

नगर कुबेर को सुमेरु की बराबरी,
बिरंचि बुद्धि को बिलास लंक निरमान भो।
ईसहिं चढ़ाय सीस बीसबाहु बीर तहाँ,
रावन सो राजा रजतेज को निधान भो ॥

'तुलसी' त्रिलोक की समृद्धि सौंज संपदा
सकेलि चाकि राखी रासि, जाँगर जहान भो।
तीसरे उपास बनबास सिंधुपास सो
समाज महराज जू को एक दिन दान भो ॥३२॥

शब्दार्थ—रजतेज = रजोगुण का प्रताप। सौंज = सामग्री। सकेलि = बटोर कर। चाकि राखी = निशान लगाकर रख दिया है। जाँगर = उजाड़। जहान = दुनिया।

पद्यार्थ—कुवेर की पुरी लंका (जिसको रावण ने छीन लिया था) जो सोने की बनी हुई होने के कारण सुमेरु पर्वत के समान थी और जिसको बनाने में ब्रह्मा ने अपनी सारी बुद्धि लगा दी थी, उसका स्वामी रजोगुण के प्रताप का निधान बीस भुजावाला रावण बना, जिसने अपने मस्तकों को काटकर शिवजी को चढ़ाया था और (उनसे अजय होने का वरदान प्राप्त करके) तीनों लोक का ऐश्वर्य और सामग्री लंका में एकत्र करके चाक दी थी जिससे सारा संसार धन सम्पत्ति से रहित हो गया था। रावण की वह ऐश्वर्य से भरी हुई लंका वनवासी रामचन्द्र के लिये तीन दिन के उपवास के बाद समुद्र के किनारे एक दिन के दान की सामग्री हुई अर्थात रामचन्द्र जी ने एक ही दिन में विभीषण को दान दे दिया।

अलंकार—अत्युक्ति।

लंकाकाण्ड

कवित्त

"बड़े विकराल भालु, बानर बिसाल बड़े,
'तुलसी' बड़े पहार लै पयोधि तोपिहैं।
प्रबल प्रचंड बरिबंड बाहुदंड खंडि,
मंडि मेदिनी को मंडलीक-लीक लोपिहैं" ॥
लंक-दाहु देखे न उछाहु रह्यो काहुन को,
कहैं सब सचिव पुकारि पाँव रोपिहैं।
"बाचिहै न पाछे त्रिपुरारि हू मुरारि हू के,
को है रन रारि को जौं कोसलेस कोपिहैं ?" ॥ १ ॥

शब्दार्थ—तोपि हैं = ढक देंगे। बरिबंड = बलवान। बाहु-दंड = भुजाएं। खंडि = तोड़कर। मंडि = भूषित करके। मेदिनी = पृथ्वी। मंडलीक = राजा। लीक = मर्यादा। लोपि हैं = मिटा देंगे। लंक-दाहु = लंका का जलना। उछाहु = प्रसन्नता है। पाँव रोपिहैं = पाँव रोपकर अर्थात् विश्वासपूर्वक। रन रारि को = युद्ध में लड़ने के लिये। पाछे = पीछे जाने पर अर्थात् शरण में जाने पर।

पदार्थ—लंका को जली हुई देखकर किसी में भी उत्साह न रह गया और मंत्रीगण विश्वासपूर्वक कहने लगे कि बड़े बड़े भयानक भालु और बन्दर पहाड़ के बड़े बड़े टुकड़े लेकर समुद्र को पाट देंगे और रावण की बड़ी बलशाली और प्रचण्ड भुजाओं को तोड़ करके पृथ्वी को भूषित कर देंगे (पृथ्वी पर फैला देंगे) और सारे संसार को

विजय करनेवाले रावण की मर्यादा को नष्ट कर देंगे। शिव और विष्णु की शरण में जाने पर भी कोई न बचा सकेगा। जब रामचन्द्र जी युद्ध के मैदान में क्रुद्ध होकर खड़े होंगे तो कौन ऐसा वीर है जो उनके मुकाबिले खड़ा हो सके?

त्रिजटा कहत बार बार तुलसीस्वरी सों,
"राघौ बान एकही समुद्र सातौ सोषिहैं।
सकुल सँघारि जातुधान-धारि, जंबुकादि,
जोगिनी-जमाति कालिका-कलाप तोषिहैं॥
राज दै नेवाजि हैं बजाइ कै बिभीषनै,
बजैंगे ब्योम बाजने बिबुध प्रेम पोषिहैं।
कौन दसकंध, कौन मेघनाद बापुरो,
को कुंभकर्ण कीट जब राम रन रोषिहैं॥ २॥

शब्दार्थ—तुलसीश्वरी = तुलसीदास की स्वामिनी अर्थात् जानकी। सँघारि = नाश करके। जातुधान-धारि = राक्षसों का समूह। जंबुकादि = गीदड़ वगैरः। कलाप = समूह। तोषिहैं = संतुष्ट करेंगे। नेवाजिहैं = रक्षा करेंगे। बजाइ कै = डंका पीट कर। पोषिहैं = पुष्ट कर देंगे। बापुरो = बेचारा। कीट — कीड़ा, तुच्छ।

पद्यार्थ—त्रिजटा बार बार जानकी जी से कहती है कि रामचन्द्र जी एक ही बाण में सातों समुद्रों को सुखा देंगे और कुल सहित राक्षसों के समूह का नाश करके गीदड़ आदि, योगिनियों की जमात और कालिकाओं के समूह को सन्तुष्ट करेंगे। फिर डंका बजाकर विभीषण को लंका का राज देकर उसकी रक्षा करेंगे, जिससे आकाश में बाजे बजेंगे और देवताओं का प्रेम (रामचन्द्र जी के प्रति) पुष्ट हो जायगा। जब रामचन्द्र जी युद्ध-भूमि में क्रोध करेंगे तो रावण, बेचारा मेघनाद और कीड़े समान कुम्भकरण सभी भाग खड़े होंगे, कोई सामना न करेगा।

विनय सनेह सों कहति सीय त्रिजटा सों,
"पाये कछु समाचार आरजसुवन के ?"।
"पाये जू ! बँधायो सेतु, उतरे कटक कुलि,
आये देखि देखि दूत दारुन दुवन के॥
वदन-मलीन बलहीन दीन देखि मानो,
मिटै घटै तमीचर-तिमिर भुवन के।
लोकपति कोक सोक, मूँदे कपि-कोकनद,
दंड द्वै रहे हैं रघु-आदित उवन के" ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—आरजसुवन = आर्यपुत्र (प्राचीन काल में स्त्रियाँ अपने ससुर को आर्य और अपने पति को आर्यपुत्र कहा करती थीं)। कटक कुलि = सारी सेना। दारुन = कठिन। दुवन = दुर्जन। तमीचर = राक्षस। तिमिर = अंधकार। आदित = सूर्य। उवन = उगना।

पद्यार्थ—सीता जी बड़ी ही नम्रता और स्नेह से त्रिजटा से पूछती हैं, "तुम्हें आर्य पुत्र (रामचन्द्र जी) का कुछ समाचार मिला है ?" त्रिजटा कहती है, "जी हां, समाचार मिला है। रामचन्द्र जी ने समुद्र पर पुल बँधाया है और सारी सेना समुद्र पार आ गई है जिनको दुष्ट रावण के दूत देख आए हैं। उनको देखकर वे उत्साहहीन, दीन तथा मलीन वदन हो गए हैं जिससे जान पड़ता है कि संसार से राक्षस रूपी अँधेरा मिट जायगा। इस समय तो लोकपाल रूपी चकवा चकई शोक से भरे हैं और बन्दर रूपी कमल मूँदे हुए हैं। अब रामचन्द्र रूपी सूर्य के उदय होने में दो ही दंड बाकी रह गये हैं। (उनके उदय होने पर अर्थात् बल दिखलाने पर लोकपाल रूपी चकवा चकई प्रसन्न हो जायंगे और बन्दर रूपी कमल खिल जायँगे।)

अलंकार—रूपक।

(झूलना छंद)

सुभुज मारीच खर त्रिसिर दूषन बालि,
　　दलत जेहि दूसरो सर न साँध्यो ।
आनि परबाम बिधिबाम तेहि राम सों,
　　सकत संग्राम दसकंध काँध्यो ॥
समुझि तुलसीस कपि कर्म घर-घर घैरु,
　　बिकल सुनि सकल पाथोधि बाँध्यो ।
बसत-गढ़ लंक लंकेस-नायक अछत,
　　लंक नहिं खात कोउ भात राँध्यो ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—सुभुज = सुबाहु राक्षस । दूसरो सर न साँध्यो = दूसरा बाण न चढ़ाया, एक ही बाण में काम तमाम किया । परबाम = पर स्त्री । काँध्यो = कंधे पर रखा, स्वीकार किया, ठाना । घैरु = चर्चा । अछत = रहते हुए । राँध्यो = पकाया हुआ ।

पद्यार्थ—जिन्होंने सुबाहु, मारीच, खरदूषण, त्रिसिरा और बालि को मारने के लिये दूसरा बाण नहीं चढ़ाया, एक ही बाण में मार डाला, उन्हीं रामचन्द्र जी से यह अभागा रावण दूसरे की स्त्री को लाकर लड़ाई ठाना है । क्या वह उनसे युद्ध कर सकता है ? तुलसी के स्वामी, श्रीरामचन्द्र जी और हनुमान के कामों को याद कर लंका के घर घर में चर्चा हो रही है । समुद्र पर पुल बांधा जाना सुन कर राक्षस और भी घबड़ा गये हैं । लंका जैसे दृढ़ गढ़ में बसते हुए और रावण जैसे बलशाली राजा की छत्रछाया में रहते हुए भी लंका में कोई रांधा हुआ भात नहीं खाता । (रामचन्द्र जी के आतंक से किसी को खाना पीना अच्छा नहीं लगता ।)

अलंकार—लोकोक्ति और विशेषोक्ति ।

(सवैया)

बिस्वजयी भृगुनायक से बिनु हाथ भये हनि हाथ-हजारी।
बातुल मातुल की न सुनी सिख, का 'तुलसी' कपि लंक न जारी?
अजहूँ तौ भलो रघुनाथ मिले, फिरि बूझिहै को गज कौन गजारी।
कीर्त्ति बड़ो, करतूति बड़ो, जन बात बड़ो, सो बड़ोई बजारी ॥५॥

शब्दार्थ—हाथ-हजारी = हजार हाथों वाला सहस्त्रबाहु। बातुल = बकवादी। मातुल = मामा। गजारी = सिंह। बजारी = बाजारी, अप्रामाणिक।

पद्यार्थ—जिस रामचन्द्र जी के सामने हजार हाथों वाले सहस्रबाहु को मार कर संसार पर विजय प्राप्त करने वाले परशुराम जी भी बिना हाथ के हो गए अर्थात् हार मान गये, उनसे बैर मोल लेने के लिए, बकवादी रावण ने अपने मामा मारीच की शिक्षा पर भी ध्यान नहीं दिया, (जिसके फल स्वरूप) क्या लंका नहीं जलाई गई? अभी उसकी इसी में भलाई है कि वह रामचन्द्र जी से मिल जाय, नहीं तो आगे चलकर यह मालूम हो जायगा कि कौन हाथी और कौन सिंह है। जो अच्छे काम करके यश प्राप्त करता है, वही बड़ा कहलाने योग्य है और जो केवल बढ़ बढ़कर बातें करता है वह बाजारू आदमी है उसकी बातों का क्या भरोसा?

जब पाहन भे बनबाहन-से, उतरे बनरा 'जयराम' रढ़े।
'तुलसी' लिये सैल-सिला सब सोहत, सागर ज्यों बलबारि बढ़े॥
करि कोप करैं रघुबीर को आयसु, कौतुक ही गढ़ कूदि चढ़े।
चतुरंग चमू पल में दलिकै रन रावन राढ़ के हाड़ गढ़े॥ ६॥

शब्दार्थ—बनबाहन = जल की सवारी, नाव। रढ़े = बोले। बल = सेना। चतुरंग चमू = चार अंगों वाली सेना। राढ़ = दुष्ट। हाड़ गढ़े = हड्डियाँ तोड़ देंगे।

पद्यार्थ—जब पत्थर नाव के समान समुद्र पर तैरने लगे तो बन्दरों ने उन पर से होकर समुद्र को पार किया और लंका में प्रवेश करके रामचन्द्र जी की जय जयकार की। तुलसीदास जी कहते हैं कि पत्थर के बड़े बड़े टुकड़े लिए हुये सब बन्दर सुशोभित हो रहे थे और वे अपने बल से इस प्रकार विशाल दिखलाई पड़ते थे कि जिस प्रकार जल की विपुलता से समुद्र विशाल दिखलाई पड़ता है। वे बन्दर रामचन्द्र जी की आज्ञा पाकर क्रुद्ध होकर एक ही कुदान में लंका के गढ़ पर चढ़ जायँगे और दुष्ट रावण की हड्डी पसली तोड़ करके उसकी चतुरंगनी सेना का नाश कर देंगे।

अलंकार—उदाहरण।

(कवित्त)

विपुल बिसाल बिकराल कपि-भालु मानौ,
काल बहु बेष धरे धाये किये करषा।
लिये सिला सैल, साल ताल औ तमाल तोरि,
तोपैं तोयनिधि, सुर को समाज हरषा॥
डगे दिगकुंजर, कमठ कोल कलमले,
डोले धराधर-धारि, धराधर धरषा।
'तुलसी' तमकि चलैं, राघौ की सपथ करैं,
को करै अटक कपि-कटक अमरषा? ॥ ७॥

शब्दार्थ—करषा = क्रोध। धराधर-धारि = पहाड़ों के समूह। धराधर = शेषनाग। धरषा = दब गए। अटक = रोक टोक। अमरषा = क्रोधित हुआ।

पद्यार्थ—बहुत बड़े और भयंकर बन्दर और भालु क्रोधित होकर ऐसे दौड़ रहे हैं मानो साक्षात् काल ही अनेकों वेष धारण

करके दौड़ रहा हो। वे लोग पहाड़ों के टुकड़े, शाल, ताड़ और तमाल के पेड़ों को उखाड़ लाकर समुद्र को पाटते हैं जिसे देख कर देवताओं का समाज हर्षित हो रहा है। उनके पैरों के भार से दिशाओं के हाथी डगमगा रहे हैं, कच्छप और वाराह कलमला रहे हैं, पहाड़ों के समूह डोल रहे हैं और शेषनाग दबे जा रहे हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि भालु और बन्दर तमक कर चलते हैं और रामचन्द्र जी की शपथ खाते हैं। भला इस क्रोधित सेना का मुकाबिला कौन कर सकता है?

अलंकार—उत्प्रेक्षा और दीपक।

आए सुक-सारन बोलाए, ते कहन लागे,
पुलक सरीर सेना करत फहम ही।
'महाबली बानर बिसाल भालु काल-से
कराल हैं, रहैं कहाँ, समाहिंगे कहाँ मही'॥
हँस्यो दसमाथ रघुनाथ को प्रताप सुनि,
'तुलसी' दुरावै मुख सूखत सहम ही।
राम के बिरोधे बुरो बिधि हरि हर हू को,
सबको भलो है राजा राम के रहम ही॥ ८॥

शब्दार्थ—करत फहम ही=याद करते ही। समाहिंगे कहाँ मही=पृथ्वी पर कहाँ अटेंगे। दुरावै = छिपाता है।

पद्यार्थ—रावण के बुलाने पर उसके दूत सुक और सारन आए। (जब रावण ने उनसे रामचन्द्र की सेना का हाल पूछा तो) उनकी सेना का स्मरण कर भय के मारे उनके शरीर में कँपकँपी समा गई। वे कहने लगे, महाबलशाली बन्दर और भालु काल के से भयानक हैं। वे कहां रहेंगे? उनके लिये तो पृथ्वी पर स्थान ही

न मिलेगा।" रामचन्द्र जी के प्रताप को सुनकर यद्यपि रावण का मुँह भय के मारे सूख गया तथापि अपने भय के भाव को छिपा कर वह हँसा। तुलसीदास जी कहते हैं कि रामचन्द्र जी के विरोध से ब्रह्मा, विष्णु और महेश का भी बुरा हो सकता है। रामचन्द्र जी की कृपा से ही सबकी भलाई हो सकती है।

अलंकार—पूर्णोपमा।

'आयो आयो आयो सोई बानर बहोरि', भयो
सोर चहुँ ओर लंका आए जुवराज के।
एक काढ़ै सौंज, एक धौज करै कहा ह्वै है,
'पोच भई महा' सोच सुभट-समाज के॥
गाज्यो कपिराज रघुराज की सपथ करि,
मूँदे कान जातुधान मानो गाजे गाज के।
सहमि सुखात बातजात की सुरति करि,
लवा ज्यों लुकात 'तुलसी' झपेटे बाज के॥ ६॥

शब्दार्थ—धौज = दौड़धूप। पोच = बुरा। गज्यो = गर्जा। गाज = बिजली। बातजात = पवन के पुत्र, हनुमान। लवा = बटेर। लुकात = छिपती है।

पद्यार्थ—जब अंगद जी लंका नगरी में पहुँचे तो चारों तरफ शोर मच गया कि वही बन्दर फिर आ गया। कोई घर से सामान निकालने लगा, कोई इधर उधर बदहवास दौड़ने लगा कि अब न जाने क्या होगा। योद्धा लोग सोच में पड़ गए कि यह बहुत बुरा हुआ। अंगद रामचन्द्र जी की शपथ खाकर गर्जने लगे। उनकी गर्ज को सुन्दर राक्षस उसी प्रकार अपने कान मूँदने लगे जिस प्रकार बिजली के गर्जने पर लोग कान मूंदते हैं। तुलसीदास जी

कहते हैं कि हनुमान की याद करके डर के मारे राक्षसों का मुँह सूख गया और वे इस प्रकार छिपने लगे, जिस प्रकार बाज के झपटने पर लवा पक्षी छिप जाता है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा और उदाहरण।

तुलसीस-बल रघुवीर जू के बालिसुत
 वाहि न गनत, बात कहत करेरी सी।
'बखसीस ईस जू की खीस होत देखियत,
 रिस काहें लागति कहत हौं तो तेरी सी॥
चढ़ि गढ़ मढ़ दृढ़ कोट के कँगूरे कोपि,
 नेकु धक्का देहैं ढैहैं ढेलन की ढेरी सी।
सुनु दसमाथ! नाथ-साथ के हमारे कपि,
 हाथ लंका लाइहैं तो रहेगी हथेरी सी॥ १०॥

शब्दार्थ—करेरी सी = कड़ी सी। बखसीस = धन, वैभव। खीस होत = नष्ट होते हुए। तेरी सी = तुम्हारे लाभ की। हथेरी सी = हाथ की हथेली के समान अर्थात् बराबर, समतल।

पदार्थ—रामचन्द्र जी के प्रताप के बल से अंगद रावण को कुछ समझता नहीं और उसे खरी खरी बातें सुनाता है, "शिव जी की दी हुई यह सारी समृद्धि नष्ट हो जायगी। मैं तो तेरी ही भलाई के लिये कहता हूँ, तू क्रुद्ध क्यों हो रहा है? (अगर तू मेरी बात मान कर रामचन्द्र जी से न मिलेगा तो) बन्दर क्रोधित होकर तुम्हारे किले और मकानों की चोटियों पर चढ़कर उन्हें धक्का देकर इस प्रकार गिरा देंगे जिस प्रकार ढेले की ढेरी को (बच्चे) धक्के से गिरा देते हैं। हे रावण, सुनो, मेरे स्वामी के साथ में आये हुए बन्दर लंका में हाथ लगावेंगे तो तेरी सोने की लंका मिट्टी में मिल जायगी।"

अलंकार—उपमा।

दूषन बिराध खर त्रिसिर कबंध बधे,
ताल ऊ बिसाल बेधे, कौतुक है कालि को।
एकही बिसिप बस भयो बीर बाँकुरो ओ,
तोहू है बिदित बल महाबली बालि को॥
'तुलसी' कहत हित, मानतो न नेकु संक,
मेरो कहा जैहै, फल पैहै तू कुचालि को।
बीर-करि-केसरी कुठारपानि मानी हारि,
तेरी कहा चली, बिड़! तो सो गनै घालि को॥ ११॥

शब्दार्थ—कबंध = एक गंधर्व का नाम। कालि को = कलका, थोड़े दिनों का। बिसिप = बाण। बीर-करि-केसरी = हाथी रूप बीर क्षत्रियों के लिये सिंह के समान। कुठारपानि = परशुराम। बिड़ = दुष्ट। गनै घालि को = बलुआ भी नहीं समझता, कुछ नहीं समझता।

पद्यार्थ—खर, दूषण, विराध, त्रिशिरा, कबन्ध तथा बड़े भारी सप्ततालों को श्रीरामचन्द्र जी ने एकही बाण में बेध दिया, ये सब तो उनके थोड़े ही दिनों के खेल हैं। तुम पर प्रकट ही है कि एक ही बाण में महाबली बालि की क्या दशा हुई। मैं तो तेरी ही भलाई के लिये कहता हूँ, तू जरा भी डर नहीं मानता, इससे मेरा क्या बिगड़ेगा, तूही अपने कुकर्मों का फल पायगा। जब वीरों में शिरोमणि परशुराम जी तक रामचन्द्र जी से हार मान चुके हैं तो ऐ नीच, रामचन्द्र जी के सामने तू तो किसी गिनती में नहीं है।

(सवैया)

तो सों कहौं दसकंधर रे, रघुनाथ-विरोध न कीजिय बौरे।
बालि बली खर-दूषन और अनेक गिरे जे जे भीति में दौरे॥

ऐसिय हाल भई तोहिं धौं, नतु लै मिलु सीय चहै सुख जौ रे।
राम के रोष न राखि सकैं 'तुलसी' विधि, श्रीपति, संकर सौ रे॥ १२॥

शब्दार्थ—भीति में दौरे = दीवार पर दौड़ता है, ख़तरे का काम करता है।

पद्यार्थ—अंगद कहते हैं कि ऐ पागल रावण, मैं तुझसे कहता हूँ कि रामचन्द्र जी से विरोध न कर। महाबली बालि, खर तथा दूषण आदि बीर जो भीति पर चढ़कर दौड़े, गिर पड़े। (अर्थात् रामचन्द्र से विरोध करके नाश को प्राप्त हुए) जो तू सुख चाहता है तो सीता को लेकर रामचन्द्र जी से मिल, नहीं तो तुम्हारी भी वैसी ही दशा होगी। श्रीरामचन्द्र जी के क्रुद्ध होने पर सैकड़ों ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी तेरी रक्षा नहीं कर सकते।

अलंकार—संबंधातिशयोक्ति।

तू रजनीचर-नाथ महा, रघुनाथ के सेवक को जन हौं हौं।
बलवान है स्वान गली अपनी, तोहि लाज न, गाल बजावत सौंहौं॥
बीस भुजा दससीस हरौं न डरौं प्रभु आयसु भंग ते जौ हौं।
खेत में केहरि ज्यों गजराज दलौं दल बालि को बालक तौ हौं॥ १३॥

शब्दार्थ—खेत = मैदान। केहरि = सिंह। हौं = मैं।

पद्यार्थ—अंगद बोले, "हे रावण, तू राक्षसों का राजा है और मैं रामचन्द्र जी के दास का दास हूँ। कुत्ता भी अपनी गली में बलवान् होता है। तुझे मेरे सामने गाल बजाते हुए लज्जा नहीं मालूम होती। मैं तुम्हारे दशों सिर और बीसों भुजाओं को उखाड़ डालता, परन्तु ऐसा करना स्वामी की आज्ञा के विरुद्ध होगा। जैसे सिंह मैदान में हाथी को पछाड़ डालता है, वैसे यदि मैंने तुम्हें पछाड़ा नहीं, तो बालि का पुत्र नहीं।

अलंकार—उदाहरण।

कोसलराज के काज हौं आज त्रिकूट उपारि लै वारिधि बोरौं।
महाभुज-दंड द्वै अंडकटाह चपेट की चोट चटाक दै फोरौं॥
आयसु-भंग ते जौं न डरौं सब मींजि सभासद सोनित खोरौं।
बालि को बालक जौं 'तुलसी' दसहू मुख के रन में रद तोरौं॥१४॥

शब्दार्थ—अंडकटाह = ब्रह्मांड। चपेट = थप्पड़। सोनित = ख़ून। रद = दाँत।

पद्यार्थ—कोशलराज श्रीरामचन्द्र जी के काम को सिद्ध करने के लिए त्रिकूट पर्वत को उखाड़ कर मैं समुद्र में डुबो सकता हूँ और महाबलशाली अपनी दोनों भुजाओं की थप्पड़ों से मार कर ब्रह्मांड को भी शीघ्र ही तहस-नहस कर सकता हूँ और तुम्हारे सभासदों को मसल कर उनके ख़ून से स्नान कर सकता हूँ। परन्तु क्या करूँ, स्वामी की आज्ञा भंग होने का डर है, इससे लाचार हूँ। फिर भी तुम्हारे दाँतों को लड़ाई के मैदान में तोड़ न डाला तो मैं बालि का पुत्र नहीं।

अति कोप सों रोप्यो है पाँव सभा, सब लंक ससंकित सोर मचा।
तमके घननाद से बीर पचारि कै, हारि निसाचर सैन पचा॥
न टरै पग मेरुहु तें गरु भो, सो मनो महि संग बिरंचि रचा।
'तुलसी' सब सूर सराहत हैं 'जग में बलसालि है बालि-बचा'॥१५॥

शब्दार्थ—पचारि कै = ललकार कर।

पद्यार्थ—अंगद ने अत्यन्त क्रोध के साथ रावण की सभा में अपना पैर रोप दिया, जिससे सारी लंका डर गई और चारों तरफ़ शोर मच गया। मेघनाद जैसे बहुत से बीर पैर हटाने के लिये ललकार कर झपटे, किन्तु राक्षसों की सारी सेना हार कर बैठ गई।

वह पैर हटता नहीं, मेरु पर्वत से भी भारी हो गया, मानों ब्रह्मा ने उसे पृथ्वी के साथ जुड़ा हुआ ही पैदा किया था। तुलसीदास जी कहते हैं कि सभी वीर उसकी प्रशंसा करते हैं कि बालि का पुत्र अंगद बहुत ही बलवान है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

(कवित्त)

रोप्यो पाँव पैज कै बिचारि रघुबीर-बल,
लागे भट सिमिटि न नेकु टसकतु है।
तज्यो धीर धरनि, धरनिधर धसकत,
धराधर धीर भार सहि न सकतु है॥
महाबली बालि को, दबत दलकति भूमि,
'तुलसी' उछरि सिंधु, मेरु मसकतु है।
कमठ कठिन पीठि, घट्टा परो मंदर को,
आयो सोई काम, पै करेजो कसकतु है॥ ६॥

शब्दार्थ—पैज = प्रण। सिमिटि = एकत्र होकर। धरनिधर = पहाड़। धराधर = शेषनाग। मसकतु है = दरकता है। कसकतु है = पीड़ा करता है।

पद्यार्थ—अंगद ने रामचन्द्र जी के बल के भरोसे पर प्रण करके सभा में पाँव रोप दिया। योद्धा लोग एक साथ जोर लगा कर उसे उठाते हैं, पर वह टस से मस नहीं होता। उनके पैर के भार से पृथ्वी धैर्य खोने लगी, पहाड़ धसने लगे। धैर्यवान शेषनाग भी व्याकुल हो उठे। महाबलशाली बालि के पुत्र अंगद के दबाने से पृथ्वी दलकने लगी, समुद्र का जल उछलने लगा और सुमेरु पर्वत फटने लगा। समुद्र मथने के समय कच्छप की पीठ पर मंदराचल

पर्वत के रखने से जो घट्टा पड़ गया था वही उनके काम आया। उससे उनकी पीठ को पीड़ा तो न हुई, किन्तु उनका कलेजा दर्द करने लगा।

अलंकार—संबंधातिशयोक्ति।

(झूलना छंद)

कनकगिरिसृंग चढ़ि, देखि मर्कट-कटक,
बदति मंदोदरी परम भीता।
'सहसभुज-मत्त-गजराज-रन-केसरी,
परसुधर-गर्व जेहि देखि बीता॥
'दास तुलसी' समरसूर कोसलधनी,
ख्याल ही बालि बलसालि जीता।
रे कंत! तृन दंत गहि सरन श्रीराम, कहि,
अजहुँ यहि भाँति लै सौंपु सीता॥१७॥

शब्दार्थ—कनकगिरिसृंग = सोने के पहाड़ की चोटी। मर्कट-कटक = बन्दरों की सेना। भीता = भयभीत होकर। ख्याल ही = खेलवाड़ में ही।

पदार्थ—सोने के पहाड़ की चोटी पर चढ़कर, बन्दरों की बड़ी सेना को देख मंदोदरी अत्यन्त भयभीत हुई और रावण से बोली, "हे पति, जिसको देखकर सहस्राबाहु रूपी मतवाले हाथी के लिये युद्ध भूमि में सिंह के समान परशुराम जी का गर्व चूर्ण हो गया, जिन्होंने खेलवाड़ में ही महाबलशाली बालि को जीत लिया, ऐसे योद्धा रामचन्द्र को, दाँतो में तृण पकड़ कर 'श्रीरामचन्द्र जी की शरण में हूँ' ऐसा कह कर अब भी सीता को ले जाकर सौंप दो।" !

अलंकार—रूपक।

रे नीच ! मारीच बिचलाइ, हति ताड़का,
भंजि सिवचाप सुख सबहिं दीन्ह्यो ।
सहस-दसचारि खल सहित खरदूषनहिं
पठै जमधाम, तैं तउ न चीन्ह्यो ।
मैं जो कहौं कंत, सुनु संत भगवंत सों,
बिमुख ह्वै बालि फल कौन लीन्ह्यो ? ।
बीस भुज, सीस दस खीस गए तबहिं,
जब ईस के ईस सों बैर कीन्ह्यो ।।१८।।

शब्दार्थ—खीस गए = नष्ट हो गये । ईस के ईस = महादेव जी के स्वामी श्रीरामचन्द्र जी ।

पद्यार्थ—ऐ नीच, श्रीरामचन्द्र जी ने मारीच को भगाकर, ताड़िका का बधकर, और शिव जी का धनुष तोड़ कर सबको सुख दिया । खर दूषण को चौदह हजार सेना सहित यमलोक को भेज दिया । इतने पर भी तुम उनको नहीं पहचानते कि कौन हैं ? हे स्वामी ! मैं जो कहती हूँ उसको सुनो, संत और ईश्वर से विमुख होकर बालि ने कौन अच्छा फल प्राप्त किया ? तुम्हारी तो बीसों भुजाएँ और दशों शीश उसी समय नष्ट हो गए, जिस समय तुमने रामचन्द्र जी से वैर मोल लिया ।

अलंकार—अतिशयोक्ति ।

बालि दलि, काल्हि जलजान पाषान किय,
कंत ! भगवंत तैं तउ न चीन्हें ।
बिपुल बिकराल भट भालु कपि काल से,
संग तरु तुंग गिरसृंग लीन्हें ।।
आइगो कोसलाधीस तुलसीस जेहि,
छत्र मिस मौलि दस दूरि कीन्हें ।

ईस-बकसीस जनि खीस करु ईस ! सुनु,
अजहुँ कुल कुसल वैदेहि दीन्हें ॥१९॥

शब्दार्थ—जलजान = नाव । तुंग = ऊंचा । मिस = बहाने । मौलि = सिर । बकसीस = बरदान दी हुई सम्पदा ।

पद्यार्थ—हे स्वामी ! जिन्होंने कल ही बालि का नाश कर, पानी पर पत्थर को नाव की तरह तैरा दिया, उन श्रीरामचन्द्र जी को अब तक तुमने नहीं पहचाना । काल के समान अत्यन्त भयानक अनेक भालु बन्दरों को, जो ऊचे ऊँचे पेड़ और पहाड़ों की चोटियां धारण किये हुए हैं, साथ में लिये हुए श्रीरामचन्द्र जी भी आगए हैं, जिन्होंने तुम्हारा राजछत्र भंग करने के बहाने तुम्हारे दशों सिरों को गिरा दिया । हे स्वामी ! महादेव जी की दी हुई सम्पदा को न गँवाओ । अब भी जानकी को दे देने से तुम्हारे कुल का कल्याण हो सकता है ।

अलंकार—अपन्हुति ।

सैन के कपिन को को गनै अर्बुदै
महाबलवीर हनुमान जानी ।
भूलिहै दस दिसा, सेस पुनि डोलिहैं
कोपि रघुनाथ जब बान तानी ॥
बालि हू गर्ब जिय माहिं ऐसो कियो
मारि दहपट कियो जम की घानी ।
कहति मंदोदरी, सुनहि रावन ! मतो,
वेगि लै देहि वैदेहि रानी ॥२०॥

शब्दार्थ—दहपट कियो = नष्ट कर दिया । अर्बुदै = अरबों ।

पद्यार्थ—रामचन्द्र की असंख्य सेना को कौन गिन सकता है ? महाबलशाली हनुमान ही अरबों योद्धाओं के बराबर हैं । जब श्रीराम-

चन्द्र जी क्रोध सहित तुम पर बाण छोड़ेंगे, उस समय तुम दशों दिशाओं को भूल जाओगे, तुम्हारा चित्त ठिकाने न रहेगा और शेषनाग जी भी डोलने लगेंगे। बालि ने भी तुम्हारी ही तरह उन्हें जीतने का घमंड किया था। लेकिन रामचन्द्र जी ने उसे यमराज की थानी बनाकर नष्ट कर दिया। मन्दोदरी कहती है कि हे रावण, सुनो, मेरी यह राय है कि शीघ्र ही जानकी को ले जाकर उन्हें सौंप दो।

गहन उजारि, पुर जारि, सुत मारि तव,
कुसल गो कीस बर बेर जाको।
दूसरो दूत पन रोपि कोप्यो सभा,
खर्ब कियो सर्ब को गर्ब थाको॥
दास 'तुलसी' सभय बदति मय-नंदिनी,
मंदमति कंत! सुनु मंत म्हाको।
तौ लौं मिलु वेगि नहिं जौ लौं रन रोष भयो,
दासरथि बीर बिरुदैत बाँको॥२१॥

शब्दार्थ—गहन = बन। बर बेर = लम्बे डीलडौल वाला। खर्ब = छोटा। थाको = तुम्हारा। मंत = मंत्र, राय। म्हाको = मेरा। बिरुदैत = यशस्वी।

पद्यार्थ—जिसका बड़े डीलडौल वाला बन्दर बन उजाड़ कर, तुम्हारा नगर जला कर और तुम्हारे पुत्र अक्षयकुमार को मारकर सकुशल लौट गया। (तुम उसका कुछ न बिगाड़ सके) उनके दूसरे दूत ने क्रोध करके तुम्हारी सभा में प्रण किया और तुम्हारा सब गर्व चूर्ण कर दिया। तुलसीदास जी कहते हैं कि मन्दोदरी भयभीत होकर कहती है कि ऐ मूर्ख पति, मेरी राय सुनो। जब तक वीर

यशस्वी श्रीरामचन्द्र जी युद्ध-भूमि में क्रुद्ध नहीं होते तब तक (जानकी को लेकर) उनसे मिलो।

(मनहरण)

कानन उजारि, अच्छ मारि, धारि धूरि कीन्हीं,
नगर प्रजारयो सो बिलोक्यो बल कीस को।
तुम्हें विद्यमान जातुधान-मण्डली में कपि,
कोपि रोप्यो पाँउ, सो प्रभाव तुलसीस को॥
कन्त! सुनु मंत, कुल अंत किये अंत हानि,
हातो कीजै हीय तें भरोसो भुज बीस को।
तौ लौं मिलु वेगि जौं लौं चाप न चढ़ायो राम,
रोपि बान काढ्यो न, दलैया दससीस को॥२२॥

शब्दार्थ—धारि = सेना। प्रजार्यो = जलाया। हातो कीजै = दूर कीजिये।

पद्यार्थ—जिस बन्दर ने बन उजाड़कर, अक्षयकुमार को मार कर, तुम्हारी सेना को धूल में मिलाकर, तुम्हारे नगर को जला डाला, उसके बल को तुमने देख ही लिया है। तुम्हारे देखते देखते दूसरे बन्दर ने राक्षसों की मंडली में क्रोध करके पांव रोप दिया, (जो किसी के हिलाए न हिला)। यह सब रामचन्द्र जी के प्रभाव से हुआ। हे स्वामी, मेरी राय सुनो, आप अपने हृदय से बीस भुजाओं का भरोसा छोड़ दीजिये ; क्योंकि कुल का नाश करने से अन्त में हानि होगी। जब तक श्रीरामचन्द्र जी ने क्रोध करके तुम्हारे दशों सिर को छेदने वाले बाणों को अपने धनुष पर नहीं चढ़ाया, तब तक तुम उनसे शीघ्र मेल कर लो।

अलंकार—तीसरी विभावना।

पवन को पूत देखौ दूत वीर बाँकुरो जो,
बंक गढ़ लंक सो ढका ढकेलि ढाहिगो ।
बालि बलसालि को, सो काल्हि दाप दलि, कोपि
रोप्यो पाँउ, चपरि चमू को चाउ चाहिगो ।
सोई रघुनाथ कपि साथ, पाथनाथ बाँधि,
आए नाथ ! भागे तें खिरिरि खेह खाहिगो ।
'तुलसी' गरब तजि, मिलिबे को साज सजि,
देहि सीय न तौ, पिय ! पाइमाल जाहिगो ॥२३॥

शब्दार्थ—ढका ढकेलि = धक्का देकर । दाप = दर्प, अभिमान । चपरि = शीघ्रता से । चमू = सेना । चाउ = उमंग से । चाहिगो = देख गया । पाथनाथ = समुद्र । खिरिरि = खरोंच कर । खेह = धूल । पाइमाल जाहिगो = बर्बाद हो जाओगे ।

पद्यार्थ—तुमने उनके बांके दूत वीर हनुमान को देखा ही है, जिसने तुम्हारी सुन्दर लंका की गढ़ी को धक्का देकर गिरा दिया । कल ही (हाल ही में) बालि के बलशाली पुत्र ने क्रोध करके पैर रोपा और तुम्हारी सारी सेना का जोश देख गया । वही श्रीरामचन्द्रजी बन्दरों को साथ लेकर और समुद्र पर पुल बांधकर आ गए हैं । अब भागने से खरोच कर धूल फांकनी पड़ेगी । इसलिये, हे नाथ, अभिमान छोड़कर रामचन्द्र जी से मिलने की तैयारी कीजिये और उन्हें सीता जी को सौंप दीजिये । नहीं तो बर्बाद हो जाइयेगा ।

उदधि अपार उतरत नहिं लागी बार,
केसरी-कुमार सो अदंड कैसो डाँड़िगो ।
वाटिका उजारि अच्छ रच्छकनि मारि, भट
भारी भारी रावरे के चाउर-से काँड़िगो ॥

'तुलसी' तिहारे विद्यमान जुवराज आजु,
कोपि पाँव रोपि, वस कै, छोहाइ छाँड़िगो।
कहे कि न लाज, पिय ! अजहूँ न आए बाज,
सहित समाज गढ़ राँड़ कै सो भाँड़िगो ॥२४॥

शब्दार्थ—अदंड = जिसको दंड न दिया जा सके। डाँड़िगो = दंड देगया। काँड़िगो = कूट गया। छोहाइ = दया करके। बाज आए = छोड़ा। भाँड़िगो = देख गया।

पद्यार्थ—हनुमान को अथाह समुद्रको लांघने में भी देर न लगी और वह तुम्हारे ऐसे अदंड को भी दंड दे गया। वह तुम्हारे बाग़ को उजाड़ कर, अक्षयकुमार आदि राक्षसों को मार कर, तुम्हारे बड़े योद्धाओं को चावल की तरह कूट गया। आज ही (हाल ही में) तुम्हारे सामने ही अंगद ने क्रोध के साथ पांव रोपा और तुमको अधीन करके, तुम पर दया दिखलाकर छोड़ गया। हे स्वामी, मेरे कहने पर भी तुम्हें लाज नहीं आती। अब भी तुम अपनी करनी से बाज नहीं आते। तुम्हारे पास सब कुछ रहते हुए भी अंगद तुम्हारी लंका विधवा स्त्री के गढ़ की तरह अच्छी तरह से देखभाल कर चला गया।

अलंकार—उपमा।

जाके रोष दुसह त्रिदोष दाह दूरि कीन्हें,
पैयत न छत्री-खोज खोजत खलक में।
माहिषमती को नाथ साहसी सहसबाहु,
समर समर्थ, नाथ ! हेरिए हलक में॥
सहित समाज महाराज सो जहाजराज,
बूड़ि गयो जाके बलबारिधि-छलक में।
टूटत पिनाक के मनाक बाम राम से, ते
नाक बिनु भये भृगुनायक पलक में॥ २५॥

शब्दार्थ—त्रिदोष = वात, पित, कफ़ । माहिषमती = एक प्राचीन नगर जिसका राजा सहस्त्रबाहु था । हेरिए = देखिए, सोचिए । हलक = हृदय । मनाक = थोड़ा । नाक बिनु भये = (नाक कट गई, एक महावरा है), प्रतिष्ठाहीन हो गये ।

पद्यार्थ—हे स्वामी, अपने हृदय में विचार कीजिए कि, जिनका असह्य क्रोध सन्निपात से भी बढ़ गया था, जिसके मारे क्षत्री संसार में ढूँढने पर भी नहीं मिलते थे, जिसके बल रूपी समुद्र की लहर में जहाजरूपी माहिषमती का राजा, समरधीर सहस्त्रबाहु अपने समाज के साथ डूब गया, ऐसे समर्थ परशुराम जी धनुष के टूटने के कारण रामचन्द्र जी से कुछ नाराज़ हुए थे, (जिसके फलस्वरूप) वह क्षण मात्र में ही प्रतिष्ठारहित हो गये ।

अलंकार—रूपक ।

कीन्हीं छोनी छत्री बिनु, छोनिप-छपनहार,
कठिन कुठार-पानि बीर बानि जानि कै ।
परम कृपाल जो नृपाल लोकपालन पै,
जब धनु हाई ह्वैहै मन अनुमानि कै ।
नाक में पिनाक मिस बामता बिलोकि राम,
रोक्यो परलोक, लोक भारी भ्रम भानि कै ॥
नाइ दस माथ महि, जोरि बीस हाथ, पिय !
मिलिये पै नाथ रघुनाथ पहिचानि कै ॥ २६ ॥

शब्दार्थ—छोनी = पृथ्वी । छोनिप = राजा । छपनहार = मारने वाले । बीर बान = बीरता की आदत । नाक = नासिका, स्वर्ग । बामता = बाधक, टेढ़ापन । भानि कै = तोड़ कै । हाई = टूटा । ह्वै है = होकर के ।

पद्यार्थ—जिन्होंने पृथ्वी को क्षत्रियरहित कर दिया, ऐसे राजाओं का संहार करने वाले, तथा कठिन कुठार धारण करने वाले परशुराम को वीर स्वभाववाला जान कर, राजाओं और दिग्पालों पर बड़ी कृपा रखने वाले (क्षत्रिय-कुमार) श्री रामचन्द्र जी ने उनका अनिष्ट सोचकर और मन में यह विचार कर कि धनुष ही उनके स्वर्ग में बाधक होगा, धनुष तोड़ने के बहाने उनका परलोक नष्ट कर दिया; जिससे लोगों का (परशुराम के अजय होने का) भ्रम जाता रहा। हे स्वामी, ऐसे नाथ श्री रामचन्द्र जी को पहचान कर अपने दशों सिर झुका कर और बीसों हाथ को जोड़ कर उनसे मिलिये।

कह्यो मत मातुल बिभीषनहू बार बार,
आँचर पसारि, पिय, पाँइ लै लै हौं परी।
विदित बिदेहपुर, नाथ ! भृगुनाथगति,
समय सयानी कीन्हीं जैसी आइ गौं परी।
बायस, बिराध, खर, दूषन, कबंध, बालि,
बैर रघुवीर के न पूरी काहु की परी।
कंत बीस लोचन बिलोकिए कुमंत-फल,
ख्याल लंका लाई कपि राँड़ की सी झोपरी ॥ २७ ॥

शब्दार्थ—मातुल = मामा। समय सयानी = समयानुकूल। गौं = मौका। बायस = काग का भेष धारण करने वाला इन्द्र-पुत्र जयन्त। कुमंत = बुरी सलाह। लाई = आग लगादी। ख्याल = खेल।

पद्यार्थ—हे स्वामी, तुम्हारे मामा मारीच और तुम्हारे छोटे भाई विभीषण ने भी बार बार यही बात कही। मैं भी आँचर पसार कर (दीन होकर) तुम्हारे पैरों पड़ी। हे नाथ, परशुराम की जनकपुर में

जो दशा हुई वह तुम पर प्रगट ही है। जैसा उन्होंने मौका देखा वैसा ही उन्होंने काम किया। श्री रामचन्द्र जी से विरोध करने के कारण वायस वेषधारी जयन्त, विराध, खरदूषण, कबन्ध और वालि किसी का भी कल्याण न हुआ। हे स्वामी, आप स्वयं बीस आंखों से बुरी सलाह का फल देखिये। एक बन्दर ने आपकी सोने की लंका को रांड की झोंपड़ी की तरह तमाशा में ही जला डाला।

अलंकार—उपमा।

(सवैया)

राम सो साम किये नित है हित, कोमल काज न कीजिए टाँठे।
आपनि सूझि कहौं, पिय! बूझिए, जूझिबे जोग न ठाहरु नाठे॥
नाथ! सुनी भृगुनाथ-कथा, बलि बालि गयो चलि बात के साँठे।
भाइ बिभीषन जाइ मिल्यो प्रभु आइ परे सुनी सायर-काँठे॥२८॥

शब्दार्थ—साम = सन्धि। टाँठे = कठोरता। ठाहरु = स्थान। नाठे = नष्ट होना। बात के साँटे = हठ पकड़ने से। सायर-काँठे = समुद्र के किनारे।

पदार्थ—हे स्वामी, रामचन्द्र से मेल करने ही में आपकी सब तरह से भलाई है, ऐसे कोमल कार्य में कठोरता करना उचित नहीं। हे स्वामी, मैं अपनी समझ के अनुसार कहती हूँ, आप समझ जाइये। युद्ध करने का मौका नहीं है। युद्ध करने से अपना स्थान भी नष्ट हो जायगा। हे नाथ, आपने परशुराम की कथा सुनी ही है; बात की हठ पकड़ने से बली (बलवान) वालि भी मारा गया। तुम्हारा भाई विभीषण लंका छोड़ कर रामचन्द्र जी से जा मिला। मैंने सुना है कि रामचन्द्र समुद्र के किनारे भी आ गये हैं।

पालिबे को कपि-भालु-चमू जम काल करालहु को पहरी है।
लंक से बंक महागढ़ दुर्गम ढाहिबे दाहिबे को कहरी है॥
तीतर-तोम तमीचर-सेन समीर को सूनु बड़ो बहरी है।
नाथ भलो रघुनाथ मिले, रजनीचर-सेन हिये हहरी है॥ २९॥

शब्दार्थ—चमू = सेना। पहरी = पहरा देने वाला। ढाहिबो = गिराने के लिये। दाहिबे = जलाने के लिये। कहरी = क्रोधी। तीतर = एक पक्षी का नाम। तोम = समूह। तमीचर = राक्षस। समीर को सुनु = पवन का पुत्र, हनुमान। बहरी = बाज, एक शिकारी पक्षी। हहरी है = भयभीत हो गई है।

पद्यार्थ—भयंकर यम और काल के समान हनुमानजी बन्दर और भालुओं की सेना की रक्षा करने के लिये पहरेदार के समान हैं; लंका के समान विकट (टेढ़े मेढ़े) और दुर्गम गढ़ को गिराने और जलाने के लिये बड़े ही क्रोधी हैं; तथा राक्षस-सेना रूपी तीतर-समूह को नष्ट करने के लिये शिकारी बाज पक्षी की तरह हैं। हे नाथ, (उनके बल का विचार करके) राक्षसों की सारी सेना डर गई है, अतः श्री रामचन्द्र जी से मेल करने ही में तुम्हारी भलाई है।

अलंकार—उल्लेख।

(कवित्त)

रोष्यो रन रावन, बोलाए बीर बानइत,
जानत जे रीति सब संजुक समाज की।
चली चतुरंग चमू, चपरि हने निसान,
सेना सराहन जोग रातिचर-राज की॥

'तुलसी' विलोकि कपि भालु किलकत,
ललकत लखि ज्यों कँगाल पातरी सुनाज की।
राम-रुख निरखि हरषे हिय हनुमान,
मानों खेलवार खोली सीसताज वाज की॥ ३०॥

शब्दार्थ—वीर बानइत = युद्ध के लिये तैयार योद्धा। संजुग =, युद्ध। चपरि = फुर्ती से। पातरी = पत्तल। ललकत = लालायित होते हैं। खेलवार = शिकारी। सीसताज = टोपी।

पदार्थ—रावण क्रुद्ध हो गया, उसने युद्ध के लिये योद्धाओं को जो लड़ाई की सब रीतियों से परिचित थे, बुलाया। चतुरंगिणी सेना चली, नगाड़ों पर चोटें पड़ने लगीं। रावण की सेना सराहने योग्य थी। तुलसीदास जी कहते हैं कि उस सेना को देख कर बन्दर और भालु किलकारी मारने लगे और उनको देख कर मारने के लिये इस प्रकार इच्छा करने लगे जिस प्रकार पत्तल में रखे हुए सुन्दर तथा स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ को देख कर दरिद्र (खाने के लिये) तरसने लगता है। हनुमान जी रामचन्द्र जी की युद्ध करने की इच्छा को देखकर इस प्रकार हृदय में प्रसन्न हुए जिस प्रकार शिकारी द्वारा वाज के सिर की टोपी हटाए जाने पर वाज (अपने सामने शिकार देखकर) प्रसन्न होता है।

अलंकार—उदाहरण और उत्प्रेक्षा।

साजिकै सनाह गजगाह सउछाह दल,
महाबली धाये वीर जातुधान धीर के।
इहाँ भालु बंदर विसाल मेरु मंदर से,
लिये सैल साल तोरि नीरनिधि-तीर के॥

'तुलसी' तमकि ताकि भिरे भारी जुद्ध क्रुद्ध,
सेनप सराहैं निज निज भट भीर के।
रुंडन के झुंड झूमि-झूमि झुकरे से नाँचैं,
समर सुमार सूर मारे रघुबीर के॥ ३१॥

शब्दार्थ—सनाह = कवच। गजगाह = हाथी के पीठ पर रखने का झूल। साल = वृक्ष। रुंड = बिना सर का धड़। झूमि झूमि = झोंके से। झुकरे से = जले हुए, झुँझलाये हुए। सुमार = कठिन चोट।

पद्यार्थ—धैर्यवान रावण की महाबलशाली वीरों की सेना कवच पहन कर और हाथियों पर झूलें कसकर लड़ाई करने के लिये दौड़ी। इधर रामचन्द्र जी की ओर मंदराचल पर्वत के समान विशाल वन्दर और भालु समुद्र के किनारे पर के पेड़ और पहाड़ के चट्टानों को (उखाड़ कर) लिये हुए थे। तुलसीदासजी कहते हैं कि दोनों ओर की सेनाएँ क्रोधित हो कर झपाटे से एक दूसरे से भिड़ती हैं। सेनापति लोग अपनी अपनी सेना के वीरों की प्रशंसा करते हैं। लड़ाई के मैदान में रामचन्द्र जी के कठिन आघातों द्वारा कटे हुए योद्धाओं के झुँझलाये हुए धड़ झूम झूम कर नाचने लगे।

अलंकार—उपमा।

(सवैया)

तीखे तुरंग कुरंग सुरंगनि साजि चढ़े छँटि छैल छबीले।
भारी गुमान जिन्हैं मन में, कबहूँ न भये रन में तनु ढीले॥
'तुलसी' गज-से लखि केहरि लौं झपटे-पटके सब सूर सलीले।
भूमि परे भट घूमि कराहत, हाँकि हने हनुमान हठीले॥ ३२॥

शब्दार्थ—तुरंग = घोड़े। कुरंग = हिरण। छँटे = चुने हुए। सलीले = खेल में।

पद्यार्थ—जिन राक्षसों के मन में अपने बल का बड़ा अभिमान था, जिनके शरीर युद्धक्षेत्र में कभी शिथिल नहीं हुए, वे हिरण के समान तीव्रगामी तथा सुन्दर रंगवाले घोड़ों को सजाकर उन पर सवार हुए। तुलसीदास जी कहते हैं कि हनुमान जी उनको हाथीदल के समान समझ कर सिंह की तरह ललकारते हुए उन पर टूट पड़े और उन सूरों को खेलवाड़ ही में झपट कर पटक कर मार डाला। वे वीर चक्कर खाकर कराहते हुए ज़मीन पर गिर पड़े।

अलंकार—उपमा।

सूर सँजोइल साजि सुवाजि, सुसेल धरे बगमेल चले हैं।
भारी भुजा भरी, भारी सरीर, बली बिजयी सब भाँति भले हैं॥
'तुलसी' जिन्हैं धाये धुकै धरनीधर, धौर धकानि सों मेरु हले हैं।
ते रन-तीर्थनि लक्खन लाखन-दानि ज्यों दारिद दाबि दले हैं॥३३॥

शब्दार्थ—सँजोइल = सुसज्जित होकर। सुसेल = सुन्दर साँग। बगमेल = कतार। धुकै = दलकते हैं। धरनीधर = शेषनाग। धौर धकानि = दौड़ के धक्कों से।

पद्यार्थ—रावण के योद्धा सुसज्जित हो, सुन्दर घोड़ों को सजाकर, सांग को हाथ में धारण किये हुए पंक्ति बांध कर चले। उनकी भुजाएँ विशाल और भरी हुई हैं, उनका शरीर भारी है, सभी विजयी, बली और सब तरह से अच्छे हैं, जिनके दौड़ने से शेषनाग दलक उठते हैं और दौड़ के धक्कों से पहाड़ हिल उठते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि उन वीरों को लक्ष्मण जी ने रणभूमि में इस तरह से मार डाला

जिस प्रकार कोई दानी पुरुष किसी तीर्थस्थान में लाखों रुपये दान करके दरिद्रों की दरिद्रता को नष्ट कर देता है।

अलंकार—उदाहरण।

गहि मंदर बंदर भालु चले सो मनो उनये घन सावन के।
'तुलसी' उत झुंड प्रचंड झुके, झपटैं भट जे सुरदावन के॥
बिरुझे बिरुदैत जे खेत अरे, न टरे हठि बैर बढ़ावन के।
रन मारि मची उपरी-उपरा, भले बीर रघुप्पति रावन के॥ ३४॥

शब्दार्थ—उनये = उमड़ आए। सुरदावन = देवताओं को दमन करने वाला, रावण। बिरुझै = भिड़ गये। बिरुदैत = प्रसिद्ध। उपरी-उपरा = चढ़ा ऊपरी।

पद्यार्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि इधर से बन्दर और भालु पहाड़ों को ले ले कर चले मानों सावन की घटा उमड़ आई हो। उधर से रावण के विकट योद्धाओं का समूह झपटा। हठपूर्वक बैर बढ़ाने वाले प्रसिद्ध योद्धा जो रणभूमि में डटे हुए थे एक दूसरे से भिड़ गये और वहां से नहीं टले। रामचन्द्र और रावण के योद्धाओं में चढ़ा ऊपरी और मारकाट होने लगी।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

सर तोमर सेल समूह पँवारत, मारत बीर निसाचर के।
इतते तरु ताल तमाल चले, खर खंड प्रचंड महीधर के॥
'तुलसी' करि केहरि-नाद भिरे भट खग्ग खगे, खपुवा खरके।
नख दंतन सों भुजदंड बिहंडत, रुंड सों मुंड परे झर के॥ ३५॥

शब्दार्थ—तोमर = बर्छा। पँवारत = फेंकते हैं। ताल = ताड़। खर = तीक्ष्ण। खग्ग = तलवार। खगे = धँस गये। खपुआ = कायर। खरके = भाग गए। बिहंडत = काटते हैं। झरके = झड़ कर, कट कर।

पद्यार्थ—एक ओर से रावण के योद्धा बाण, बर्छा और सांग के समूह फेंक कर मारते हैं। दूसरी ओर से ताड़, तमाल आदि के पेड़ और पहाड़ों के बड़े तेज़ तेज़ टुकड़े चलते थे। तुलसीदास जी कहते हैं कि योद्धा लोग सिंह की तरह गर्जते हुए भिड़ गये, तलवारें (एक दूसरे के शरीर में) धसने लगीं (जिसको देख कर) कायर लोग भाग खड़े हुए। (वन्दर और भालु) नखों और दांतों से राक्षसों की भुजाओं को काट देते हैं और उनके सर को धड़ से अलग कर देते हैं।

अलंकार—विभावना।

रजनीचर मत्तगयंद घटा विघटै मृगराज के साज लरै।
झपटैं, भट कोटि मही पटकै, गरजै रघुबीर की सौंह करै॥
'तुलसी' उत हाँक दसानन देत, अचेत भे बीर, को धीर धरै?
बिरझो रन मारुत को बिरुदैत, जो कालहु काल सो बूझि परै॥३६॥

शब्दार्थ—घटा = समूह। विघटै = नष्ट करते हैं। मृगराज के साज = सिंह की तरह।

पद्यार्थ—मतवाले हाथी की तरह राक्षसों की सेना को हनुमान जी सिंह के समान लड़कर नष्ट करते हैं। वह झपट कर करोड़ों वीरों को पृथ्वी पर पटक देते हैं और गरज कर रामचन्द्र जी की सौगन्ध खाते हैं। उधर से रावण ललकारता है जिसे सुनकर (वन्दर) बेहोश हो जाते हैं। भला ऐसा कौन है जो (उसकी ललकार सुन कर) धैर्य धारण कर सकता है। यशस्वी हनुमानजी, जो काल के लिये भी काल के समान थे, उससे भिड़ गये।

अलंकार—उपमा।

जे रजनीचर बीर बिसाल कराल बिलोकत काल न खाए।
ते रनरौर कपीस-किसोर बड़े बरजोर, परे फँग पाए॥
लूम लपेटि अकास निहारि कै हाँकि हठी हनुमान चलाए।
सूखि गे गात चले नभ जात, परे भ्रम-बात न भूतल आए॥ ३७॥

शब्दार्थ—रनरौर = भयंकर युद्ध। फँग = फंदा। लूम = पूँछ। भ्रमबात = हवा का चक्र।

पद्यार्थ—जिन बड़े बड़े और भयंकर राक्षसों को देख कर काल की भी हिम्मत खाने की न हुई, उनको हनुमान जी ने भयानक युद्ध में अपने पंजे में फँसा हुआ पाया। उन्होने उन राक्षसों को अपनी पूँछ में लपेट कर और आकाश की ओर देखकर हठी हनुमान जी ने ललकारते हुए आकाश में फेंक दिया। आकाश में उड़ते हुए उनके शरीर (भय से) सूख गये और वे हवा के बवंडर में पड़ कर (ऊपर ही नाचने लगे) नीचे न आ सके।

जो दससीस महीधर-ईस को, बीस भुजा खुलि खेलन हारो।
लोकप दिग्गज दानव देव सबै सहमैं सुनि साहस भारो॥
बीर बड़ो बिरुदैत बली, अजहूँ जग जागत जासु पँवारो।
सो हनुमान हनी मुठिका, गिरिगो गिरिराज ज्यों गाज को मारो॥३८॥

शब्दार्थ—ईश को महीधर = शिव जी का पहाड़, कैलाश। सहमैं = डर जाता है। पँवारो = वीर गाथा। गाज = बिजली वज्र।

पद्यार्थ—जिस रावण ने अपनी बीसों भुजाओं से कैलाश पर्वत के साथ खुल कर खेल किया (उठा लिया), जिसके बड़े भारी साहस को सुनकर लोकपाल, दिग्पाल, राक्षस, देवता सभी डर जाते हैं, जिसकी

वीरता की कथा सभी संसार के लोग जानते हैं, उस बलशाली और यशस्वी वीर, रावण को हनुमान जी ने मुक्के से मारा। मुक्के के लगते ही रावण इस प्रकार गिर पड़ा जिस प्रकार वज्र का मारा हुआ पर्वत गिर पड़ता है।

अलंकार—उदाहरण।

दुर्गम दुर्ग, पहार तें भारे, प्रचंड महा भुजदंड बने हैं।
लक्ख में पक्खर तिक्खर तेज जे सूर-समाज में गाज गने हैं॥
ते बिरुदैत बली रन-बाँकुरे हाँकि हठी हनुमान हने हैं।
नाम लै राम दिखावत बंधु को, घूमत घायल घाय घने हैं॥३६॥

शब्दार्थ—लक्ख में पक्खर = लाखों सैनिकों की कवच की तरह रक्षा करने वाले, बड़े वीर। तिक्खर तेज = तेजस्वी से तेजस्वी। गाज गने हैं = वज्र की तरह गिने जाते हैं। घने = अनेकों।

पद्यार्थ—जो अगम्य किलों की भांति अजित हैं, जो पहाड़ से भी बड़े हैं, जिनकी भुजाएँ बहुत ही बलशाली हैं, जो लाखों सैनिकों की कवच की तरह रक्षा करने वाले हैं। जो योद्धाओं के समूह को वज्र की तरह नष्ट करने वाले हैं, उन्हीं यशस्वी, बलवान, और रण-कुशल राक्षसों को हनुमानजी ने ललकार कर मार डाला। रामचन्द्र जी उनका नाम लेकर लक्ष्मण जी को दिखाते हैं कि ये जो बहुत घावों से घायल वीर घूमते हैं, हनुमान जी के मारे हुए हैं।

अलंकार—रूपक।

(कवित्त)

हाथिन सों हाथी मारे, घोरे घोरे सों सँहारे,
रथनि सों रथ बिदरनि, बलवान की।
चंचल चपेट चोट चरन चकोट चाहैं,
हहरानी फौजें भहरानी जातुधान की॥

बार बार सेवक-सराहना करत राम,
'तुलसी' सराहै रीति साहेब सुजान की।
लाँबी लूम लसत लपेटि पटकत भट,
देखौ देखौ, लषन ! लरनि हनुमान की ॥ ४० ॥

शब्दार्थ—बिदरनि = तोड़ना। चपेट = थप्पड़। चकोट = नोंचना। भहरानी = भाग गईं।

पद्यार्थ—बली हनुमान जी ने हाथियों को हाथियों से और घोड़ों को घोड़ों से मार डाला और रथों पर रथों को पटक कर उन्हें तोड़ डाला। उनके चंचल थप्पड़ की चोट और पैरों से नोंचने के कारण रावण की सेना डर कर भाग गई। रामचन्द्र जी अपने सेवक हनुमान की बारंबार सराहना करते हैं और लक्ष्मण जी से कहते हैं कि ज़रा हनुमान का लड़ना तो देखो ! वह अपनी लंबी पूँछ में योद्धाओं को लपेट कर पटकते हुए कितने अच्छे लगते हैं। तुलसीदास अपने स्वामी की (सेवक की प्रशंसा करने की) रीति की सराहना करते हैं।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

दबकि दबोरे एक, बारिधि में बोरे एक,
मगन मही में एक गगन उड़ात हैं।
पकरि पछारे कर, चरन उखारे एक,
चीरि फारि डारे, एक मींजि मारे लात हैं॥
'तुलसी' लखत राम, रावन बिबुध, बिधि,
चक्रपानि, चंडीपति, चंडिका सिहात हैं।
बड़े बड़े बानइत बीर बलवान बड़े,
जातुधान जूथन निपाते बातजात हैं॥ ४१ ॥

शब्दार्थ—दबकि = दबककर, झुक करके। दबोरे = दबोच बोरे = डुबा दिया। मगन = समा गया। विबुध = देवता। विधि = ब्रह्मा। चक्रपानि = हाथ में सुदर्शनचक्र धारण करने वाले, विष्णु भगवान। चंडीपति = शिव। चंडिका = काली। सिहात हैं = चकित होते हैं। निपाते = मार डाले। वातजात = पवनपुत्र, हनुमान।

पद्यार्थ—हनुमान जी ने किसी को दबक कर दबोच लिया, किसी को पकड़कर समुद्र में डुबा दिया, किसी को पृथ्वी में धँसा दिया, और किसी को आकाश में फेंक दिया, किसी को पकड़ कर पटक दिया, किसी के हाथ पैर उखाड़ डाले, किसी को चीर फाड़ डाला और किसी को लातों से मार मार कर मसल दिया। तुलसीदास जी कहते हैं कि हनुमान जी ने बड़े बड़े योद्धाओं और सेनापतियों को मार डाले। यह देख कर राम, रावण, देवता, ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा काली आश्चर्य करने लगे।

प्रबल प्रचंड बरिबंड बाहुदंड बीर,
धाए जातुधान हनुमान लियो घेरि कै।
महाबल-पुंज कुंजरारि ज्यों गरजि भट,
जहाँ तहाँ पटके लँगूर फेरि फेरि कै॥
मारे लात, तोरे गात, भागे जात, हाहा खात,
कहैं 'तुलसीस राखि राम की सौं' टेरि कै।
ठहर ठहर परे कहरि कहरि उठैं,
हहरि हहरि हर सिद्ध हँसे हेरि कै॥ ४२॥

शब्दार्थ—बरिबंड = बलवान। हाहा खात = हाय हाय करते हैं। हेरि कै = देख करके।

पदार्थ—बड़े प्रचण्ड और बलशाली राक्षस वीरों ने चारों तरफ़ से दौड़ कर हनुमान जी को घेर लिया। महाबलशाली हनुमान जी सिंह की तरह गरजे और पूँछ घुमाकर योद्धाओं को इधर उधर पटक दिया। उन्हें लातों से मार मार कर उनके शरीर को तोड़ दिया। राक्षस हाय हाय करते हुए भागने लगे और कहने लगे 'तुम्हें राम की सौगन्ध है' हम लोगों की रक्षा करो। वह स्थान स्थान पर पड़े हुए कराहते हैं। उन्हें देख कर महादेव और सिद्ध खिलखिला कर हँसते हैं।

अलंकार—उपमा।

जाकी बाँकी बीरता सुनत सहमत सूर,
  जाकी आँच अजहूँ लसत लंक लाह सी।
सोई हनुमान बलवान बाँके बानइत,
  जोहि ज़ातुधान-सेना चले लेत थाह सी॥
कंपत अकंपन, सुखाय अतिकाय काय,
  कुंभऊकरन आइ रह्यो पाइ आह सी।
देखे गजराज मृगराज ज्यों गरजि धायो,
  बीर रघुबीर को समीरसूनु साहसी॥ ४३॥

शब्दार्थ—जोहि=देखकर। आहसी पाइ रह्यो=आह करके रह गया, दुखी हुआ।

पदार्थ—जिसकी प्रचण्ड वीरता को सुनकर बड़े बड़े वीर डर जाते हैं, जिनकी लगाई हुई आग की आंच से लंका अब भी लाह की तरह पिघल रही है, वही बलवान और वीरता का बाना धारण करने वाले हनुमान राक्षसों की सेना को देख कर उनकी थाह लेते हुए चले। उनको देख कर अकंपन भी कांप उठा, अतिकाय का शरीर भी सूख

गया, और कुंभकरण भी केवल आह करके रह गया (कुछ न कर सका)। रामचन्द्र जी का वीर, पवन का साहसी पुत्र हनुमान उनको देखकर इस प्रकार टूट पड़ा जिस प्रकार सिंह हाथियों को देख कर उन पर टूट पड़ता है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा और उदाहरण।

(झूलना छंद)

मत्तभट-मुकुट-दसकंध-साहस-सइल-
सृंग-विद्दरनि जनु बज्रटाँकी।
दसन धरि धरनि चिक्करत दिग्गज कमठ,
सेष संकुचित, संकित पिनाकी।
चलित महि मेरु, उच्छलित सायर सकल,
विकल विधि बधिर दिसि विदिसि झाँकी।
रजनिचर-घरनि घर गर्भ-अर्भक स्रवत,
सुनत हनुमान की हाँक बाँकी ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ—मत्तभट = मतवाले योद्धा। मुकुट = शिरोमणि। साहस-सइल-सृंग = पहाड़ की चोटी के समान जिसका साहस हो अर्थात् अत्यन्त साहसी। विद्दरनि = फाड़ने के लिये। बज्रटाँकी = पत्थर फोड़ने की छेनी। पिनाकी = शिव। अर्भक = बच्चा।

पद्यार्थ—हनुमान जी की प्रचण्ड ललकार को जो मतवाले योद्धाओं में शिरोमणि रावण के साहस रूपी पहाड़ की चोटी को चूर्ण करने के लिये वज्र की टांकी के समान है, सुनकर दिशाओं के हाथी पृथ्वी को दांतों से पकड़ कर चिंघाड़ने लगे, कच्छप और शेषनाग डर के मारे दबक गये, महादेव जी शंकित हो उठे, पृथ्वी और मेरु पर्वत हिलने

लगे, सभी समुद्र उछलने लगे, और ब्रह्मा व्याकुल और घबड़े होकर चारों तरफ देखने लगे। राक्षसों की गर्भवती स्त्रियों के बच्चे गिरने लगे।

अलंकार—उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति।

कौन की हाँक पर चौंक चंडीस, बिधि,
 चंडकर थकित फिरि तुरँग हाँके।
कौन के तेज बलसीम भट भीम से
 भीमता निरखि कर नयन ढाँके॥
दास तुलसीस के बिरुद बरनत बिदुष,
 बीर बिरुदैत बर बैरि धाँके।
नाक नरलोक पाताल कोउ कहत किन
 कहाँ हनुमान से बीर बाँके॥ ४५॥

शब्दार्थ—चंडकर = सूर्य। बिदुष = पण्डित। धाँके = धाक जमा ली। नाक = स्वर्ग।

पद्यार्थ—शिव और ब्रह्मा, किसकी ललकार पर चौंक पड़ते हैं? किसकी ललकार को सुनकर सूर्य अपने स्थिर घोड़ों को फिर से हांकते हैं? किसके तेज की भयंकरता को देख कर भीम के समान अत्यन्त बलशाली योद्धा ने भी अपनी आंखें मूँद लीं? तुलसीदास के स्वामी हनुमान जी के यश का बखान विद्वान तक करते हैं। उन्होंने अपनी वीरता की धाक बड़े बड़े यशस्वी वीरों और बलवान शत्रुओं पर भी जमा दी। स्वर्ग लोक, मर्त्यलोक और पाताल में हनुमान के समान कौन सा वीर है? कोई क्यों नहीं बतलाता?

अलंकार—लुप्तोपमा।

जातुधानावली-मत्त-कुंजर-घटा
निरखि मृगराज जनु गिरि तें टूट्यो।
विकट चटकन चपट, चरन गहि पटकि महि,
निघटि गए सुभट, सत सबको छूट्यो।
'दासतुलसी' परत धरनि, धरकत झुकत,
हाट सी उठति जंबुकनि लूट्यो।
धीर रघुबीर को बीर रन-बाँकुरो
हाँकि हनुमान कुलि कटक कूट्यो॥ ४६॥

शब्दार्थ—जातुधानावली=राक्षसों का समूह। निघटि गए=नष्ट हो गये। सत=प्राण। जंबुकनि=सियार। कुलि=सम्पूर्ण।

पद्यार्थ—मतवाले हाथियों के समान राक्षसों के समूह को देखकर हनुमान जी पर्वत पर से सिंह की तरह गरजते हुए टूट पड़े। उनके कठिन थप्पड़ों की मार और पैर पकड़ कर पृथ्वी पर घसीटने से योद्धाओं के प्राण निकल गए, वे नष्ट हो गए। तुलसीदास जी कहते हैं कि सब राक्षस पृथ्वी पर गिर पड़े और डरते हुए झुक गए। बाजार उठने के समय जैसी गड़बड़ी फैल जाती है, (और चोर वगैरः बाजार लूटने लगते हैं) वैसे ही सियारों ने लूट मचा दी। धैर्यशाली रामचन्द्र जी के वीर रणबांकुड़े हनुमान ने ललकार कर रावण की सारी सेना को नष्ट कर दिया।

अलंकार—रूपक और उत्प्रेक्षा।

(छप्पय)

कतहुँ विटप भूधर उपारि परसेन बरक्खत।
कतहुँ बाजि सों बाजि मर्दि, गजराज करक्खत।

चरन चोट चटकन चकोट अरि उर सिर बज्जत।
बिकट कटक बिद्दरत बीर बारिद जिमि गज्जत।
लंगूर लपेटत पटकि भट, 'जयति राम जय' उच्चरत।
तुलसीस पवन-नंदन अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ—बरक्खत = वर्षा करते हैं। मर्दि = मींज कर, मसल कर। करक्खत = खींचते हैं। गज्जत = गरजते हैं।

पद्यार्थ—हनुमान जी कहीं पर पेड़ों की डाल तोड़कर और पहाड़ों की चट्टान लेकर शत्रु सेना पर प्रहार करते हैं, कहीं घोड़े को घोड़े पर पटक कर मसल देते हैं, और हाथियों को खींचते हुए चले जाते हैं, कहीं लातों की मार, थप्पड़ और नखों की खरोंच शत्रु की छाती और सिर पर पड़ती हैं। कहीं पर बादल की तरह गरजते हुए वीर हनुमान जी राक्षसों की भयंकर सेना का संहार करते हैं, कहीं पर योद्धाओं को पटक कर उन्हें अपनी पूँछ में लपेट कर रामचन्द्र जी की जय जयकार करते हैं। तुलसीदास के स्वामी और पवन के पुत्र हनुमान युद्ध में अटल होकर इस प्रकार कौतुक करते हैं।

अलंकार—पूर्णोपमा।

(कवित्त)

अंग अंग दलित ललित फूले किंसुक से,
हने भट लाखन लखन जातुधान के।
मारि कै पछारि कै उपारि भुजदंड चंड,
खंड खंड डारे ते बिदारे हनुमान के ॥
कूदत कबंध के कदंब बंब सी करत,
धावत दिखावत हैं लाघौ राघौ बान के।

'तुलसी' महेस, विधि, लोकपाल, देवगन
देखत विमान चढ़े कौतुक मसान के ॥४८॥

शब्दार्थ—दलित = घायल। ललित = लाल। किंसुक = पलाश। कबंध = सिर रहित धड़। कदंब = समूह। लाघौ = शीघ्रता।

पदार्थ—लाखों योद्धा जिनके प्रत्येक अंग चोट लगने के कारण घायल हो गए हैं और जो ख़ून से सने होने के कारण फूले हुए पलाश की तरह लाल दिखाई पड़ते हैं, लक्ष्मण के मारे हुए हैं। जो राक्षस पटक कर मार डाले गए हैं और जिनकी प्रचण्ड भुजाएँ उखाड़ कर टुकड़े टुकड़े कर दी गई हैं, वे हनुमान के मारे हुए हैं। जो सिर रहित धड़ों के समूह बं बं करते हुए कूदते और दौड़ते हैं वे रामचन्द्र जी के बाणों की शीघ्रता को सूचित करते हैं। अर्थात वे रामचन्द्र जी के मारे हुए हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि महादेव, ब्रह्मा, लोकपाल और देवतागण विमान पर चढ़कर इस रणभूमि रूपी स्मशान का तमाशा देखते हैं।

अलंकार—उपमा और उत्प्रेक्षा।

लोथिन सों लोहू के प्रवाह चले जहाँ तहाँ,
मानहुँ गिरिन गेरु-झरना झरत हैं।
सोनित-सरित घोर, कुंजर करारे भारे,
कूल तें समूल बाजि-विटप परत हैं॥
सुभट सरीर नीरचारी भारी भारी तहाँ,
सूरनि उछाह, कूर कादर डरत हैं।
फेकरि फेकरि फेरु फारि फारि पेट खात,
काक कंक बकुल कोलाहल करत हैं॥४९॥

शब्दार्थ—लोथिन = लाश। नीरचारी = जलचर। फेकरि फेकरि = चिल्ला चिल्ला कर। फेरु = सियार। कंक = गिद्ध। कूल = किनारा।

पद्यार्थ—जहां तहां लाशों से जो ख़ून के सोते बह रहे हैं वे गेरु पर्वत के झरने से जान पड़ते हैं। इस ख़ून की भयंकर नदी के बड़े बड़े हाथी किनारे हैं, और किनारों से वृक्ष रूपी घोड़े जड़ सहित गिर पड़ते हैं, योद्धाओं के भारी शरीर (जो उस धारा में बह रहे हैं) बड़े बड़े जलचरों के समान हैं। (इस भयंकर नदी को देख कर) सूर लोग/उत्साह से भर जाते हैं किन्तु कायर भयभीत हो जाते हैं। सियार चिल्लाते हुए लाशों का पेट फाड़ फाड़ कर खाते हैं और कौए, गिद्ध और बगुले कोलाहल करते हैं।

अलंकार—रूपक और उत्प्रेक्षा।

ओझरी की झोरी काँधे, आँतनि की सेल्ही बाँधे,
मूँड़ के कमंडलु, खपर किये कोरि कै।
जोगिनी झुटुंग झुंड झुंड बनीं तापसी-सी,
तीर तीर बैठीं सो समर सरि खोरि कै॥
सोनित सों सानि सानि गूदा खात सतुआ से,
प्रेत एक पियत बहोरि घोरि घोरि कै।
'तुलसी' बैताल भूत साथ लिए भूतनाथ,
हेरि हेरि हँसत हैं हाथ हाथ जोरि कै॥५०॥

शब्दार्थ—ओझरी = पेट का वह भाग जिसमें आँतें रहती हैं। सेल्ही = सिर पर बाँधने के रेशमी वस्त्र को कहते हैं। कोरि कै = खुरच कर। झुटंग = एक प्रकार की योगिनी। खोरि कै = स्नान करके। भूतनाथ = शिवजी।

पद्यार्थ—झुंड के झुंड योगिनी और झुटुंग ओझरी की झोली कंधे पर लटकाए हुए और आंतों की सेल्ही सिर पर बांधे हुए और खोपड़ी का कमण्डल और उसी को खुरच कर खप्पर बना कर इस

युद्ध भूमि की नदी में नहा कर किनारे पर बैठी हुई तपस्विनी की तरह जान पड़ती हैं। कोई प्रेत गूदे को ख़ून से सान सान कर सतुआ की तरह खा रहा है और कोई उसे शर्बत की भांति घोल घोल कर बार बार पीता है। तुलसीदास जी कहते हैं कि शिव जी बैताल और भूतों को साथ लिए हुए एक दूसरे का हाथ पकड़ कर इस दृश्य को देख देख कर हँस रहे हैं।

अलंकार—उपमा।

(सवैया)

राम-सरासन तें चले तीर, रहे न सरीर, हड़ावरि फूटी।
रावन धीर न पीर गनी, लखि लै कर खप्पर जोगिनि जूटी॥
सोनित छींटि-छटानि-जटे 'तुलसी' प्रभु सोहैं, महाछवि छूटी।
मानो मरकत-सैल बिसाल में फैलि चली वर बीरबहूटी। ५१।

शब्दार्थ—हड़ावरि = हड्डी। छींटिछटानिजटे = बूंदों की शोभा से युक्त। मरकत-सैल = मरकत मणि का पहाड़। बीरबहूटी = एक लाल कीड़ा जो बरसात के दिनों में पाया जाता है।

पद्यार्थ—रामचन्द्र जी के धनुष से छूटे हुए बाण (रावण के) शरीर में रुकते नहीं, बल्कि हड्डी को फोड़ कर बाहर निकल जाते हैं। धैर्यशाली रावण ने इस पीड़ा पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इसे देखकर योगिनी खप्पर ले ले कर वहां इकट्ठा हो गईं। तुलसीदास जी कहते हैं कि (रावण के) ख़ून की बूंदों से युक्त रामचन्द्र जी के शरीर की शोभा ऐसी जान पड़ती है मानों मरकत मणि के बड़े भारी पहाड़ पर सुन्दर बीर बहूटियां फैली हुई हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

(मनहरण कवित्त)

मानी मेघनाद सों प्रचारि भिरे भारी भट,
आपने अपन पुरुषारथ न ढील
घायल लषन लाल लखि बिलखाने राम,
भई आस सिथिल जगन्निवास-दील की ॥
भाई को न मोह, छोह सीय को न, तुलसीस
कहैं "मैं बिभीषन की कछु न सबील की" ।
लाज बाँह बोले की, नेवाजे की सँभार सार,
साहेब न राम से, बलैया लेउँ सील की ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ—छोह = दया । सबील = प्रयन्त्र । बाँह बोले की = बाँह पकड़ने की, शरण में लेने की । नेवाजे की = शरण में आए हुए की ।

पदार्थ—मेघनाद ऐसे बड़े बड़े अहंकारी योद्धा ललकार कर भिड़ पड़े । उनमें से किसी ने अपनी शक्ति भर उठा न रखा । (मेघनाद द्वारा अपने भाई) लक्ष्मण को घायल देख कर रामचन्द्र जी रोने लगे और उनकी दिल की आशाओं पर पानी फिर गया । वे कहने लगे 'न तो मुझे भाई (के मरने) का मोह है, न सीता जी के लिये ही दया है, केवल मुझे इस बात का दुख है कि मैंने विभीषण के लिये कुछ भी प्रबन्ध न किया । तुलसीदास जी कहते हैं कि बांह पकड़ने की लज्जा रखने वाला और शरणागत की चिन्ता करने वाला रामचन्द्र जी से बढ़ कर कोई दूसरा स्वामी नहीं है । ऐसे शीलस्वभाव की मैं बलि जाता हूँ ।

अलंकार—उपमा ।

(सवैया)

कानन बास, दसानन सो रिपु, आनन श्री ससि जीति लियो है।
बालि महाबलसालि दल्यो, कपि पालि, बिभीषन भूप कियो है॥
तीय हरी, रन बंधु परयौ, पै भरयौ सरनागत-सोच हियो है।
बाँह-पगार उदार कृपालु, कहाँ रघुबीर-सो बीर बियो है ? ॥५३॥

शब्दार्थ—बाँह-पगार=जिनकी भुजाएँ शरणागतों की रक्षा करने के लिये चहारदीवारी की तरह हैं। बियो=दूसरा।

पद्यार्थ—रामचन्द्र जी को जंगल में रहना पड़ता है, उनके सिर पर रावण जैसा प्रबल शत्रु है, इतने पर भी उनके मुख की शोभा ने चन्द्रमा को जीत लिया है। उन्होंने महाशक्तिशाली बालि को मार कर सुग्रीव की रक्षा की है और विभीषण को राजा बनाया है। उनकी स्त्री हरी जा चुकी है, भाई रणक्षेत्र में घायल पड़ा है, पर इन सब की चिन्ता न कर उनका हृदय शरणागत के लिये चिन्तित है। शरणागतों की रक्षा के लिये जिनकी भुजाएँ चहारदीवारी के समान हैं ऐसे उदार और दयालु श्रीरामचन्द्र जी के समान दूसरा वीर कौन है ?

अलंकार—उपमा।

लीन्हों उखारि पहार बिसाल, चल्यो तेहि काल, बिलंब न लायो।
मारुतनंदन मारुत को, मन को, खगराज को बेग लजायो॥
तीखी तुरा 'तुलसी' कहतो, पै हिये उपमा को समाउ न आयो।
मानो प्रतच्छ परब्बत की नभ लीक लसी कपि यों धुकि धायो॥५४॥

शब्दार्थ—तुरा (सं० त्वरा)=वेग। पै=परन्तु। धुकिधायो=फुर्ती से दौड़े।

पद्यार्थ—(लक्ष्मण जी की मूर्छा दूर करने को संजीवनी बूटी ढूँढ़ने के लिए गए हुए हनुमान जी ने शीघ्रता में बूटी न मिलने के कारण) बड़े भारी धौलागिरि पर्वत को उखाड़ लिया और शीघ्र ही वहां से चल पड़े, ज़रा भी विलम्ब न किया। उन्होंने अपने वेग से हवा, मन तथा गरुड़ के वेग को भी लज्जित कर दिया। तुलसीदास इस अत्यन्त तीव्र चाल का वर्णन करते, किन्तु उनके दिल में कोई उपमा ही नहीं सूझती है। हनुमान जी आकाश में इस वेग से दौड़े मानों आकाश में पहाड़ की लकीर खींची हुई हो।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

(कवित्त)

चल्यो हनुमान सुनि जातुधान कालनेमि,
पठयो, सो मुनि भयो, पायो फल छलि कै।
सहसा उखारो है पहार बहु जोजन को,
रखवारे मारे भारे भूरि भट दलि कै॥
वेग बल साहस सराहत कृपानिधान,
भरत की कुसल अचल ल्यायो चलि कै।
हाथ हरिनाथ के बिकाने रघुनाथ जनु,
सीलसिंधु तुलसीस भलो मान्यो भलि कै॥५५॥

शब्दार्थ—भूरि = अनेकों। अचल = पहाड़। हरिनाथ = बन्दरों का स्वामी अर्थात् हनुमान जी। भलि कै = अच्छी तरह से।

पद्यार्थ—रावण ने यह सुनकर कि हनुमान संजीवनी बूटी लाने गए हैं कालनेमि को भेजा। उसने कपटी मुनि का भेप धारण किया, उसे कपट वेप धारण करने का फल भी मिल गया। हनुमान जी ने

पर्वत के बहुत से वीर रक्षकों को मारकर बहुत लंबे चौड़े पहाड़ को शीघ्र ही उखाड़ लिया। कृपानिधान श्रीरामचन्द्र जी हनुमान जी के वेग, बल और साहस की सराहना करते हैं, क्योंकि वह जाकर भरत की कुशल और पर्वत दोनों लाए। तुलसीदास जी कहते हैं कि शील के समुद्र रामचन्द्र जी हनुमान के हाथों बिक गए और वे हनुमान जी के सब तरह से कृतज्ञ हुए।

बापु दियो कानन, भो आनन सुभानन सो,
वैरी भो दसानन सो, तीय को हरन भो।
बालि बलसालि दलि, पालि कपिराज को,
बिभीषन नेवाजि, सेतुसागर तरन भो॥
घोर रारि हेरि त्रिपुरारि बिधि हारे हिए,
घायल लखन बीर बानर बरन भो।
ऐसे सोक में तिलोक कै बिसोक पलही में,
सबही को 'तुलसी' को साहिब सरन भो ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ—सुभानन = चन्द्रमा। बानर बरन भो = लाल हो गए।

पद्यार्थ—पिता ने उन्हें बनवास दिया तौभी उनका मुख चन्द्रमा की तरह चमकता रहा (मलीन न हुआ)। उन्हें रावण जैसा शत्रु मिला जिसने उनकी स्त्री को चुरा लिया। उन्होंने शक्तिशाली बालि को मार कर सुग्रीव की रक्षा की और विभीषण को शरण में लेकर सेत द्वारा समुद्र को पार किया। रावण के भयंकर युद्ध को देख कर शिव और ब्रह्मा भी मन ही मन हार मान गए। वीर लक्ष्मण भी घायल होकर लाल हो गए। ऐसे विपत्ति काल में भी तीनों लोक को क्षणमात्र में शोकरहित करके रामचन्द्र जी सब के शरणदाता हुए।

अलंकार—विभावना।

(सवैया)

कुम्भकरन्न हन्यो रन राम, दल्यो दसकंधर, कंधर तोरे।
पूपन-वंस-बिभूपन-पूपन तेज प्रताप गरे अरि-ओरे॥
देव निसान बजावत गावत, सावँत गो, मन भावत भोरे!
नाचत बानर भालु सबै 'तुलसी' कहि 'हारे! हहा भैया 'हारे' ॥५७॥

शब्दार्थ—पूपन-बंस = सूर्य वंश। पूपन = सूर्य। गरे = गल गए। अरि-ओरे = शत्रु रूपी ओले। सावँत (सामंत) = राजा। मन भावत = मनचाही हुई।

पद्यार्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि रामचन्द्र जी ने कुंभकरण को रण में मारा और रावण के कंधों को तोड़ डाला। सूर्यवंश के विभूषण रामचन्द्र जी के सूर्य के समान तेज के सामने शत्रु ओले की तरह से गल गए। देवता प्रसन्न होकर नगाड़े बजाते हैं और गाते हैं और कहते हैं कि रावण मारा गया, हम लोगों के मन की इच्छा पूरी हुई। बन्दर और भालु नाचते हैं और कहते हैं 'हहा, भाइयो, राक्षस हार गए।'

अलंकार—रूपक।

(कवित्त)

मारे रन रातिचर, रावन सकुल दल,
अनुकूल देव मुनि फूल बरषतु हैं।
नाग नर किन्नर बिरंचि हरि हर हेरि,
पुलक सरीर, हिये हेतु, हरषतु हैं॥

बाम ओर जानकी कृपानिधान के विराजैं,
देखत विषाद मिटे मोद करषतु हैं।
आयसु भो लोकनि सिधारे लोकपाल सबै,
'तुलसी' निहाल कै कै दियो सरषतु हैं ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ—हेरि = देख कर। हेतु=प्रेम। करषतु हैं = बढ़ता है। निहाल कै कै = मनोरथ पूरा करके। सरषतु = सरखत, परवाना, अधिकारपत्र।

पद्यार्थ—रामचन्द्र जी ने राक्षस रावण को उसके कुल और सेना सहित मार डाला। इससे प्रसन्न होकर देवता और मुनि उन पर फूलों की वर्षा करने लगे। नाग, नर, किन्नर, ब्रह्मा, विष्णु और शिव रामचन्द्र जी को देख कर बहुत प्रसन्न हुए, उनके हृदय में प्रेम भर आया और उनके शरीर पुलकित हो गए। रामचन्द्र जी की बाईं ओर सीता जी विराजमान थीं, इस (जोड़ी) को देख कर सब दुख जाता रहा और आनन्द बढ़ गया। रामचन्द्र जी की आज्ञा पाकर सब लोकपाल अपने अपने लोकों को चल दिये। तुलसीदास जी कहते हैं कि रामचन्द्र जी ने सब की मनोकामना पूर्ण करके उन्हें (अपने अपने पद पर फिर नियुक्त होने का जिसे रावण ने छीन लिया था) अधिकारपत्र दे दिया।

—:o:—

उत्तरकाण्ड

(सवैया)

वालि से वीर विदारि सुकंठ थप्यो, हरषे सुर बाजने बाजे।
पल में दल्यो दासरथी दसकंधर, लंक विभीषन राज विराजे॥
राम सुभाव सुने 'तुलसी' हुलसे अलसी, हमसे गलगाजे।
कायर कूर कपूतन की हद तेउ गरीबनेवाज नेवाजे॥ १॥

शब्दार्थ—विदारि = मार कर। सुकंठ = सुग्रीव। दासरथी = दशरथ पुत्र राम। गलगाजे = बकवादो, बात बनानेवाले। कूर = क्रूर, निष्ठुर।

पद्यार्थ—श्रीरामचन्द्र जी ने बालि जैसे वीर को मारकर सुग्रीव को राजा बनाया जिससे देवता लोग प्रसन्न हुए और बाजे बजाने लगे। उन्होंने क्षणमात्र में ही रावण को मार डाला और विभीषण को लंका के राजसिंहासन पर सुशोभित किया। तुलसीदास जी कहते हैं कि रामचन्द्र जी का स्वभाव सुनकर हमारे समान आलसी और बकवादी लोग प्रसन्न हुए, क्योंकि दीनबन्धु श्रीरामचन्द्र जी ने ऐसे लोगों पर दया की है जो अत्यन्त कायर, क्रूर और नालायक थे।

बेद पढ़ैं बिधि, संभु सभीत पुजावन रावन सों नित आवैं।
दानव देव दयावने दीन दुखी दिन दूरहि तें सिर नावैं॥
ऐसेउ भाग भगे दसभाल तें, जो प्रभुता कबि कोबिद गावैं।
राम से बाम भये तेहि बामहि बाम सबै सुख संपति लावैं॥ २॥

शब्दार्थ—सभीत = डरकर। भगे = दूर हो गये, समाप्त हो गए। वाम = प्रतिकूल। बामहि = दुष्ट।

पद्यार्थ—जिस रावण के यहां ब्रह्मा वेद पढ़ते हैं, शिव जी भयभीत होकर पूजा लेने आते हैं, दया के पात्र दीन और दुखी रहने वाले देवता और राक्षस जिसे दूर ही से सिर नवाते हैं, ऐसे प्रतापी रावण का भाग्य भी उससे विमुख हो गया। कवि और पंडित रामचन्द्र जी की प्रभुता के सम्बन्ध में कहते हैं कि जो रामचन्द्र जी से विमुख होता है उस दुष्ट को सब सुख संपत्ति छोड़ देती हैं।

अलंकार—यमक।

बेद विरुद्ध, मही मुनि साधु ससोक किए, सुरलोक उजारो।
और कहा कहौं तीय हरी, तबहूँ करुनाकर कोप न धारो॥
सेवक-छोह तें छाँड़ी छमा, 'तुलसी' लख्यो राम सुभाव तिहारो।
तौलौं न दाप दल्यो दसकंधर, जौलौं बिभीषन लात न मारो॥ ३॥

शब्दार्थ—दाप = घमंड। जौलौं = जब तक।

पद्यार्थ—वेद विरुद्ध आचरण करने वाले रावण ने मुनियों, साधुओं और सारी पृथ्वी भर को शोक से युक्त कर दिया और स्वर्ग को उजाड़ डाला। और कहां तक वर्णन किया जाय उसने रामचन्द्र जी की स्त्री को भी हरण कर लिया। तो भी दयालु रामचन्द्र जी ने क्रोध न किया। अपने सेवकों पर दयालु होने के कारण ही आपने अपने क्षमाशील स्वभाव के विरुद्ध काम किया। तुलसीदास जी कहते हैं कि हे रामचन्द्र जी, हम आपके स्वभाव को समझ गये हैं। आपने रावण के अभिमान को तब तक चूर्ण नहीं किया जब तक उसने आपके के सेवक विभीषण को लात नहीं मारा था।

अलंकार—विशेषोक्ति।

सोक-समुद्र निमज्जत काढ़ि कपीस कियो जग जानत जैसो।
नीच निसाचर बैरी को बंधु बिभीषन कीन्ह पुरन्दर कैसो॥
नाम लिये अपनाइ लियो, 'तुलसी' सों कहौ जग कौन अनैसो।
आरत-आरति-भंजन राम, गरीबनिवाज न दूसर ऐसो॥ ४॥

शब्दार्थ—निमज्जत = डूबते हुए। पुरंदर = इन्द्र। अनैसो = बुरा।

पद्यार्थ—रामचन्द्र जी ने शोक समुद्र में डूबते हुए सुग्रीव को निकाल कर राजा बना दिया, यह सारा संसार जानता है। नीच राक्षस और शत्रु के भाई विभीषण को इन्द्र सा बना दिया। तुलसी के समान संसार में दूसरा बुरा कौन है उसे भी केवल नाम लेने से ही उन्होंने अपना लिया। दुखियों के दुख को दूर करने वाला और गरीबों पर दया दिखाने वाला रामचन्द्र जी के समान दूसरा कौन है।

अलंकार—रूपक और उपमा।

मीत पुनीत कियो कपि भालु को, पाल्यो ज्यों काहु न बाल तनूजो।
सज्जन-सींव बिभीषन भो, अजहूँ बिलसै बर बंधु-बधू जो॥
कोसलपाल बिना 'तुलसी' सरनागतपाल कृपालु न दूजो।
क्रूर कुजाति कुपूत अघी सब की सुधरै जो करै नर पूजो॥ ५॥

शब्दार्थ—तनूजो = पुत्र।

पद्यार्थ—रामचन्द्र जी ने बन्दरों और भालुओं तक को पवित्र और मित्र बनाया तथा उनकी ऐसी रक्षा की जैसी रक्षा कोई अपने औरस पुत्र की भी नहीं करता। वह विभीषण जो आज तक अपने बड़े भाई की स्त्री के साथ विलास करता है, सज्जनता की सीमा समझा

गया। तुलसीदास जी कहते हैं कि रामचन्द्र जी के समान शरणागतों की रक्षा करने वाला तथा दयालु दूसरा कौन है। जो ऐसे रामचन्द्र जी की पूजा करते हैं वह क्रूर, कुजाति, कपूत तथा पापी ही क्यों न हो उसका सुधार हो जाता है।

तीय-सिरोमनि सीय तजी जेहिं पावक की कलुषाई दही है।
धर्मधुरंधर बंधु तज्यो. पुरलोगनि की विधि बोलि कही है॥
कीस निसाचर की करनी न सुनी, न विलोकी, न चित्त रही है।
राम सदा सरनागत की अनखौंही अनैसी सुभाव सही है॥६॥

शब्दार्थ—कलुषाई = मलीनता, जलाने की शक्ति। दही है = जला दिया है। विधि कही हैं = कर्तव्य की शिक्षा दी है। अनखौंही = अप्रसन्न होने योग्य। अनैसी = अनिष्ट, बुरा।

पद्यार्थ—रामचन्द्र जी ने स्त्रियों में शिरोमणि सीता जी का परित्याग किया जिन्होंने अग्नि की दाहकशक्ति का नाश कर दिया था। उन्होंने धर्मात्मा भाई लक्ष्मण का त्याग कर दिया और नगरनिवासियों को बुलाकर उनके कर्तव्य की शिक्षा दी। परन्तु सुग्रीव और विभीषण के नीच कर्मों को न सुना, न देखा और न उन पर ध्यान ही दिया। रामचन्द्र जी ने सदा से शरणागतों के अप्रसन्न करने वाले अनिष्ट स्वभाव को बरदाश्त किया है।

अपराध अगाध भये जन तें अपने उर आनत नाहिन जू।
गनिका गज गीध अजामिल के गति पातक-पुंज सिराहिं न जू॥
लिये बारक नाम सुधाम दियो जिहि धाम महामुनि जाहिं न जू।
'तुलसी' भजु दीनदयालुहि रे, रघुनाथ अनाथहि दाहिन जू॥७॥

शब्दार्थ—सिराहिं = समाप्त। दाहिन = अनुकूल।

पद्यार्थ—अपने भक्तों से बड़े से बड़े अपराध भी हो जायँ तो आप उन पर ध्यान नहीं देते। गणिका, गज, गिद्ध और अजामिल के पापों का ओर छोर नहीं था, किन्तु उनके एक बार नाम लेने से ही उनको आपने उस सुन्दर लोक में भेज दिया जहां पर बड़े बड़े मुनि भी नहीं जाते। तुलसीदास जी कहते हैं कि अनाथों के सदा अनुकूल रहने वाले दीन दयालु रामचन्द्र जी को भजो।

प्रभु सत्य करी प्रहलाद-गिरा, प्रगटे नरकेहरि खंभ महाँ।
झखराज ग्रस्यो गजराज, कृपा ततकाल, बिलंब कियो न तहाँ॥
सुर साखी दै राखी है पांडुबधू पट लूटत, कोटिक भूप जहाँ।
'तुलसी' भजु सोच-बिमोचन को, जन को पन राम न राख्यो कहाँ॥८॥

शब्दार्थ—झखराज = ग्राह। महाँ = में से। पन = प्रण।

पद्यार्थ—रामचन्द्र ने प्रहलाद की वाणी को सत्य किया और खंभे से नरसिंह रूप में निकले। ग्राह ने जब गजराज को ग्रसित किया तो आपने तत्काल कृपा की, विलम्ब नहीं लगाया। जहाँ अनेकों राजाओं के बीच में द्रौपदी का वस्त्र हरण हो रहा था, वहां आपने उसकी रक्षा की जिसकी साक्षी देवता हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि शोक को दूर करने वाले रामचन्द्र जी को भजो, उन्होंने अपने दासों के प्रण को कहां नहीं रखा है?

अलंकार—काकुवक्रोक्ति।

नरनारि उघारि सभा महँ होत दियो पट, सोच हर्‌यो मन को।
प्रहलाद-विषाद-निवारन, वारन तारन, मीत अकारन को॥
जो कहावत दीनदयालु सही, जेहि भार सदा अपने पन को।
'तुलसी' तजि आन भरोस, भजे भगवान, भलो करिहैं जनको॥९॥

शब्दार्थ—वारन = हाथी, गजराज ।

पद्यार्थ—सभा में द्रौपदी को नंगा होते हुए देख कर आपने उसे वस्त्र दिया और उसके मन का शोक दूर किया । जो प्रह्लाद के शोक को दूर करनेवाले, गजराज को तारनेवाले और निःस्वार्थ मित्र और सच्चे दीनदयालु कहलाते हैं जिन्हें अपने प्रण का सदा ध्यान रहता है, तुलसीदास जी कहते हैं कि औरों का भरोसा छोड़कर ऐसे भगवान का भजन करो, वे अपने भक्तों का भला करेंगे ।

अलंकार—यमक ।

ऋषिनारि उधारि, कियो सठ केवट मीत, पुनीत सुकीर्ति लही ।
निज लोक दियो सवरी खग को, कपि थाप्यो सो मालुम है सवही ।
दससीस-विरोध सभीत बिभीषन भूप कियो जग लीक रही ।
करुनानिधिको भजु रे 'तुलसी', रघुनाथ अनाथ के नाथ सही ॥१०॥

शब्दार्थ—ऋषिनारि = गौतम ऋषि की स्त्री, अहिल्या । निज लोक = स्वर्ग । थाप्यो = स्थापित किया (राज दिया) । खग = जटायु । लीक = लकीर, निशान ।

पद्यार्थ—श्रीरामचन्द्रजी ने अहिल्या का उद्धार किया, नीच कुल में उत्पन्न केवट को मित्र बनाया और पवित्र कीर्ति को प्राप्त किया । उन्होंने सवरी और जटायु को भी स्वर्ग में भेज दिया और सुग्रीव को राजा बनाया जो सब पर विदित है । विभीषण को जो रावण से विरोध होने के कारण भयभीत रहता था लंका का राजा बनाया, यह बात अब तक संसार में (अमिट) चिन्ह की तरह वर्तमान है । तुलसीदास कहते हैं कि अनाथों के नाथ करुणा के समुद्र श्रीरामचन्द्र जी को भजो ।

अलंकार—परिकरांकुर ।

कौसिक, बिप्रबधू, मिथिलाधिप के सब सोच दले पल माँ हैं।
बालि-सदानन-बंधु-कथा सुनि सत्रु सुसाहिब-सील सराहैं॥
ऐसी अनूप कहैं 'तुलसी' रघुनायक की अगुनी गुन-गाहैं।
आरत दीन अनाथन को रघुनाथ करैं निज हाथकी छाहैं॥११॥

शब्दार्थ—अगनी = अगणित, असंख्य। गुन-गाहैं = गुण की गाथाएँ। छाहैं करैं = छाया करते हैं, रक्षा करते हैं।

पद्यार्थ—श्रीरामचन्द्र जी ने विश्वामित्र, अहिल्या तथा राजाजनक की सब चिन्ताओं को क्षणमात्र में दूर कर दिया। बालि के भाई सुग्रीव तथा रावण के भाई विभीषण का हाल सुन कर शत्रु भी उनकी प्रशंसा करते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्रजी की अगणित गुण-गाथाएँ ऐसी ही विचित्रता से भरी हुई हैं। रामचन्द्रजी दीन दुखियों और अनाथों की अपने हाथों से रक्षा करते हैं।

तेरे बेसाहे बेसाहत औरनि, और बेसाहि कै बेचन हारे।
ब्योम रसातल भूमि भरे नृप कूर कुसाहिब सेंतिहुँ खारे॥
'तुलसी' तेहि सेवत कौन मरै? रज तें लघु को करे मेरु तें भारे!।
स्वामि सुसील समर्थ सुजान सो तोसो तुही दसरत्थ-दुलारे॥

शब्दार्थ—बेसाहे = ख़रीदना। रसातल = पाताल। सेंतिहुँ खारे = मुफ़्त में भी बुरे।

पद्यार्थ—हे श्रीरामचन्द्रजी! जिसको आप खरीद लेते हैं (अपना लेते हैं) वह (इतना समर्थ हो जाता है कि) औरों को खरीदता फिरता है। अर्थात् दूसरों का उद्धार करता फिरता है। अन्य स्वामी तो केवल दूसरों को ख़रीद कर बेंचना जानते हैं (अर्थात् दूसरों को अपना तो लेते हैं लेकिन उनकी रक्षा करने में समर्थ न होने कारण

उन्हें दूसरों की शरण में छोड़ देते हैं)। यों तो आकाश से लेकर पाताल तक अनेकों दुष्ट राजा और कुस्वामी भरे हुए हैं लेकिन वे मुफ़्त में भी बुरे हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि ऐसे बुरे स्वामियों की सेवा में कौन मरता रहे ! ऐसा कौन समर्थ है जो धूल जैसी तुच्छ वस्तु को मेरु पहाड़ की तरह बड़ा बना दे। हे दशरथ के दुलारे श्रीरामचन्द्र जी आप जैसा शीलवान, शक्तिशाली और चतुर स्वामी दूसरा कोई नहीं है, आप जैसे आप ही हैं।

अलंकार—अनन्वय।

(कवित्त)

जातुधान भालु कपि केवट विहंग जो जो
पाल्यो नाथ सद्य सो सो भयो काम-काज को।
आरत अनाथ दीन मलिन सरन आये
राखे अपनाइ, सो सुभाव महराज को॥
नाम 'तुलसी' पै भोंड़े भाँग तें कहायो दास,
किये अंगीकार ऐसे बड़े दगावाज को।
साहेब समर्थ दसरत्थ के दयालु देव,
दूसरो न तो सों, तुही आपने की लाज को॥१३॥

शब्दार्थ—सद्य = तुरन्त। काम-काज को भयो = आदरणीय हो गए। भोंडो = भद्दा, बुरा।

पद्यार्थ—हे स्वामी, विभीषण, जामवंत, सुग्रीव, निषाद और जटायु आदि को जो आपने पाला पोसा वे सब तत्काल ही आदरणीय हो गए। दीन दुखिया अनाथ तथा छलिया जो कोई भी आपकी शरण में आये उन्हें आप ने अपना लिया, ऐसा आपका सरल स्वभाव

है। मेरा नाम 'तुलसी' तो है पर मैं भांग से भी ख़राब हूँ। आपने ऐसे दग़ाबाज़ को भी अपना लिया जिससे मैं तुलसीदास कहलाने लगा। हे राजा दशरथ के पुत्र रामचन्द्रजी, आप जैसा शक्तिशाली और दयालु स्वामी दूसरा कोई नहीं है। आप ही अपने शरण में आए हुए की लज्जा रखते हैं'।

अलंकार—उपमानलुप्ता।

> महाबली बालि दलि, कायर सुकंठ कपि,
> सखा किये, महाराज हौं न काहू काम को।
> भ्रात-घात-पातकी निसाचर सरन आये,
> कियो अंगीकार नाथ एते बड़े बाम को॥
> राय दसरत्थ के समर्थ तेरे नाम लिये
> 'तुलसी' से कूर को कहत जग राम को।
> आपने निवाजे की तौ लाज महराज को,
> सुभाव समुझत मन मुदित गुलाम को॥१४॥

शब्दार्थ—सुकंठ = सुग्रीव। बाम = दुष्ट। गुलाम = दास।

पद्यार्थ—महाबलशाली बालि को मार कर कायर सुग्रीव को अपना मित्र बनाया, जो किसी काम का न था। भाई की हत्या करने की इच्छा रखने वाले पापी विभीषण जैसे दुष्ट को भी शरण में आने पर अपना लिया। हे राजा दशरथ के शक्तिशाली पुत्र श्रीरामचन्द्रजी आपका नाम लेने से तुलसी जैसे क्रूर को भी लोग रामचन्द्र का दास कहते हैं। 'आपको अपने शरणागत की लज्जा रहती है' इस स्वभाव को सुनकर दास का मन प्रसन्न होता है।

> रूप-सीलसिन्धु गुनसिन्धु, बंधु दीन को,
> दयानिधान, ज्ञान-मनि, बीर बाहु-बोल को।

श्राद्ध कियो गीध को सराहे फल सबरी के,
सिलासाप-समन, निबाह्यो नेह कोल को ॥
'तुलसी' उराउ होत राम को सुभाव सुनि,
को न बलि जाइ, न बिकाइ बिन मोल को ? ।
ऐसेहू सुसाहेब सों जाको अनुराग न सो
बड़ोई अभागो, भाग भागो लोभ-लोल को ॥१५॥

शब्दार्थ—ज्ञान-मनि = ज्ञानियों में शिरोमणि। बीर बाहु-बोल को = शरणागत और प्रतिज्ञा का निर्वाह करने वाला वीर। सिलासाप-समन = अहिल्या के शाप को दूर करने वाला। उराउ = उत्साह। लोभ-लोल = लोभ से चलायमान चित्त।

पद्यार्थ—हे श्रीरामचन्द्रजी, आप रूप, शील तथा गुण के समुद्र दीनों के सहायक, दया की खान, ज्ञानियों में शिरोमणि, शरणागतों की रक्षा करने तथा प्रतिज्ञा पूरा करने में वीर हैं। आपने जटायु का श्राद्ध कर्म किया, सवरी के फलों की प्रशंसा की, अहिल्या के शाप को दूर किया और कोल भीलों से प्रेम निबाहा। तुलसीदासजी कहते हैं कि रामचन्द्रजी के ऐसे सुन्दर स्वभाव को सुनकर उत्साह होता है। इन पर कौन नहीं निछावर होगा और कौन उनके हाथ बिना दाम के ही न बिकेगा। ऐसे अच्छे स्वामी से जिसको प्रेम नहीं है वह बड़ा ही अभागा है, उस लोभ से चंचल चित्त वाले मनुष्य का मानो भाग्य ही फूट गया है।

अलंकार—गम्योत्प्रेक्षा।

सूर-सिरताज महाराजनि के महाराज,
जाको नाम लेत ही सुखेत होत ऊसरो।

साहब कहाँ जहान जानकीस सो सुजान,
सुमिरे कृपालु के मराल होत खूसरो ॥
केवट पपान जातुधान कपि भालु तारे,
अपनायो 'तुलसी' सो धींग धमधूसरो।
बोल को अटल, बाँह को पगार, दीनबंधु,
दूबरे को दानी, को दयानिधान दूसरो ? ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—सूर-सिरताज = वीरों में श्रेष्ठ। मराल = हंस (विवेकी) खूसरो = मूर्ख। धींग = निकम्मा। धमधूसरो = जाहिल। पगार = चहार दीवारी (रक्षक)। बाँह को पगार = चहारदीवारी की तरह रक्षा करने वाले। दूबर = निर्बल, दरिद्र।

पदार्थ—वीरों में श्रेष्ठ, राजाओं के भी राजा; और जिनका नाम लेते ही ऊसर खेत भी उपजाऊ हो जाता है, ऐसे चतुर श्रीरामचन्द्रजी के समान संसार में दूसरा स्वामी कौन है। उनके नाम के स्मरण करने से मूर्ख भी हंस के समान चतुर हो जाता है। उन्होंने निषाद, अहिल्या, विभीषण, सुग्रीव तथा जामवंत का उद्धार कर दिया और तुलसी के समान मूर्ख और निकम्मे लोगों को अपनाया। उनके समान अपने वचन का पक्का, शरणागतों की रक्षा करने वाला, दीनों का सहायक और ग़रीबों को दान देनेवाला और दयालु दूसरा कौन है।

अलंकार—काकुवक्रोक्ति।

कीबे को बिसोक लोक लोकपालहु ते सब,
कहूँ कोऊ भो न चरवाहो कपि भालु को।
पवि को पहार कियो ख्याल ही कृपालु राम
बापुरो बिभीषन घरौंधा हुतो बालु को॥

नाम-ओट लेत ही निखोट होत खोटे खल,
चोट बिन मोट पाइ भयो न निहाल को ? ।
'तुलसी' की बार बड़ी ढील होत, सीलसिंधु !
बिगरी सुधारिबे को दूसरो दयालु को ? ॥१७॥

शब्दार्थ—कीबे को = करने को। चरवाहो = अच्छे मार्ग पर चलाने वाला। पवि = वज्र। घरौंधा = भीत। नाम-ओट लेत ही = नाम की शरण में आते ही। निखोट = दोष रहित। मोट = गठरी। निहाल = खुश।

पद्यार्थ—सभी लोकपाल थे ही लेकिन लोगों के शोक को दूर करने के लिये भालु बन्दरों का कोई पथप्रदर्शक न बना। विचारा विभीषण जो बालू के घिरौंदे के समान निर्बल था उसे आपने वज्र के पहाड़ की तरह शक्तिशाली बना दिया। आपके नाम की शरण में आते ही दुष्ट और पापी भी निर्दोष और शुद्ध हो जाते हैं। भला कौन ऐसा होगा जो बिना परिश्रम के ही गठरी पाकर खुश न हो (बिना कठिन तपस्या किए ही स्वर्ग को पाकर प्रसन्न न हो)। हे शीलसिन्धु ! अब तुलसी की बार इतना विलम्ब क्यों हो रहा है ? बिगड़ी बात को सुधारने के लिये आपके समान दूसरा दयालु कौन है ?

अलंकार—काकुवक्रोक्ति।

नाम लिये पूत को पुनीत कियो पातकीस,
आरति निवारी प्रभु पाहि कहे पील की।
छलिन की छौंड़ी सो निगोड़ी छोटी जाति पाँति,
कीन्हीं लीन आपु में सुनारी भोंड़े भील की ॥
तुलसीऔ तारिबो बिसारिबो न अंत, मोहिं,
नीके है प्रतीति रावरे सुभाव सील की ।

देव तौ दयानिकेत, देत दादि दीनन की,
मेरी बार मेरे ही अभाग नाथ ढील की ॥ १८ ॥

शब्दार्थ—पूत = पुत्र, यहाँ अभिप्राय अजामिल के पुत्र नारायण से है। पाहि = रक्षा करो। पील = हाथी। छलिन की छौंड़ी = छली की बेटी, सबरी। निगोड़ी = निकम्मा। दादि देत = पक्ष लेते हैं।

पद्यार्थ—महापातकी अजामिल को अपने पुत्र नारायण का नाम लेने मात्र से ही उद्धार कर दिया। गजराज के त्राहि त्राहि पुकारने पर आपने उसके दुख को दूर किया। नीची जाति की निकम्मी छली की बेटी तथा गंदे भील जाति की स्त्री सबरी को अपना बनाया। तुलसी-दास जी कहते हैं कि आपके शील स्वभाव से मुझे अच्छी तरह विश्वास होता है कि आप मुझे अंत में नहीं भुलाएंगे, अवश्य तारेंगे। हे नाथ, आप दया के घर हैं और दीनों की सहायता करते हैं। आप मेरे ही दुर्भाग्य से मुझे अपनाने में देर कर रहे हैं।

आगे परे पाहन कृपा, किरात, कोलनी,
कपीस, निसिचर अपनाये नाये माथ जू।
साँची सेवकाई हनुमान की सुजान राय
ऋनियाँ कहाये हौ बिकाने ताके हाथ जू॥
'तुलसी' से खोटे खरे होत ओट नामही की,
तेजी माटी मगहू की मृगमद साथ जू।
बात चले बात को न मानिबो बिलग, बलि,
काकी सेवा रीझि कै नेवाजो रघुनाथ जू ? ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—तेजी = महँगी। मृगमद = कस्तूरी। बिलग = बुरा।

पद्यार्थ—रास्ते में पड़ी हुई पत्थर की मूर्ति अहिल्या पर आपने कृपा की और किरात और सबरी, सुग्रीव और विभीषण को नम्र होते

ही अपना लिया। हे ज्ञानियों के राजा, आपकी सच्ची सेवा तो हनुमान ने की जिसके आप ऋणी कहलाते हैं और उसके हाथ बिक गये हैं। तुलसी के समान दुष्ट भी आपके नामकी शरण में आते ही उसी प्रकार पवित्र हो जाते हैं, जिस प्रकार मार्ग में पड़ी हुई मिट्टी भी कस्तूरी के साथ रहने से महँगी बिकती है। मैं आपकी बलि जाऊँ, बात पड़ने पर बात कहनी पड़ती है, आप बुरा न मानें। आप किसकी सेवा से प्रसन्न होकर उस पर कृपा की थी।

"कौसिक की चलत, पषान की परस पायँ,
टूटत धनुष बनि गई है जनक की।
कोल पसु सबरी बिहंग भालु रातिचर,
रतिन के लालचिन प्रापति मनक की॥
कोटि-कला-कुसल कृपालु, नतपाल, बलि,
बात हू कितिक तिन 'तुलसी' तनक की।
राय दसरत्थ के समर्त्थ राम राजमनि,
तेरे हेरे लोपै लिपि बिधिहू गनक की॥ २०॥

शब्दार्थ—बन गई है — स्वार्थ सिद्धि हो गई है। रतिन = रत्ती भर। मनक = मन भर। नतपाल = शरणागत को पालने वाले। कितिक = कितना। तनक = थोड़ा, आसान। लिपि = लिखा हुआ। हेरे = देखना। लोपै = छिप जाता है, मिट जाता है। गनक = गणक, ज्योतिषी।

पदार्थ—साथ चलने से विश्वामित्र की, पैरों के छूने से अहिल्या की, और धनुष टूटने से जनक की स्वार्थ सिद्धि हुई। जंगल वासी कोल (निषाद) पशु (कपटी मृग) सबरी, पक्षी (जटायु) भालु (जामवंत) और राक्षस (बिभीषण) को जो रत्ती भर (थोड़े) की इच्छा रखते थे मन भर (बहुत अधिक) की प्राप्ति हुई। हे करोड़ों

कलाओं में चतुर, शरणागतों के पालने वाले श्रीरामचन्द्रजी मैं आपकी बलैया जाता हूँ। तृण के समान तुच्छ तुलसीदास को थोड़ी सी भक्ति प्राप्त करा देना आप के लिये कौन सी कठिन बात है। हे राजा दशरथ के समर्थ पुत्र, राजाओं में शिरोमणि श्रीरामचन्द्रजी आपके देखने मात्र से ब्रह्मा जैसे गणक का लिखा हुआ मिट जाता है।

अलंकार—अत्युक्ति।

सिला-साप-पाप, गुह गीध को मिलाप,
सवरी के पास आप चलि गयेहौ सो सुनी मैं।
सेवक सराहे कपि नायक बिभीषन,
भरत सभा सादर सनेह सुर धुनी मैं॥
आलसी-अभागी-अघी-आरत-अनाथपाल,
साहेब समर्त्थ एक नीके मन गुनी मैं।
दोख-दुख-दारिद-दलैया दीन बंधु राम,
'तुलसी' न दूसरो दयानिधान दुनी मैं॥ २१॥

शब्दार्थ—सुरधुनी = गंगाजी। दलैया = नष्ट करने वाले। दुनी = दुनिया।

पद्यार्थ—आपने अहिल्या के शाप और पाप को दूर किया, गुह (निषाद) और जटायु से मिले और सवरी के पास स्वयं चले गए, यह सब कुछ मैंने सुना है और सभा में भरत, सुग्रीव और विभीषण जैसे सेवकों के गंगा के समान पवित्र प्रेम की सराहना की है। मैंने मनमें अच्छी तरह से सोच विचार कर लिया है कि आलसी, अभागी, पापी, दुखिया और अनाथों की रक्षा करने में आप ही एक समर्थ स्वामी हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि हे रामचन्द्र जी! दोष, दुख और दरिद्रता का नाश करने वाला,

दीनों का सहायक और दया का घर आपके समान दुनिया में दूसरा कोई नहीं है।

अलंकार—अनुप्रास।

मीत बालि-बंधु, पूत दूत, दसकंध-बंधु
सचिव, सराध कियो सबरी जटाइ को।
लंक जरी जोहे जिय सोच सो बिभीषन को,
कहौ ऐसे साहेब की सेवा न खटाइ को?
बड़े एक एक तें अनेक लोक लोकपाल,
अपने अपने को तौ कहैगो घटाइ को?।
साँकरे के सेइबे, सराहिबे सुमिरिबे को
राम सो न साहिब, न कुमति-कटाइको॥ २२॥

शब्दार्थ—जोहे = देखना। न खटाई को = कौन नहीं खटेगा। कहैगोघटाई को = कौन घटा कर कहेगा, सब बड़े कहेंगे। साँकरे के सेइबे = संकट में सेवा करने योग्य। कुमति-कटाइको = दुर्बुद्धि को हटाने वाला।

पद्यार्थ—जिसने बालि के भाई सुग्रीव को मित्र बनाया, उसके पुत्र अंगद को दूत बनाया, रावण के भाई विभीषण को मंत्री बनाया और शबरी और जटायु का श्राद्ध किया, और जली हुई लंका को देखकर विभीषण के लिये शोक किया, ऐसे स्वामी की सेवा में रहना कौन न चाहेगा? अनेक लोकों के लोकपाल एक से एक बढ़कर हैं, उनमें से अपने को कौन छोटा समझता है? लेकिन संकट के समय सेवा करने योग्य, सराहना और स्मरण करने योग्य और दुर्बुद्धि को दूर करने वाला रामचन्द्र जी के समान कोई दूसरा स्वामी नहीं है।

अलंकार—काकुवक्रोक्ति।

भूमिपाल, व्यालपाल, नाकपाल, लोकपाल,
कारन कृपालु, मैं सबै के जी की थाह ली।
कादर को आदर काहू के नाहिं देखियत,
सबनि सोहात है सेवा-सुजान टाहली ॥
'तुलसी' सुभाय कहै नाहीं कछु पच्छपात,
कौनै ईस किये कीस भालु खास माहली।
रामही के द्वारे पै बोलाइ सनमानियत,
मोसे दीन दूबरे कुपूत कूर काहली ॥२३॥

शब्दार्थ—व्यालपाल = शेषनाग। नाकपाल = इन्द्र। कारन-कृपालु = कारणवश कृपा करने वाले। टाहली = सेवक। खास माहली = अंतःपुर के सेवक। काहली (काहिल) = सुस्त।

पद्यार्थ—राजा, शेषनाग, इन्द्र और लोकपाल, ये सभी कारण वश कृपा करते हैं, मैंने सब की जी की थाह ले ली है। सबों को चतुर सेवक की सेवा अच्छी लगती है, कोई भी कांयर को आदर नहीं देता। तुलसीदास स्वभाव से ही कहते हैं, पक्षपात करके नहीं कहते कि किस स्वामी ने बन्दरों और भालुओं को अपने खास महल का सेवक बनाया है। मेरे समान दीन दुखिया, नालायक, क्रूर और आलसी का रामचन्द्र जी के ही द्वार पर बुलाकर आदर किया जाता है।

अलंकार—लाटानुप्रास।

सेवा अनुरूप फल देत भूप कूप ज्यों,
बिहूने गुन पथिक पियासे जात पथ के।
लेखे जोखे चोखे चित 'तुलसी' स्वारथहित,
नीके देखे देवता देवैया घनो गथ के ॥

गीध मानो गुरु, कपि भालु मानो मीत कै,
पुनीत गीत साके सब साहेब समत्थ के।
और भूप परखि सुलाखि तौलि ताइ लेत,
लसम के खसम तुही पै दसरत्थ के ॥ २४ ॥

शब्दार्थ—बिहुने गुन = बिना गुण के, विना रस्सी के। लेखे जोखे = अच्छी तरह विचार कर लिया है। चोखे = खरा। घने गथ = बहुत धन। साके = यशस्वी। सुलाखि = सूराख़ करके देखना। ताइ लेत = तपा लेते हैं। लसम = खोटे। खसम = स्वामी।

पदार्थ—जिस प्रकार डोरी के न रहने पर पथिक कुएँ से भी प्यासा चला जाता है, उसी प्रकार गुणरहित लोग राजाओं के यहां से भी खाली हाथ लौटते हैं। राजा लोग सेवा के अनुकूल ही फल देते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि मैंने मन में निष्कपट भाव से विचार कर लिया है कि देवता लोग स्वार्थवश बहुत धन के देने वाले तो हैं लेकिन जटायु को गुरु के समान पूज्य, और बन्दरों और भालुओं को मित्र के समान मानने वाले, पवित्र गीत और यशवाले, समर्थवान स्वामी रामचन्द्र जी ही हैं। और राजा लोग तो अच्छी तरह से देख और परख कर सेवक चुनते हैं, लेकिन निकम्मों को अपनाने वाले स्वामी दशरथ के पुत्र रामचन्द्र जी ही हैं।

अलंकार—श्लेष और उपमा।

रीति महाराज की नेवाजिये जो माँगनो सो,
दोष-दुख-दारिद-दरिद्र कै कै छोड़िये।
नाम जाको कामतरु देत फल चारि, ताहि,
'तुलसी' बिहाइ कै बबूर रेंड गोड़िये ॥

जाँचै को नरेस, देस देस को कलेस करै ?
दैहै तो प्रसन्न ह्वै बड़ी बड़ाई बोड़िये।
कृपापाथनाथ लोकनाथनाथ सीतानाथ,
तजि रघुनाथ हाथ और काहि ओड़िये ? ॥२५॥

शब्दार्थ—कामतरु = कल्पवृक्ष। गोड़िये = सेवा कीजिए। बोड़िये = एक दमड़ी की कौड़ी। ओड़िये = पसारें।

पद्यार्थ—महाराज रामचन्द्र जी की ऐसी रीति है कि जो मांगता है उस पर इतनी कृपा करते हैं कि उसके दोष, दुख और दरिद्रता को दरिद्र करके छोड़ देते हैं। जिनका नाम कल्पवृक्ष के समान (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) चारों फलों को देने वाला है उसको छोड़ कर बबूर और रेंड के समान निकम्मे पेड़ की सेवा कौन करने जाय। कौन देश विदेश भटक कर राजाओ से मांगता फिरे। यदि वे प्रसन्न होकर देंगे भी तो एक दमड़ी की कौड़ी देंगे। यही उनकी बड़ाई है। कृपा के समुद्र, लोकपालों के स्वामी श्रीरामचन्द्र जी को छोड़ कर और किसके सामने हाथ पसारें ?

अलंकार—अत्युक्ति।

(सवैया)

जाके बिलोकत लोकप होत बिसोक, लहैं सुर लोग सुठौरहि।
सो कमला तजि चंचलता करि कोट कला रिझवै सुरमौरहि॥
ताको कहाय, कहै 'तुलसी', तू लजाहि न माँगत कूकुर कौरहि।
जानकि-जीवनको जनह्वै जरिजाउसो जीह जो जाँचत औरहि ॥२६॥

शब्दार्थ—सुरमौरहि = देवताओं में शिरोमणि, विष्णु भगवान।

पद्यार्थ—जिस लक्ष्मी के देखने मात्र से लोकपाल लोग शोक-रहित हो जाते हैं और देवता लोग सुन्दर स्थान प्राप्त करते हैं वही लक्ष्मी अपनी चंचलता को छोड़ कर नाना प्रकार से विष्णु भगवान को प्रसन्न करती हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि उन्हीं विष्णु भगवान अर्थात रामचन्द्र जी का कहना कर औरों से कुत्ते के ग्रास की तरह मांगते तुझे शरम नहीं आती। जानकीनाथ श्रीरामचन्द्र जी का दास होकर के जो औरों से मांगता फिरे उसकी जीभ जल जाय तो अच्छा है।

अलंकार—वृत्यनुप्रास।

जड़ पंच मिलै जेहि देह करी, करनी लखु धौं धरनीधर की।
जन की कहु क्यों करिहै न संभार, जो सार करै सचराचर की॥
तुलसी कहु राम समान को आन है सेवकि जासु रमा घर की॥
जग में गति जाहि जगत्पति की, परवाह है ताहि कहा नर की॥२७

शब्दार्थ—पंच = पंचतत्त्व। सार करै = पालता है।

पद्यार्थ—जिसने पांच जड़ तत्वों को मिला कर देह की रचना की उस धरनीधर श्रीरामचन्द्र जी की करनी को देखो। जो सारे जड़ और चेतन सृष्टि का पालन-पोषण करता है वह क्या अपने भक्त की खोज खबर न लेंगे? तुलसीदास जी कहते हैं कि रामचन्द्र जी के समान और दूसरा कौन है जिसके घर की दासी लक्ष्मी है। संसार में जिसकी खोज खबर लेने वाले श्रीरामचन्द्र जी हैं उसको किस बात की चिन्ता है?

जग जाँचिये कोउ न, जाँचिये जौं जिय जाँचिये जानकी-जानहि रे।
जेहि जाँचत जाचकता जरि जाइ जो जारति जोर जहानहि रे॥

गति देखु बिचारि बिभीषन की, अरु आनु हिये हनुमानहि रे।
'तुलसी' भजु दारिद-दोप-दवानल, संकट कोटि कृपानहि रे ॥२८॥

शब्दार्थ—दावानल = दावाग्नि, वन की आग।

पद्यार्थ—संसार में और किसी से न मांगना चाहिये। अगर किसी से मांगने की मन में इच्छा ही है तो जानकीनाथ श्रीरामचन्द्र जी से मांगो, जिससे मांगने से दरिद्रता जल जाती है; जो (दरिद्रता) अपने बल से संसार को जला देने में (नष्ट करने में) समर्थ हैं। अपने हृदय में विभीषण और हनुमान की दशा को विचार करके देखो। तुलसीदास जी कहते हैं कि दरिद्रता और दोप के लिये दावाग्नि-रूप और करोड़ों संकटों के लिये कृपाण-रूप श्रीरामचन्द्र जी को भजो।

अलंकार—रूपक।

सुनु कान दिए नित नेम लिए रघुनाथहिं के गुनगाथहि रे।
सुख-मंदिर सुंदर रूप सदा उर आनि धरे धनु भाथहि रे॥
रसना निसि-बासर सादर सो 'तुलसी' जपु जानकी-नाथहि रे।
करु संग सुसील सुसंतन सों, तजि कूर कुपंथ कुसाथहि रे॥ २९॥

शब्दार्थ—रसना = जीभ। भाथहि = तरकस को।

पद्यार्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि नित्य नियम से कानों से रामचन्द्र जी के गुणों का बखान सुनो। हृदय में धनुप और तरकस को धारण किए हुए उनके सुन्दर स्वरूप को लाओ और जीभ से दिन रात उनका नाम जपो। दुष्टों और कुमार्गियों की बुरी संगत छोड़कर सज्जनों की अच्छी संगत करो।

सुत, दार, अगार, सखा परिवार बिलोकु महा कुसमाजहि रे।
सबकी ममता तजि कै, समता सजि संत-सभा न बिराजहि रे॥
नर देह कहा करि देखु बिचार, बिगारु गँवार न काजहि रे।
जनि डोलहि लोलुप कूकर ज्यौं, 'तुलसी' भजु कोसलराजहि रे॥३०॥

शब्दार्थ—दार = स्त्री। अगार (आगार) = घर। लोलुप = लालची।

पद्यार्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि लड़का, स्त्री, घर, मित्र और कुटुम्ब को बुरा समाज समझो। उन सब का मोह छोड़कर समदर्शी भाव से संतों की सभा में क्यों नहीं बैठते ? विचार करके अपने मन में देखो कि इस मनुष्य देह की क्या हस्ती है ? ऐ मूर्ख, अपने काम को न बिगाड़ो, लोभी कुत्ते की तरह से दरवाज़े दरवाज़े न घूमो और श्रीरामचन्द्र जी का भजन करो।

अलंकार—पूर्णोपमा।

बिषया परनारि, निसा-तरुनाई, सु पाइ परयौ अनुरागहि रे।
जम के पहरू दुख रोग बियोग, बिलोकत हू न बिरागहि रे॥
ममता बस तैं सब भूलि गयो, भयो भोर, महाभय भागहि रे।
जरठाइ निसा, रबिकाल उयो, अजहूँ जड़ जीव न जागहि रे॥३१॥

शब्दार्थ—बिषया = भोग बिलास। तरुनाई = जवानी। जरठाई = बुढ़ापा। दिसा = पूर्व दिशा।

पद्यार्थ—तू जवानी रूपी रात्रि में संसारिक भोग बिलास रूपी स्त्री को पाकर उसके प्रेम में फँस गए हो। (कायिक और मानसिक) रोग और दुख तथा (शरीर से वियोग) मृत्यु रूपी यम के दूत तुम्हें चेतावनी देते हैं, परन्तु उनको देख कर भी तुम्हें संसारिक भोग

विलासों से विरक्ति नहीं होती। आसक्ति के कारण तुम ज्ञान वैराग्य सब कुछ भूल गए हो। अब सवेरा हो गया है (भोग विलास का समय जाता रहा), महाभय (यम के दूत) भी हट गए हैं, बुढ़ापा रूपी पूर्व दिशा में मृत्यु रूपी बाल रवि उदय हो गया है (अर्थात् मृत्यु समीप दिखाई दे रही है)। परन्तु हे जड़ जीव, तुम अब भी (अपनी गफलत की नींद से) नहीं जागता।

अलंकार—रूपक।

जनम्यो जेहि जोनि अनेक क्रिया सुख लागि करी, न परै बरनी।
जननी जनकादि हितू भए भूरि, बहोरि भई उर की जरनी॥
'तुलसी' अब राम को दास कहाइ हिए धरु चातक की धरनी।
करि हंस को बेप बड़ो सबसों, तजि दे बक बायस की करनी॥३२

शब्दार्थ—जनकादि = पिता इत्यादि। हितू = भलाई करनेवाले। भूरि = अनेकों। बहोरि = फिर। धरनी = प्रतिज्ञा।

पद्यार्थ—तुलसीदास जी अपने मन से कहते हैं कि जिस योनि में तुमने जन्म लिया उस योनि में संसारिक सुख प्राप्त करने के लिये अनेक काम किये जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता। उस समय माता पिता आदि अनेकों तुम्हारे शुभचिन्तक बने। परन्तु फिर भी तुम्हारे हृदय का त्रयताप बना ही रहा। अब तुम हंस (रामचन्द्रजी के भक्त) का वेष धारण कर श्रीरामचन्द्रजी के दास बनो और चातक की भांति अपने स्वामी से अनन्य प्रेम करने की प्रतिज्ञा करो और बक की भांति छलकपट करना और कौए की भी तरह अविश्वास करना तथा कटुबचन बोलना छोड़ दो।

अलंकार—ललित।

भलि भारतभूमि, भले कुल जन्म, समाज सरीर भलो लहि कै।
करषा तजिकै, परुषा वरषा हिम मारुत घाम सदा सहि कै॥
जो भजै भगवान सयान सोई 'तुलसो' हठ चातक ज्यों गहि कै।
नत और सवै विष वीज वये हर-हाटक कामदुहा नहि कै॥ ३३॥

शब्दार्थ—करषा = क्रोध। परुषा = कठोर। मारुत = हवा।
नत = नहीं तो। वये = बोया। हर-हाटक = सोने का हल।
कामदुहा = कामधेनु। नहिकै = जोत कर।

पद्यार्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि ऐसी सुन्दर भारतभूमि में अच्छे कुल में जन्म लेकर, सुन्दर मानव शरीर और संतों का समाज पाकर, क्रोध छोड़कर तथा कठोर वर्षा, जाड़ा, हवा और धूप सदैव बरदाश्त करके, चातक की भांति अनन्य भाव से जो श्रीरामचन्द्रजी का भजन करता है वही चतुर है। जो ऐसा न करके अन्य साधनों से सुख प्राप्त करना चाहता है उसका प्रयत्न वैसे ही वृथा होता है जैसे सोने के हल में कामधेनु जोत कर विष बोना।

अलंकार—ललित।

सो सुकृती, सुचिमंत, सुसंत, सुजान, सुसील-सिरोमनि स्वै।
सुर तीरथ तासु मनावत आवत, पावन होत हैं ता तन छ्वै॥
गुनगेह, सनेह को भाजन सो, सवही सों उठाइ कहौं भुज द्वै।
सतिभाय सदा छल छाँड़ि सवै 'तुलसी' जो रहै रघुवीर को ह्वै॥३४

शब्दार्थ—स्वै = वही। उठाइ कहौं भुज द्वै = दोनों भुजाओं को उठाकर कहता हूँ, घोषणा करके कहता हूँ।

पद्यार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि मैं दोनों भुजाओं को उठाकर सब से कहता हूँ कि जो स्वभाव से ही छल कपट छोड़कर रामचन्द्रजी

का भजन करता है वही गुणी, स्नेह का पात्र, पुण्यात्मा, पवित्र, संत, चतुर और बड़ा ही शीलवान है। तीर्थों और देवता उसको अपने यहां आने के लिये मनाते हैं और वे उसको छूने से अपने को पवित्र समझते हैं।

अलंकार—अतिशयोक्ति।

सो जननी, सो पिता, सोइ भाइ, सो भामिनि, सो सुत, सो हित मेरो।
सोई सगो, सो सखा, सोइ सेवक, सो गुरु, सो सुर, साहिब चेरो॥
सो 'तुलसी' प्रिय प्रान समान, कहाँ लौं बनाइ कहौं बहुतेरो।
जो तजि देह को गेह को नेह, सनेह सों राम को होइ सवेरो।३५।

शब्दार्थ—चेरो = दास। सवेरो = शीघ्र।

पद्यार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जो शरीर और घर से नेह का नाता छोड़ कर शीघ्र रामचन्द्रजी से प्रेम करने लगता है वही मेरे लिये माता, पिता, भाई, स्त्री, पुत्र, हितैषी, सगा, मित्र, सेवक, गुरु, देवता, स्वामी और दास सब कुछ है और मैं कहां तक बना कर कहूँ, वही मुझे प्राणों के समान प्यारा है।

अलंकार—तुल्ययोगिता।

राम हैं मातु पिता गुरु बंधु औ संगी सखा सुत स्वामि सनेही।
राम की सौंह, भरोसो है राम को, राम रँग्यो रुचि राच्यो न केही॥
जीयत राम, मुए पुनि राम, सदा रघुनाथहि की गति जेही।
सोई जियै जग में 'तुलसी', न तु डोलत और मुए धरि देही॥३६॥

शब्दार्थ—राच्यो न केही = किसी से प्रेम नहीं किया। सौंह = संमुख।

पद्यार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि रामचन्द्रजी ही जिनके माता, पिता, गुरु, बन्धु, साथी, मित्र, स्वामी और स्नेही हैं, जिनका मन सदा रामचन्द्रजी के संमुख रहता है, जिनको रामचन्द्रजी ही का भरोसा है, जो रामचन्द्रजी के ही प्रेम में मग्न रहते हैं, और उनको छोड़ कर और किसी के प्रति अनुरक्त नहीं होते, जो जीते मरते सदा रामचन्द्रजी का स्मरण करते हैं और जो सदा रामचन्द्रजी को ही अपना आश्रयदाता समझते हैं, वास्तव में वे ही संसार में जीते हैं और लोग शरीर धारण करते हुए भी मुर्दे की तरह घूमते फिरते हैं।

अलंकार—तुल्ययोगिता।

सियराम-सरूप अगाध अनूप विलोचन-मीननु को जलु है।
स्तुति रामकथा, मुख रामको नाम, हिये पुनि रामहि को थलु है॥
मति रामहिं सों, गति रामहिं सों, रति राम सो रामहिं को बलु है।
सब की न कहैं 'तुलसी' के मते इतनो जग जीवन को फल है॥३७॥

शब्दार्थ—स्तुति = कान। थलु = स्थान। रति = प्रेम। गति = पहुँचा।

पद्यार्थ—सीता और राम का अनुपम स्वरूप जिनके नेत्र रूपी मछलियों के लिये अथाह जल के समान है, जो कानों से सदैव रामचन्द्रजी की कथा सुनते रहते हैं और मुख से रामचन्द्रजी का ही नाम जपते रहते हैं, जिनके हृदय में रामचन्द्रजी का ही निवास है, जिनकी बुद्धि सदैव रामचन्द्रजी के ही विषय में विचारती रहती है, जिनकी पहुँच रामचन्द्रजी ही तक है, जिनका रामचन्द्रजी ही से प्रेम है और जिनको रामचन्द्रजी के ही बल का भरोसा है तुलसीदास जी अपनी सम्मति कहते हैं कि उनका ही संसार में जीना सफल है और लोगों की क्या राय है मैं नहीं जानता।

दसरत्थ के दानि-सिरोमनि राम, पुरान-प्रसिद्ध सुन्यो जसु मैं।
नर नाग सुरासुर जाचक जो तुम सों मनभावत पायो न कैं॥
'तुलसी' कर जोरि करै बिनती जो कृपाकरि दीनदयालु सुनैं।
जेहि देह सनेह न रावरे सों असि देह धराइ कै जाय जियैं॥३८॥

शब्दार्थ—जाय = व्यर्थ।

पद्यार्थ—हे दशरथ के पुत्र, दानियों में शिरोमणि श्रीरामचन्द्रजी आप पुराणों में प्रसिद्ध हैं, आपका यश मैंने सुना है। मनुष्य, सर्प, देवता, राक्षस जिसने याजक बनकर आप से मांगा है उनमें से किसने मुँह मांगा नहीं पाया है। तुलसीदास हाथ जोड़ कर विनती करते हैं कि हे दीनदयाल रामचन्द्र जी यदि आप मेरी प्रार्थना सुनें तो मेरी इच्छा भी पूरी हो जाय। जिस देहधारी को रामचन्द्र जी से प्रेम नहीं है उसका संसार में शरीर धारण कर जीना व्यर्थ है।

अलंकार—तुल्ययोगिता।

'झूठो है' झूठो है, झूठो सदा जग' संत कहंत जे अंत लहा है।
ताको सहै सठ संकट कोटिक, काढ़त दंत, करंत हहा है॥
जानपनी को गुमान बड़ो, 'तुलसी' के बिचार गँवार महा है।
जानकी जीवन जान न जान्यो तौ जान कहावत जान्यो कहा है॥३९॥

शब्दार्थ—अंत लहा है = अन्त पाया है। काढ़त दंत = दाँत काढ़ता है, दुखी होकर प्रार्थना करता है। करंत हहा है = हँसते हैं। जानपनी = ज्ञानीपना। जान = ज्ञान।

पद्यार्थ—जिन संतों ने संसार का अन्त पाया है वे कहते हैं कि संसार झूठा (साररहित) है। उसी के लिये ऐ दुष्ट, तू करोड़ों संकट सहता है, विनती करता है और उससे प्राप्त सुख से प्रसन्न होता है।

तुझे अपने ज्ञानीपने का बड़ा अभिमान है, लेकिन तुलसीदासजी के मत से तू महामूर्ख है। यदि तू ने जानकी जीवन रामचन्द्र जी को नहीं जाना तो क्या जान कर ज्ञानी कहलाता है ?

अलंकार—पुनरुक्ति-प्रकाश।

तिन्ह तें खर सूकर स्वान भले, जड़तावस ते न कहैं कछुवै।
'तुलसी' जेहि राम सों नेह नहीं सो सही पसु पूँछ विखान न द्वै॥
जननी कत भार मुई दस मास भई किन बाँझ, गई किन च्वै।
जरि जाउ सो जीवन, जानकिनाथ! जियै जग में तुम्हरो विन ह्वै।४०।

शब्दार्थ—विखान = सींग। गई किन च्वै = उसका गर्भ क्यों नहीं चू गया ?

पदार्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि जिसको रामचन्द्र जी से प्रेम नहीं है वह पूँछ और सींग से रहित सचमुच पशु है। उनसे तो गधे, सूअर और कुत्ते भले हैं, जो जड़ होने के कारण कुछ कह नहीं सकते। ऐसे पुत्र को माता ने दस महीने तक गर्भ में क्यों धारण किया, उसका गर्भ गिर क्यों न गया अथवा वह बांझ क्यों न हो गई ? हे जानकी-जीवन रामचन्द्र जी, जो आपके विना संसार में जीता है उसका जीना संसार में व्यर्थ है।

गज-बाजि-घटा, भले भूरि भटा, बनिता सुत भौंह तकैं सब वै।
धरनी धन धाम सरीर भलो, सुरलोकहु चाहि इहै सुख स्वै॥
सब फोटक साटक है 'तुलसी', अपनो न कछू, सपनो दिन द्वै।
जरि जाउ सो जीवन जानकीनाथ! जियै जगमें तुम्हरो विनु ह्वै॥

शब्दार्थ—घटा = झुंड। भूरि भटा = योधाओं का समूह। भौंह तकैं = रुख देखते हैं। वै = ही। चाहि = बढ़कर। स्वै = वही। फोटक = व्यर्थ, साररहित। साटक = भूसी।

पद्यार्थ—अपने पास हाथी, घोड़ा, अच्छे अच्छे योधाओं का समूह, स्त्री, पुत्र सब ही आज्ञाकारी हैं, तथा अपने पास जमीन, धन घर और अच्छा शरीर है और इसी संसार में स्वर्ग से भी बढ़कर सुख है। तुलसीदास जी कहते हैं कि ये सब सुख भूसी के समान सार-रहित हैं, अपना कुछ भी नहीं है, सब कुछ थोड़े दिनों के लिये सपना के समान है। हे श्रीरामचन्द्र जी! उस मनुष्य का जीवन जल जाय जो संसार में तुम्हारा न होकर रहे।

अलंकार—तिरस्कार।

सुरराज सो राज-समाज, समृद्धि विरंचि, धनाधिप सो धन-भो।
पवमान सो, पावक सो, जम-सोम सो, पूषन सो, भवभूषन भो॥
करि जोग, समीरन साधि, समाधि कै, धीर बड़ो, बसहू मन भो।
सब जाय सुभाय कहै 'तुलसी' जो न जानकि जीवन को जन भो॥४२॥

शब्दार्थ—विरंचि = ब्रह्मा। धनाधिप = कुबेर। भो = हुआ। पवमान = पवन। पावक = अग्नि। सोम = चन्द्रमा। पूषन = सूर्य। भवपूषन = संसार में श्रेष्ठ। समीरन साधि = प्राणायाम करके।

पद्यार्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि अगर इन्द्र के समान विशाल राज्य वाला हो, ब्रह्मा के समान ऐश्वर्यशाली हो, कुबेर के समान धनी हो, पवन के समान बली हो, अग्नि के समान तेजस्वी हो, यमराज के समान दण्डधारी हो, चन्द्रमा के समान शीतल हो, सूर्य के समान प्रकाशवान हो तथा संसार में शिरोमणि हो और योगाभ्यास तथा प्रणायाम की क्रिया आदि करके समाधि लगाता हो, बड़ा धैर्य-शाली हो, और मन को वश में कर लिया हो, लेकिन वह रामचन्द्र जी का भक्त न हो तो सभी कुछ व्यर्थ है।

अलंकार—मालोपमा।

काम से रूप, प्रताप दिनेस से, सोम से सील, गनेस से माने।
हरिचंद से साँचे, बड़े विधि से, मघवा से महीप विषै-सुख साने॥
सुक से मुनि, सारद से बकता, चिरजीवन लोमस तें अधिकाने।
ऐसे भए तौ कहा 'तुलसी' जुपै राजिव-लोचन राम न जाने॥४३॥

शब्दार्थ—माने = माननीय। मघवा = इन्द्र।

पद्यार्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि अगर कामदेव के समान रूप हो, सूर्य के समान प्रताप हो, चन्द्रमा के समान शीतलता हो, गणेश के समान माननीय हो, हरिश्चन्द्र के समान सच्चा हो, ब्रह्मा जैसा बड़ा हो, इन्द्र जैसा विषय-सुख के सम्पन्न राजा हो, शुक जैसा ज्ञानी मुनि हो, सरस्वती के समान वक्ता हो, और लोमश ऋषि से भी अधिक आयुवाला हो, लेकिन कमल के समान नेत्रवाले रामचन्द्र जी को न जानता हो, तो ऐसे होने से क्या लाभ है?

अलंकार—मालोपमा।

झूमत द्वार अनेक मतंग जँजीर जरे मदअंबु चुचाते।
तीखे तुरंग मनोगति चंचल, पौन के गौनहुँ तें बढ़ि जाते॥
भीतर चंद्रमुखी अवलोकति, बाहर भूप खरे न समाते।
ऐसे भए तौ कहा 'तुलसी' जुपै जानकीनाथ के रंग न राते॥ ४४॥

शब्दार्थ—मतंग = मतवाले हाथी। मदअम्बु = मदजल। चुचाते = टपकाते हो।

पद्यार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि अगर दरवाजे पर जंजीर से जकड़े हुए और गंडस्थल से मदजल टपकाते हुए अनेकों मतवाले हाथी झूमते हों, मन के समान चंचल और हवा से भी अधिक तीव्र-गामी घोड़े हों, महल के अन्दर उसकी चन्द्रमा के समान मुखवाली स्त्री

राह देखनी हो, और बाहर दरवाजे पर राजाओं को भी खड़े होने की जगह न हो, लेकिन वह रामचन्द्रजी के रङ्ग में न रँगा तो सब कुछ होना व्यर्थ है।

अलंकार—तिरस्कार।

राज सुरेस पचासक को, विधि के कर को जो पटो लिखि पाए।
पूत सुपूत, पुनीत प्रिया, निज सुंदरता रति को मद नाए।
संपति सिद्धि सबै 'तुलसी' मन की मनसा चितवैं चित लाए।
जानकिजीवन जाने बिना जग ऐसेउ जीव न जीव कहाए॥ ४५॥

शब्दार्थ—पचासक = पचासों। पट = प्रमाण पत्र। मदनाए = घमंड चूर कर देती हैं। मनसा = इच्छा। जाए = व्यर्थ।

पद्यार्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि स्वयं ब्रह्मा के हाथ के लिखे प्रमाणपत्र द्वारा पचासों इन्द्र के बराबर राज्य पाया हो, योग्य पुत्र हो, स्त्री पतिव्रता हो जो अपनी सुन्दरता से रति को भी मात करती हो, और सारी ऋद्धि सिद्धियां मन लगाकर उसकी इच्छा की प्रतीक्षा करती हों, लेकिन जानकीनाथ श्रीरामचन्द्र जी को जाने बिना ऐसा सुखी मनुष्य भी मनुष्य नहीं कहलाता।

अलंकार—ललितोपमा।

कृसगात ललात जो रोटिन को, घरवात धरै खुरपा खरिया।
तिन सोने के मेरु से ढेरु लहे, मन तौ न भरो घर पै भरिया॥
'तुलसी, दुख दूनो दसा दुहुँ देखि, कियो मुख दारिद को करिया।
तजि आस भो दास रघुप्पति को, दसरत्थको दानि दया-दरिया।४६

शब्दार्थ—कृसगात = दुबला शरीर वाला। घरवात = घर का सामान। खरिया = घास बांधने की जाली। पै = पर।

पद्यार्थ—जो दुर्बल शरीर वाले रोटी के लिये तरस रहे थे, जिनके घर का सामान खुर्पा और खरिया था, उन्हें भाग्यवश सोने का पहाड़ ही मिल गया जिससे उनका घर तो भर गया किन्तु मन न भरा अर्थात् संतोष न हुआ। तुलसीदास जी कहते हैं कि इन दोनों दशाओं में दुख ही दुख देख कर मैंने दरिद्रता का मुख काला कर दिया अर्थात् दरिद्रता की परवा ही नहीं की और सब आशाओं को छोड़ कर दशरथ के पुत्र दया के समुद्र दानी श्रीरामचन्द्रजी का दास हो गया।

अलंकार—विशेषोक्ति।

को भरिहै हरि के रितये, रितवै पुनि को हरि जौ भरिहै।
उथपै तेहि को जेहि राम थपै? थपिहै तेहि को हरि जो टरिहै?॥
'तुलसी' यह जानि हिये अपने सपने नहिं कालहु तें डरिहै।
कुमया कछु हानि न औरन की जोपै जानकीनाथ मया करिहै।४७

शब्दार्थ—रितये = खाली करना। उथपै = उजाड़ना, उखाड़ना। कुमया = क्रोध।

पद्यार्थ—जिसको रामचन्द्रजी खाली कर दें उसको कौन भरने वाला है, जिसे रामचन्द्रजी भर दे उसे फिर कौन खाली कर सकता है? जिसे रामचन्द्रजी बसा दें उसे कौन उजाड़ सकता है? जिसको रामचन्द्रजी स्थानच्युत कर दे उसे कौन स्थापित कर सकता है? तुलसीदासजी कहते हैं कि हृदय में यह जान कर स्वप्न में भी मैं काल से भी नहीं डरता। अगर रामचन्द्रजी की कृपा है तो और लोग क्रोध करके मेरा क्या बिगाड़ लेंगे।

व्याल कराल, महाबिष, पावक, मत्तगयंदहु के रद तोरे।
साँसति संकि चली, डरपे हुते किंकर, ते करनी मुख मोरे॥

नेकु विपाद नहीं प्रह्लादहि, कारन केहरि केवल हो रे।
कौन की त्रास करै 'तुलसी', जो पै राखिहै राम तो मारि है को रे ४८॥

शब्दार्थ—रद = दांत। सांसति = यातना। हुते = थे। नेकु = थोड़ा।

पद्यार्थ—हिरण्यकश्यप ने प्रह्लाद के ऊपर भयंकर सांप छोड़वाए (लेकिन वे भाग गए), भयंकर विष दिया (लेकिन उसका कुछ असर न पड़ा), आग में जलवाया (लेकिन आग ठंढी हो गई) मतवाले हाथियों के नीचे फेंकवा दिया लेकिन उनके दांत भी ईश्वर ने तोड़ दिये। जितनी भी यातनाएँ कीं सब डर कर भग गईं और यातना करने वाले जो नौकर थे उन्होंने अपना काम करने से मुँह मोड़ लिया, प्रह्लाद को ज़रा भी दुख न हुआ क्योंकि उन्हें नरसिंह भगवान का बल था। तुलसीदासजी कहते हैं कि जिसकी रामचन्द्र जी रक्षा करते हैं उसको कौन मार सकता है? फिर किसी से क्यों डरा जाय?

अलंकार—अर्थान्तरन्यास।

कृपा जिनकी कछु काज नहीं, न अकाज कछू जिनके मुख मोरे।
करैं तिनकी परवाहि ते, जो बिनु पूँछ बिपान फिरैं दिन दौरे॥
'तुलसी' जेहि के रघुनाथ से नाथ, समर्थ सु सेवत रीझत थोरे।
कहा भव-भीर परो तेहि धौं, विचरै धरनी तिनसों तिन तोरे॥४६

शब्दार्थ—विपान = पसु। रीझत = प्रसन्न होते हैं। तिन तोरे = तृण तोड़कर, सम्बन्ध तोड़कर।

पद्यार्थ—जिनकी कृपा से कुछ प्राप्त नहीं होता और न जिनके मुख मोड़ने से (विरुद्ध होने से) कुछ हानि ही होती है, उनकी वे ही परवा कर सकते हैं जो विना पूँछ के पशु की तरह इधर उधर

दौड़ते फिरते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि जिसके रामचन्द्र जी के समान स्वामी हैं, जो थोड़ी ही सेवा से प्रसन्न हो जाते हैं उस पर सांसारिक कष्ट किस प्रकार पड़ सकते हैं? वह तो उन (कष्टों) से सम्बन्ध तोड़ कर पृथ्वी पर निर्भय विचरता फिरता है।

अलंकार—रूपक।

कानन, भूधर, बारि, बयारि, महाविष, व्याधि, दवा, अरि घेरे।
संकट कोटि जहाँ 'तुलसी' सुत मातु पिता हित बंधु न नेरे॥
राखिहैं राम कृपालु तहाँ, हनुमान से सेवक हैं जेहि केरे।
नाक, रसातल, भूतल में रघुनायक एक सहायक मेरे॥ ५०॥

शब्दार्थ—दवा = दावानल। नेरे = पास। नाक = स्वर्ग। रसातल = पाताल।

पद्यार्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि वन में, पहाड़ पर, जल में, हवा में, भयंकर विष खाने पर, रोग होने पर, दावाग्नि में पड़ने पर, शत्रु के घेरे में पड़ने पर तथा जहां करोड़ों आपदाएँ आ पड़ें और पुत्र, माता, पिता, हितैषी, मित्र और भाई कोई पास न हों वहां दयालु रामचन्द्र जी मेरी रक्षा करेंगे जिनके हनुमान जैसे (समर्थ) सेवक हैं। स्वर्ग में, पाताल में तथा पृथ्वी पर एक रामचन्द्र जी ही मेरे सहायक हैं।

अलंकार—आत्मतुष्टि प्रमाण।

जौंवै जमराज रजायसु तें मोहिं लै चलिहैं भट बाँधि नटैया।
तात न मात न स्वामि सखा सुत बंधु बिसाल बिपत्ति बँटैया॥
साँसति घोर, पुकारत आरत, कौन सुनै चहुँ ओर डँटैया।
एक कृपालु तहाँ 'तुलसी' दसरत्थ को नंदन बंदि कटैया॥ ५१॥

शब्दार्थ—जौबै = जब। रजायसु = आज्ञा। भट = यमराज के दूत। नटैया = गर्दन। बँटैया = बाँटने वाला। साँसति = कष्ट। आरत = दीन, दुखी। डँटैया = डाँटने वाला। बंदि कटैया = बंधन को काटने वाला।

पद्यार्थ—जब यम की आज्ञा से उनके दूत मेरी गर्दन पकड़ कर ले चलेंगे उस समय पिता, माता, स्वामी, मित्र, पुत्र या भाई उस बड़ी विपत्ति में हाथ बटाने वाला कोई न होगा। घोर कष्ट से दुखी होकर चिल्लाने पर मेरी दुख भरी आवाज़ पर कौन ध्यान देगा? चारों तरफ डांटने ही वाले रहेंगे। तुलसीदास जी कहते हैं कि उस समय बन्धन को काटने वाले दशरथ के पुत्र कृपालु रामचन्द्र जी ही हैं।

जहाँ जमजातना, घोर-नदी, भट कोटि जलच्चर दंत टेवैया।
जहँ धार भयंकर वार न पार, न बोहित, नाव न नीक खेवैया॥
'तुलसी' जहँ मातु पिता न सखा, नहिं कोउ कहूँ अवलंब देवैया।
तहाँ बिनु कारन राम कृपालु बिसाल भुजा गहि काढ़ि लेवैया।५२

शब्दार्थ—जमजातना = यम की पीड़ा। दंत टेवैया = दाँत तेज़ करने वाले। बोहित = जहाज।

पद्यार्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि जहां पर यमराज के करोड़ों दूत कष्ट पहुँचाने वाले हैं, तेज़ दांत वाले जलजीवों से भरी हुई वैतरणी नदी है जिसकी भयंकर धारा की ओर छोर नहीं है, जिस नदी में न नाव है, न जहाज़ है, न चतुर खेने ही वाला है। जहां पर माता, पिता, मित्र कोई भी सहायता देने वाला नहीं है, वहां पर अपनी लंबी भुजाओं से पकड़ कर निकाल लेने वाले बिना कारण कृपा करने वाले श्रीरामचन्द्र जी ही हैं।

जहाँ हित, स्वामि, न संग सखा, वनिता, सुत, बंधु न, बापु न मैया।
काय गिरा मन के जन के अपराध सबै छल छाँड़ि छमैया॥
'तुलसी' तेहि काल कृपालु बिना दूजो कौन है दारुन दुःख दमैया।
जहाँ सब संकट दुर्घट सोच तहाँ मेरो साहब राखै रमैया॥५३॥

शब्दार्थ—दमैया = दमन करने वाला। दुर्घट = कठिन।

पद्यार्थ—जहां पर कोई मित्र, स्वामी, संगी, साथी, स्त्री, पुत्र, भाई, बाप, मां कोई नहीं है, तुलसीदासजी कहते हैं कि वहां पर लोगों के मन, वचन और कर्म से किए हुए अपराधों को छल छोड़ कर क्षमा करने वाला तथा कठिन दुख का नाश करने वाला कृपालु रामचन्द्रजी के बिना दूसरा कौन है? जहां पर सब कठिन संकट और सोच हैं वहां पर मेरे स्वामी रामचन्द्रजी रक्षा करने वाले हैं।

तापस को बरदायक देव, सबै पुनि बैर बढ़ावत बाढ़े।
थोरेहि कोप कृपा पुनि थोरेहिं, बैठिकै जोरत तोरत ठाढ़े॥
ठोंकि बजाय लखे गजराज, कहाँ लौं कहौं केहि सों रद काढ़े?
आरत के हित नाथ अनाथ के राम सहाय सही दिन गाढ़े॥५४॥

शब्दार्थ—बाढ़े = बढ़ने पर, बलवान होने पर। रद काढ़े = दाँत निकाला, विनती किया। दिन गाढ़े = दुर्दिन पड़ने पर।

पद्यार्थ—सब देवता तपस्वियों को वरदान देने वाले हैं और फिर तपस्वियों के बढ़ जाने पर सभी देवता उनसे बैर करने लगते हैं। वे थोड़े ही में गुस्सा हो जाते हैं और थोड़े ही में दयालु हो जाते हैं। वे बैठते समय (थोड़ी ही देर में) प्रेम जोड़ते हैं और खड़ा होते समय (शीघ्र ही) प्रेम को तोड़ देते हैं। गजराज ने उन देवताओं की अच्छी तरह से जांच की। मैं कहां तक कहूँ उसने किस किसके

सामने प्रार्थना न की। (अंत में उसे पता चला कि) दुखियों के हितैषी, अनाथों के नाथ, तथा दुर्दिन पड़ने पर सच्चे सहायक श्रीरामचन्द्रजी ही हैं।

जप, जोग, विराग, महामख-साधन, दान दया, दम, कोटि करै।
मुनि, सिद्ध, सुरेस, गनेस, महेस से सेवत जन्म अनेक मरै॥
निगमागम ज्ञान, पुरान पढ़ै, तपसानल में जुग-पुंज जरै।
मन सों पन रोपि कहै 'तुलसी' रघुनाथ बिना दुख कौन हरै ? ५५॥

शब्दार्थ—महामख = महायज्ञ। निगमागम = वेद-शास्त्र। तपसानल = तपस्या की अग्नि। जुग-पुंज = कई युगों तक। पन रोपि कहै = ज़ोर देकर कहते हैं।

पद्यार्थ—चाहे कोई जप, योग, वैराग्य, महायज्ञों का अनुष्ठान; दान, दया, इन्द्रियों का दमन आदि करोड़ों उपाय करे और मुनि, सिद्ध, इन्द्र, गणेश, शिव जी जैसे देवताओं की सेवा करते करते अनेकों जन्म बितादे, वेद शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करले, पुराणों को पढ़ डाले और अनेको युग तक तपस्या की आग में जलता रहे, लेकिन तुलसीदासजी मन से जोर देकर कहते हैं कि रामचन्द्रजी के बिना कोई भी दुख को हरने वाला नहीं है।

अलंकार—रूपक।

पातक पीन, कुदारिद दीन, मलीन धरे कथरी करवा है।
लोक कहै बिधि हू न लिख्यो, सपने हूँ नहीं अपने बर बाहै॥
राम को किंकर सो 'तुलसी' समुझेहि भलो कहिबो न रवा है।
ऐसे को ऐसो भयो कबहूँ न, भजे बिन बानर के चरवाहै ॥५६॥

शब्दार्थ—पीन = मोटा। कथरी = फटे वस्त्र। करवा = मिट्टी का बर्तन। बर = बल। बाहैं = बाँह। रवा = उचित। बानर के चरवाहे = बन्दरों को चरानेवाले, श्रीरामचंद्रजी।

पद्यार्थ—अत्यन्त पापी, दरिद्रता से दीन मैला कुचैला, फटे पुराने कपड़े और मिट्टी का बर्तन धारण किए हुए ऐसे आदमी को देख कर लोग कहते हैं कि ब्रह्मा ने भी इसके भाग्य में कुछ सुख न लिखा, इसकी भुजाओं में बल भी नहीं है। तुलसीदासजी कहते हैं कि ऐसे मनुष्य भी यदि रामचन्द्रजी के दास हो जांय तो उनकी दशा समझने योग्य हो जायगी, उसे कहना उचित नहीं है। बन्दरों को चरानेवाले रामचन्द्रजी के भजन के बिना ऐसे अभागे कभी भाग्यशाली नहीं हो सकते।

मातु पिता जग जाय तज्यो बिधि हू न लिखी कछु भाल भलाई।
नीच, निरादर-भाजन, कादर, कूकर टूकन लागि ललाई॥
राम-सुभाउ सुन्यो 'तुलसी' प्रभु सों कह्यो बारक पेट खलाई।
स्वारथ को परमारथ को रघुनाथ सो साहब खोरि न लाई॥५७॥

शब्दार्थ—जग जाय = संसार में पैदा होते ही। टूकन = टुकड़ा—ललाई = लालायित रहता था। बारक = एक बार। पेट खलाई = पेट का खालीपन, पेट की भूख। खोरि न लाई = कमी न की।

पद्यार्थ—तुलसीदासजी अपने सम्बन्ध में कहते हैं कि पैदा होते ही मुझे माता पिता ने छोड़ दिया, ब्रह्मा ने भी मेरे भाग्य में कुछ अच्छा न लिखा। मैं बिल्कुल नीच, अनादर का पात्र तथा कायर था और कुत्ते के टुकड़े के लिये भी लालायित रहता था। लेकिन रामचन्द्रजी के स्वभाव को सुनकर एक बार अपने पेट की भूख को

बतलाया। जिसको सुनकर रामचन्द्रजी के समान समर्थ स्वामी ने मुझे लौकिक तथा पारलौकिक सुखों को पहुँचाने में कोई कमी न की।

पाप हरे, परिताप हरे, तन पूजि भो हीतल सीतलताई।
हंस कियो बक तें बलि जाउँ, कहाँ लौं कहौं करुना अधिकाई॥
काल बिलोकि कहै 'तुलसी' मन में प्रभु की परतीति अघाई।
जन्म जहाँ तहँ रावरे सों निबहै भरि देह सनेह सगाई॥ ५८॥

शब्दार्थ—परिताप = दुख। हीतल = हृदय। भरि देह = जीवन भर।

पदार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि हे रामचन्द्रजी आपने मेरे पापों और दुखों को हरण कर लिया है जिससे मेरा शरीर पूज्य और हृदय शीतल हो गया। आपने मुझे बगुले से हंस बना दिया अर्थात् मूर्ख से ज्ञानी बना दिया। आपकी दया की अधिकता को कहां तक कहूँ मैं उस पर निछावर होता हूँ। हे स्वामी, आपके प्रेम में मुझे पूरा विश्वास है इसलिये अपना अन्तकाल निकट देखकर कहता हूँ कि जहां जहां मैं जन्म लूँ वहां वहां भर जन्म पर आप से प्रेम का सम्बन्ध निभता रहे।

अलंकार—ललित।

लोग कहैं अरु हौं हूँ कहौं 'जन खोटो खरो रघुनायक ही को'।
रावरी राम बड़ी लघुता, जस मेरो भयो सुखदायक ही को॥
कै यह हानि सहौ बलि जाउँ कि मोहूँ करौं निज लायक ही को।
आनि हिए हित जानि करौ ज्यौं हौं ध्यान धरौं धनुसायक ही को॥५६॥

शब्दार्थ—खोटो खरो = बुरा भला। ही = हृदय। लघुता = हीनता।

पद्यार्थ—लोग कहते हैं और मैं भी कहता हूँ कि चाहे मैं भला बुरा जैसा भी हूँ आपका सेवक हूँ। हे रामचन्द्रजी, इसमें आपकी बड़ी हीनता है। लेकिन आप जैसे स्वामी का सेवक होने से मुझे जो सुख मिला वह मेरे हृदय को शान्ति देने वाला हुआ। मैं बलि जाता हूँ या तो आप यह हानि (अपमान) बरदाश्त कीजिये या मुझे अपना योग्य सेवक बनाइये। अपने हृदय में यह विचार कर और मेरा भला जान कर ऐसा कीजिए जिससे मैं आपके धनुषधारी रूप का ध्यान धरूं।

अलंकार—विकल्प।

आपु हौं आपुको नीके कै जानत, रावरो राम ! भरायो गढ़ायो।
कीर ज्यों नाम रटै 'तुलसी' सो कहै जग जानकीनाथ पढ़ायो॥
सोई है खेद, जो बेद कहै, न घटै जन जो रघुबीर बढ़ायो।
हौं तो सदा खर को असवार, तिहारोई नाम गयंद चढ़ायो॥६०॥

शब्दार्थ—भरायो गढ़ायो = बनाया, सँवारा। खर = गधा।

पद्यार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि मैं अपने को अच्छी तरह से जानता हूँ कि मैं आप ही का बनाया सवांरा हूँ। संसार यह कहता है कि इसको रामचन्द्रजी ने पढ़ाया है इसीसे यह तोते की तरह राम नाम जपता है, लेकिन इसके हृदय में राम के प्रति प्रेम नहीं है। इसी बात का मेरे दिल में दुख है। वेद कहता है कि जिसको रामचन्द्रजी बढ़ाते हैं वह कभी घटता नहीं है। मैं तो सदा से गधे पर चढ़ने वाला था, आप ही के नाम ने मुझे हाथी पर चढ़ाया अर्थात् मैं सदा से निरादर का पात्र था आपही के नाम ने मुझे प्रतिष्ठित बनाया।

अलंकार—ललित।

(कवित्त)

छार तें सँवारि कै पहार हू तें भारी कियो,
गारो भयो पंच में पुनीत पच्छ पाइकै।
हौं तौ जैसो तब तैसो अब, अधमाई कै कै
पेट भरौं राम रावरोई गुन गाइकै॥
आपने निवाजे की पै कीजै लाज, महाराज!
मेरी ओर हेरिकै न बैठिए रिसाइकै।
पालिकै कृपालु ब्याल-बाल को न मारिए,
औ काटिए न, नाथ! विषहू को रूख लाइकै॥६१॥

शब्दार्थ—छार = धूल। गारो = बड़ाई। ब्याल-बाल = सर्प का बच्चा।

पद्यार्थ—हे रामचन्द्रजी, आपने मुझे धूल से सँवार कर पहाड़ से भी भारी बना दिया। मैं आपका पवित्र पच्छ पाकर के लोगों में बड़ाई के योग्य हो गया। मैं तो जैसा पहले था वैसा अब भी हूँ और आपका गुण गा गा कर के नीचता से पेट भरता फिरता हूँ। हे महाराज, आप अपने शरण में आए हुए की लज्जा कीजिये, मेरे बुरे कर्मों की ओर देख कर गुस्सा न हो बैठिये। हे कृपालु रामचन्द्रजी, सांप के बच्चे को भी पाल कर लोग नहीं मारते और न विष के पेड़ को लगा कर उसे काटते हैं।

अलंकार—लोकोक्ति।

वेद न पुरान गान, जानौं न बिज्ञान ज्ञान,
ध्यान, धारना, समाधि, साधन-प्रवीनता।

नाहिंन बिराग, जोग, जाग, भाग 'तुलसी' के
दया-दीन-दूबरौ हौं, पाप ही की पीनता ॥
लोभ-मोह-काम-कोह-दोषकोष मोसो कौन ?
कलिहू जो सीखि लई मेरियै मलीनता ।
एक ही भरोसो राम रावरो कहावत हौं,
रावरे दयालु दीनबंधु, मेरी दीनता ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ—कोह = क्रोध । दोष कोष = दोष का भण्डार ।

पदार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि हे रामचन्द्रजी, न मैं वेद ही पढ़ना जानता हूँ न पुराण, न मुझ में ज्ञान ही विज्ञान है, और न मैं ध्यान, धारणा तथा समाधि लगाने में ही चतुर हूँ, और न मेरे भाग्य में वैराग्य, योग और यज्ञादि करना ही लिखा है । मैं दया दानादि करने में तो कमज़ोर हूँ, परन्तु पाप की मोटाई मुझ पर चढ़ी हुई है । मेरे समान काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि दोषों का भण्डार दूसरा कौन है ? कलियुग ने भी मुझ से ही कुटिलता सीखी है । हे रामचन्द्र जी मुझे केवल यही भरोसा है कि मैं आपका कहलाता हूँ, और आप कृपालु और दीनों के बन्धु हैं और मैं दीन हीन हूं (अर्थात् यदि आप दीनबन्धु और दयालु हैं तो आप को मुझ दीन पर अवश्य ही दया करनी पड़ेगी) ।

रावरो कहावौं, गुन गावौं राम रावरोई,
रोटी द्वै हौं पावौं राम रावरी ही कानिहौं ।
जानत जहान, मन मेरे हू गुमान बड़ो,
मान्यो मैं न दूसरो, न मानत, न मानिहौं ॥
पाँच की प्रतीति न, भरोसो मोहिं आपनोई,
तुम अपनायो हौं तबैहीं परि जानिहौं ।

गढ़ि गुढ़ि, छोलि छालि कुंद की सी भाई बातैं,
जैसी मुख कहौं तैसी जीय जब आनिहौं ॥ ६३ ॥

शब्दार्थ—कानि = लाज। कुंद की सी भाई = खराद पर चिकनी की हुई।

पद्यार्थ—हे रामचन्द्रजी मैं आपही का सेवक कहलाता हूँ और आप ही का गुण गाता हूँ और आपही की लाज से दो रोटी पाता हूं। इस बात को सारा संसार जानता है और मुझे भी इस बात का बड़ा अभिमान है कि मैंने आपके सिवा दूसरे किसी को नहीं माना, मानता हूँ और न मानूँगा। मुझे पंच देवों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणेश और सूर्य) का विश्वास नहीं है और न अपना ही विश्वास है। आप मुझे अपनायँगे इस बात को मैं तभी जानूँगा जब खराद पर चढ़ा कर चिकनी की हुई लकड़ी ती तरह चिकनी चुपड़ी बातें जो मैं मुँह से कह रहा हूँ उसे मेरे हृदय के अन्दर प्रवेश करा देंगे।

अलंकार—उपमा।

बचन बिकार, करतबऊ खुआर, मन,
बिगत-बिचार, कलिमल को निधानु है।
राम को कहाइ, नाम बेचि बेचि खाइ, सेवा
संगति न जाइ पाछिले को उपखानु है॥
तेहू 'तुलसी' को लोग भलो भलो कहैं, ताको
दूसरो न हेतु, एक नीके कै निदानु है।
लोकरीति बिदित बिलोकियत जहाँ तहाँ,
स्वामी के सनेह स्वान हू को सनमानु है॥ ६४॥

शब्दार्थ—खुआर = खराब। बिगत-बिचार = विचारों से रहित। कलिमल = पाप। उपखानु = कहावत। निदानु = कारण।

पदार्थ—जिसके वचन में विकार है, कर्म खोटे हैं, और मन बिचारों से रहित पाप का भण्डार है, जो राम का दास कहलाता है और राम का नाम बेंच कर भोजन प्राप्त करता है, किन्तु प्राचीन कहावत के अनुसार सेवा करने के डर से साधुओं की संगति में नहीं जाता, उस तुलसी को भी लोग बहुत अच्छा कहते हैं। उसका कारण दूसरा नहीं हैं, इसका निश्चित कारण यही है और लोक व्यवहार में भी प्रसिद्ध है, और यही बात जहां तहां देखने में भी आती है कि स्वामी का प्यारा कुत्ता भी सम्मान पाता है।

अलंकार—विभावना तथा उपमान-प्रमाण।

स्वारथ को साज न समाज परमारथ को,
मोसों दगाबाज दूसरो न जगजाल है।
कै न आयों, करौं न करौंगो करतूति भली,
लिखी न बिरंचि हू भलाई भूलि भाल है॥
रावरी सपथ, राम! नाम ही की गति मेरे,
इहाँ झूठो झूठो सो तिलोक तिहूँ काल है।
'तुलसी' को भलो पै तुम्हारे ही किये कृपालु!
कीजै न विलंब, बलि, पानी भरी खाल है॥ ६५॥

शब्दार्थ—गति = पहुँच।

पदार्थ—मेरे पास सांसारिक सुख के सामान नहीं हैं और न पारलौकिक सुख प्राप्त करने का ही साधन जानता हूँ। मेरे समान दूसरा दग़ाबाज इस मायावी दुनिया में नहीं है। न तो मैंने पहले ही अच्छे कर्म किये हैं, न इसी समय कर रहा हूँ, न भविष्य में करूँगा, न ब्रह्मा ने भी मेरे भाग्य में भलाई करना लिखा है। हे रामचन्द्रजी, मैं आपकी शपथ खाकर कहता हूँ कि मेरी तो पहुँच आपके नाम ही

तक है। क्योंकि आपके यहां जो झूठा है वह तीनों लोक और तीनों काल में झूठा है, उसका कोई विश्वास नहीं करता है। हे कृपालु रामचन्द्रजी, तुलसी का भला तो आप ही के द्वारा होगा। अब आप विलम्ब न कीजिये। यह देह पानी से भरी हुई खाल के समान है जो शीघ्र ही सड़ कर नष्ट हो जाती है।

अलंकार—छेकोक्ति।

राग को न साज, न बिराग जोग जाग जिय,
काया नहिं छांड़ि देत ठाटिबो कुठाट को।
मनोराज करत अकाज भयो आजु लगि,
चाहै चारु चीर पै लहै न टूक टाट को॥
भयो करतार बड़े कूर को कृपालु, पायो
नाम-प्रेम-पारस हौं लालची बराट को।
'तुलसी' बनी है राम रावरें बनाए, ना तौ,
धोबी कैसो कूकर न घर को न घाट को॥ ६६॥

शब्दार्थ—राग को न साज = लौकिक सुख का सामान नहीं है। ठाटिबो कुठाट को = बुरे बुरे उपाय करना। मनोराज = मनोरथ। चारु चीर = सुन्दर कपड़ा। बराट = कौड़ी।

पद्यार्थ—मेरे पास न तो लौकिक सुख की सामग्रियां हैं और न पारलौकिक सुख के साधन, वैराग्य, योग, यज्ञ आदि ही का मैं अनुष्ठान करता हूँ। उस पर भी यह शरीर संसारिक सुखों के लिये बुरे-बुरे उपाय करना नहीं छोड़ता। मनोरथ करते करते तो आज तक अकाज हुआ क्योंकि मैं चाहता तो सुन्दर सुन्दर कपड़े हूँ लेकिन टाट का टुकड़ा तक नहीं मिलता। कृपालु श्रीरामचन्द्रजी ने मुझ दुष्ट पर भी

अत्यन्त दया की है कि कहां तो मैं कौड़ी का लालची और पाया पारस के समान श्रीराम का नाम। तुलसीदास जी कहते हैं कि हे रामचन्द्र जी आप ही की कृपा से मेरी बनेगी, नहीं तो मैं धोबी के कुत्ते की तरह न घर का हूँ न घाट का।

अलंकार—छेकोक्ति।

ऊँचो मन, ऊँची रुचि, भाग नीचो निपट ही,
लोकरीति-लायक न, लंगर लबारु है।
स्वारथ अगम, परमारथ की कहा चली,
पेट की कठिन, जग जीव को जवारु है।
चाकरी न आकरी न खेती न बनिज भीख,
जानत न कूर कछु किसब कबारु है।
'तुलसी' को बाजी राखी राम ही के नाम, नतु
भेंट पितरन कों न मूड़ हू में बारु है॥ ६७॥

शब्दार्थ—लंगर = कुमार्गी। जवारु = जंजाल। आकरी = खान खोदने का काम। किसब = कारीगरी। कबारु = पेशा। बाजी = प्रतिज्ञा। बारु = बाल।

पद्यार्थ—मेरा मन ऊँचा है, इच्छा भी ऊँची है, लेकिन भाग्य बिल्कुल खोटा है। मैं सांसारिक कार्य के लायक भी नहीं हूँ क्योंकि मैं कुमार्गी और झूठा हूँ। मेरे लिये सांसारिक सुख पाना ही कठिन है, पारलौकिक सुख को कौन कहे। मुझे पेट पालना ही कठिन हो रहा है और संसार पर एक भार के समान हूँ। मैं न तो नौकरी करना जानता हूँ न खान खोदना ही जानता हूँ, न तो मुझसे खेती का ही काम होता है, न व्यवसाय का ही और न भीख ही मांग सकता हूं। मैं किसी भी पेशे का काम नहीं जानता हूँ। तुलसीदास जी कहते हैं कि राम-

चन्द्रजी के नाम ने ही मेरी प्रतिज्ञा रख ली है, नहीं तो पितरों को भेंट देने के लिये मेरे सर में बाल तक नहीं है।

अलंकार—छेकोक्ति।

अपत उतार, अपकार को अगार, जग,
जाकी छाँह छुए सहमत ब्याध बाधको।
पातक-पुहुमि पालिबे को सहसानन सों,
कानन कपट को पयोधि अपराध को॥
'तुलसी' से बाम को भो दाहिनो दयानिधान,
सुनत सिहात सब सिद्ध साधु साधको।
राम नाम ललित ललाम कियो लाखनि को
बड़ो कूर कायर कपूत कौड़ी आध को॥ ६८॥

शब्दार्थ—अपत = पतित। उतार=गयागुजरा। अगार = घर—ब्याध बाधको = हिंसा करने वाला ब्याधा भी। पातक-पुहुमिं = पाप रूपी पृथ्वी। बाम = कपटी। ललाम = रत्न।

पद्यार्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि मैं सब से पतित तथा बुराइयों का घर हूं, संसार में जिसकी छाया से हिंसक बहेलिया भी डर जाता है। पाप रूपी पृथ्वी के संभालने के लिये शेषनाग के समान, छल प्रपंचों का बन तथा अपराधों का समुद्र ऐसे कपटी तुलसी पर दयालु श्रीरामचन्द्रजी अनुकूल हुए जिसको सुन कर साधु, सिद्ध और साधक भी सिहाते हैं। यद्यपि मैं बड़ा कुभागी, कायर, कपूत तथा आधी कौड़ी का भी महँगा था परन्तु तोभी सुन्दर राम नाम ने मुझे लाखों रुपयों का रत्न बना दिया।

अलंकार—रूपक और उपमा।

सब-अंग-हीन, सब-साधन-बिहीन, मन
बचन मलीन, हीन कुल करतूति हौं।
बुधि-बल-हीन, भाव-भगति-बिहीन, हीन
गुन, ज्ञानहीन, हीन भाग हू बिभूति हौं॥
'तुलसी' गरीब की गई-बहोर रामनाम,
जाहि जपि जीह राम हू को बैठो धूति हौं।
प्रीति रामनाम सों, प्रतीति रामनाम की,
प्रसाद रामनाम के पसारि पायँ सूतिहौं॥ ६६॥

शब्दार्थ—बिभूति = ऐश्वर्य। जीह = जीभ। धूति = छल।

पद्यार्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि मैं योग के सब अंगों और साधनों से विहीन हूं, मेरे बचन और मन मलीन हैं और मैं अपने कुल (ब्राह्मण) के निर्धारित कर्मों को भी नहीं करता, मुझमें बल और बुद्धि भी नहीं है, प्रेम तथा भक्ति करना भी नहीं जानता तथा गुण, ज्ञान, भाग्य और धन से भी रहित हूँ। जो राम राम गरीबों के खोये हुए धन को भी लौटा देता है उसी को अपनी जिह्वा से जप कर मैंने रामचन्द्रजी को भी छल लिया है। मुझे राम नाम ही से प्रेम है, राम नाम ही का मुझे भरोसा है और उसी राम नाम के प्रसाद से मैं निश्चिन्त होकर सोता हूँ।

अलंकार—लोकोक्ति।

मेरे जान जब तें हौं जीव ह्वै जनम्यो जग,
तब तें बेसाह्यो दाम लोभ कोह काम को।
मन तिनहीं की सेवा, तिनही सों भाव नीको,
बचन बनाइ कहौं 'हौं गुलाम राम को'॥

नाथ हू न अपनायो, लोक झूठी ह्वै परी, पै
प्रभु हू तें प्रबल प्रताप प्रभु नाम को।
आपनी भलाई भलो कीजै तो भलाई, न तौ
'तुलसी' को खुलैगो खजानो खोटे दाम को ॥७०॥

शब्दार्थ—बेसाह्यो = खरीदा।

पद्यार्थ—मेरी समझ में जब से मैंने इस संसार में जन्म लिया तभी से लोभ, मोह और काम ने दाम देकर मुझे ख़रीद लिया है। इसलिये मन उन्हीं की सेवा में लीन रहता है और उन्हीं के प्रति अनुरक्त भी रहता है। किन्तु मैं झूठी बातें बना कर कहता हूं कि मैं रामचन्द्रजी का दास हूँ। रामचन्द्रजी ने भी मुझे नहीं अपनाया और झूठे यह संसार में प्रसिद्ध हो गया कि रामचन्द्रजी ने मुझे अपना लिया है। परन्तु रामचन्द्रजी से भी प्रबल उनके नाम का प्रताप है। हे नाथ, यदि आप अपनी सज्जनता का ख्याल करके मेरी भलाई करें तो अच्छा है, नहीं तो तुलसी के कपट का खज़ाना लोगों पर प्रगट हो जायगा।

जोग न बिराग जप जाग तप त्याग व्रत,
तीरथ न धर्म जानौं बेद बिधि किमि है।
'तुलसी' सो पोच न भयो है, नहिं ह्वैहै कहूँ,
सोचैं सब याके अघ कैसे प्रभु छमिहै॥
मेरे तो न डरु रघुबीर सुनौ साँची कहौं,
खल अनखैहैं तुम्हैं, सज्जन न गमिहै।
भले सुकृती के संग मोहिं तुला तौलिए तौ,
नाम के प्रसाद भार मेरी ओर नमि है॥ ७१॥

शब्दार्थ—पोच = नीच। अनखै हैं = नाराज़ होंगे। न गमि है = गम न खायँगे।

पदार्थ—मुझ में योग, वैराग्य, जप, तप, यज्ञ, त्याग, व्रत आदि कुछ भी नहीं है। न तो मैं तीर्थ ही करता हूँ, न धर्म को ही जानता हूँ और न वेद की विधियों से ही परिचित हूँ। तुलसी के समान न तो नीच हुआ है, न है ही और न होगा। लोग सोचते हैं कि रामचन्द्रजी इसके पापों को कैसे क्षमा करेंगे। हे श्रीरामचन्द्रजी, मैं सत्य कहता हूँ कि मुझे अपने पापों का कुछ भी डर नहीं है। अगर आप क्षमा करेंगे तो दुष्ट लोग आपसे अप्रसन्न होंगे और सज्जन लोग इसकी परवा न करेंगे। यदि आप मुझे पुण्यात्माओं के साथ तराजू के पलड़े पर रख कर तौलेंगे तो आपके नाम के माहात्म्य से मेरा ही पलड़ा नीचे झुक जायगा।

अलंकार—उल्लास।

जाति के, सुजाति के, कुजाति के, पेटागिबस,
खाए टूक सबके, विदित बात दुनी सो।
मानस बचन काय किये पाप सतिभाय,
रामको कहाय दास दगाबाज पुनी सो॥
रामनाम को प्रभाउ, पाउ महिमा प्रताप,
'तुलसी' से जग मानियत महामुनी सो।
अतिही अभागो, अनुरागत न रामपद,
मूढ़ एतो बड़ो अचरज देखि सुनी सो॥ ७२॥

शब्दार्थ—पेटागिबस = भूख के कारण। दुनी = दुनिया।

पदार्थ—अपनी भूख बुझाने के लिए मैंने जाति, सुजाति और कुजाति सबसे टुकड़े मांग कर खाए हैं। यह बात संसार में प्रगट है। मैंने स्वभाव से ही मनसा-वाचा-कर्मणा अनेकों पाप किये हैं। मैं रामचन्द्रजी का दास भी कहलाया, फिर भी दगाबाज हो

बना रहा। लेकिन रामचन्द्रजी के नाम के प्रभाव से मैंने बड़प्पन और प्रताप पाया और तुलसी को लोग बड़े भारी मुनि की तरह मानने लगे। ऐ मूढ़ मन, इतना बड़ा आश्चर्य देख और सुनकर भी तुम रामचन्द्रजी के चरणों में प्रेम नहीं करते, तुम बड़े अभागे हो।

अलंकार—उल्लास और उपमा।

जायो कुल मंगन, बधायो न बजायो सुनि,
भयो परिताप पाप जननी जनक को।
बारे तें ललात बिललात द्वार द्वार दीन,
जानत हौं चारि फल चारि ही चनक को॥
'तुलसी' सो साहिब समर्थ को सुसेवक है,
सुनत सिहात सोच बिधि हू गनक को।
नाम, राम! रावरो सयानो किधौं बावरो,
जो करत गिरी तें गरु तृन तें तनक को॥७३॥

शब्दार्थ—कुल मंगन = भीखमंगों के कुल में। बारे तें = लड़कपन से। चनक = चना। किधौं = अथवा।

पदार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि मैंने याचक कुल में जन्म लिया, मेरे जन्म का हाल सुनकर माता पिता को शोक और कष्ट हुआ और उन्होंने बधाव भी न बजवाया। मैं दुखी होकर बालपन से ही दरवाजे-दरवाजे दाने दाने के लिये ललचता और बिलखता फिरा। यहां तक कि यदि कहीं चने के चार दाने मिल जाते थे तो उसी को अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, चारों फल समझता था। वही तुलसी समर्थ स्वामी रामचन्द्रजी का सेवक है, यह सुनकर ब्रह्मा जैसे ज्योतिषी भी सिहाते हैं। हे रामचन्द्रजी, आपका नाम चतुर

हैं अथवा पागल, जो तृण जैसी हलकी चीज़ को भी पहाड़ के समान भारी बना देता है।

अलंकार—रूपक और सन्देह।

बेद हू पुरान कही, लोकहू बिलोकियत,
रामनाम ही सों रीझे सकल भलाई है।
कासी हू मरत उपदेसत महेस सोई,
साधना अनेक चितई न चित लाई है॥
छाँछी को ललात जे ते राम-नाम के प्रसाद
खात खुनसात सौंधे दूध की मलाई है।
रामराज सुनियत राजनीति की अवधि,
नाम राम! रावरो तो चाम की चलाई है॥७४॥

शब्दार्थ—चितई = देखा। चित लाई है = ध्यान दिया है। छाँछी = मट्ठा। खुनसात = नाराज़ होता है। सौंधे = पका हुआ। अवधि = सीमा। चाम की चलाई है = चमड़े का सिक्का चलाया है।

पद्यार्थ—वेदों और पुराणों में भी कहा गया है और संसार में भी यही देखने में आता है कि राम नाम से ही प्रेम करने में भलाई है। काशी में मरने वाले को भी शिवजी उसी राम नाम का उपदेश देते हैं, और साधनों की ओर वह न तो देखते ही हैं और न ध्यान ही देते हैं। जो पहले मट्ठे के लिये तरस रहा था वही राम नाम की कृपा से पके हुए दूध की मलाई खाने में भी मीनमेख करता है। हे रामचन्द्रजी, सुना जाता है कि आपके राज्य में राजनीति की सीमा थी अर्थात् सबके साथ यथायोग्य बर्ताव किया जाता था, लेकिन आपके नाम ने तो चमड़े का सिक्का चला दिया है अर्थात् पापियों को भी परमपद दिला दिया है।

अलंकार—लोकोक्ति।

सोच संकटनि सोच संकट परत, जर
जरत, प्रभाव नाम ललित ललाम को।
बूड़ियौ तरति, बिगरोयौ सुधरति बात,
होत देखि दाहिनो सुभाव विधि बाम को॥
भागत अभाग, अनुरागत विराग, भाग
जागत, आलसि 'तुलसी' हू से निकाम को।
धाई धारि फिरि कै गोहारि हितकारी होति,
आई मीचु मिटति जपत रामनाम को॥७५॥

शब्दार्थ—जर = त्रिविधि ताप। अनुरागत = प्रेम करने लगता है। विराग = वैरागी, उदासीन। निकाम = निकम्मे। धारि = कतार, झुंड। गोहारि = रक्षक। मीचु = मृत्यु।

पद्यार्थ—सुन्दर राम नाम के प्रभाव से सोच संकट दूर हो जाते हैं। और त्रिविधि ताप (दैहिक, दैविक, भौतिक) जल जाते हैं। बूड़ता हुआ भी पार हो जाता है, बिगड़ी हुई बात बन जाती है और प्रतिकूल ब्रह्मा भी अनुकूल हो जाते हैं। दुर्भाग्य भग जाता है, उदासीन भी प्रेम करने लगता है और तुलसी जैसे निकम्मे और आलसी का भी भाग्य जग जाता है। राम नाम के जपने से शत्रुओं की सेना भी दौड़ कर रक्षक और हितैषी बन जाती है और आई हुई मृत्यु भी चली जाती है।

अलंकार—अत्युक्ति।

आँधरो, अधम, जड़, जाजरो जरा जवन,
सूकर के सावक ढका ढकेल्यो मग मैं।
गिरो हिये हहरि, 'हराम हो हराम हन्यो'
हाय हाय करत परीगो काल-फँग मैं॥

'तुलसी' विसोक ह्वै त्रिलोकपति-लोक गयो
नाम के प्रताप, बात विदित है जग मैं।
सोई रामनाम जो सनेह सों जपत जन
ताकी महिमा क्यों कही है जाति अगमैं ॥७६॥

शब्दार्थ—जाजरो जरा = बुढ़ापे के कारण जर्जर हुआ। जवन = यवन। सावक = बच्चा। हन्यो = मारा। काल-फंग = काल का फंदा। त्रिलोकपति = विष्णु। अगमै = अपार।

पद्यार्थ—एक अंधे, नीच, मूर्ख और बुढ़ापे से जर्जर यवन को एक सूअर के बच्चे ने धक्का देकर मार्ग में ढकेल दिया और वह 'हराम हो हराम हन्यो' (हाराम सूअर ने मुझे मार दिया) कहता हुआ काल के गाल में चला गया। तुलसीदास जी कहते हैं कि वह (अज्ञानावस्था में अकस्मात) राम नाम उच्चारण करने के प्रताप से विष्णुलोक में चला गया, यह बात संसार जानता है। उसी राम नाम को जो मनुष्य प्रेमपूर्वक जपता है उसकी महिमा किस प्रकार कही जा सकती है ? वह तो अपार है।

जापकी न, तप खप कियो न तमाइ जोग,
जाग न, विराग त्याग तीरथ न तन को।
भाई को भरोसो न खरोसो बैर बैरीहूँ सों,
बल आपनो न हितू जननी न जन को॥
लोक को न डर, परलोक को न सोच,
देवसेवा न सहाय, गर्व धाम को न धन को।
राम ही के नाम तें जो होइ सोई नीको लागै,
ऐसोई सुभाव कछु 'तुलसी' के मन को ॥७७॥

शब्दार्थ—तप खप कियो = कष्ट सहकर तप किया। तमाइ = लालच। खरोसो = खरा सा, अच्छी तरह।

पद्यार्थ—मैंने न तो जप ही किया, न अच्छी तरह कष्ट सह कर तपस्या ही की, न मुझे योग ही से कुछ प्राप्त होने का लालच है न यज्ञ ही किया, न इस देह से वैराग, त्याग, दान या तीर्थ ही हो सका। न तो मुझे भाई का भरोसा है, न किसी शत्रु से अच्छी तरह शत्रुता ही है, न मेरे शरीर में बल है और न मुझे माता पिता का ही बल प्राप्त है। न मुझे संसार का कुछ डर है, न परलोक की चिन्ता, न किसी देवता ही की सहायता की आशा है, न मुझे अपने घर और धन का ही घमंड है। तुलसीदासजी कहते हैं कि मेरे मन का कुछ ऐसा ही स्वभाव हो गया है कि राम नाम के प्रभाव से जो कुछ हो जाता है वही मुझे अच्छा लगता है।

ईस न, गनेस न, दिनेस न, धनेस न,
सुरेस सुर गौरि गिरापति नहिं जपने।
तुम्हरेई नाम को भरोसो भव तरिबे को,
बैठे उठे, जागत बागत, सोए सपने ॥
'तुलसी' है बावरो सो रावरोई, रावरी सौं,
रावरेऊ जानि जिय कीजिये जु अपने।
जानकी-रमन ! मेरे रावरे बदन फेरे,
ठाउँ न समाउँ कहाँ, सकल निरपने ॥ ७८ ॥

शब्दार्थ—गिरापति = सरस्वती के स्वामी, ब्रह्मा। बागत = चलते फिरते। सौं = शपथ। बदन फेरे = विमुख होने से। निरपने = बिराने।

पद्यार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि मैंने महादेव, गणेश, सूर्य, कुबेर, इन्द्र, पार्वती, ब्रह्मा आदि किसी देवता को नहीं जपा। हे रामचन्द्रजी, उठते बैठते, जागते चलते फिरते, सोते और स्वप्न में भी संसार से तरने के लिये आप ही के नाम का भरोसा है। मैं आपकी

शपथ खाकर कहता हूँ कि मैं पगला आप ही का दास हूँ, इसलिये आप अपने दिल में यह समझ कर मुझे अपनाइये। हे रामचन्द्रजी, आपके विमुख होने से मेरे लिये कहीं स्थान न मिलेगा, मैं कहां रहूंगा, मेरे लिये सब कोई बिराने हैं।

जाहिर जहान में जमानो एक भाँति भयो,
बेंचिये बिबुध-धेनु रासभी बेसाहिए।
ऐसेऊ कराल कलिकाल में कृपालु तेरे
नाम के प्रताप न त्रिताप तन दाहिए॥
'तुलसी' तिहारो मन बचन करम, तेहि
नाते नेह-नेम निज ओर तें निबाहिए।
रंक के निवाज रघुराज राजा राजनि के,
उमरि दराज महाराज तेरी चाहिए॥ ७६॥

शब्दार्थ—जमानो एक भाँति भयो = समय केवल अधर्म ही का है। विबुध-धेनु = कामधेनु। रासभी = गदही। उमरि = उम्र। दराज = लंबी, बड़ी।

पद्यार्थ—संसार में विदित है कि (कलि काल में) समय केवल अधर्म का ही है (और युगों की तरह धर्म अधर्म दोनों नहीं हैं) क्योंकि लोग कामधेनु (सुकृति) को बेंचकर गदही (दुष्कृति) को खरीदते हैं। हे कृपालु श्रीरामचन्द्रजी, ऐसे घोर कलिकाल में भी आप के नाम के प्रताप ने तीनों तापों को जला दिया है। इसीसे तुलसी मन, वचन और कर्म से आपका दास है; आप इसी नाते से स्नेह का नाता अपनी ओर से भी निबाहिये। हे दरिद्रों को पालने वाले राजा रामचन्द्रजी, आप की उम्र बड़ी हो।

अलंकार—ललित।

स्वारथ सयानप, प्रपंच परमारथ,
कहायो राम रावरो हौं, जानत जहानु है।
नाम के प्रताप, बाप ! आजु लौं निबाही नीके,
आगे को गोसाईं स्वामी सबल सुजानु है॥
कलि की कुचालि देखि दिन दिन दूनो देव !
पाहरू ई चोर हेरि, हिय हहरानु है।
'तुलसी' की बलि, बार बार ही सँभार कीबी,
जद्यपि कृपानिधान सदा सावधानु है॥८०॥

शब्दार्थ—सयानप = चतुर। पाहरू = पहरेदार ही। हहरानु है = डर गया है। कीबी = कीजिये।

पद्यार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि संसार जानता है कि स्वार्थ-सिद्धि में ही मैं अपनी चतुराई समझता हूं और परमार्थ के कामों में भी छल करता हूं, तिस पर भी मैं आप ही का कहलाता हूं। हे पिता, आपके नाम के प्रताप ने आज तक अच्छी तरह से निबाहा, भविष्य में निबाहने के लिये भी आपही समर्थ और चतुर स्वामी हैं। हे नाथ, कलिकाल की कुचाल दिन दिन दूनी होते देख कर तथा पहरेदार ही को चोर का काम करते देख कर हृदय में डर मालूम होता है। मैं आपकी बलि जाता हूं, यद्यपि आप सदा सावधान हैं तथापि (मैं आप से प्रार्थना करता हूँ कि) आप मेरा सब कुछ संभालिये।

अलंकार—छेकोक्ति।

दिन दिन दूनो देखि दारिद दुकाल दुख,
दुरित दुराज, सुख सुकृत सकोचु है।
माँगे पैंत पावत प्रचारि पातकी प्रचंड,
काल की करालता भले को होत पोचु है॥

आपने तो एक अवलंब, अंब डिम्भ ज्यों,
समर्थ सीतानाथ सब संकट-बिमोचु है ।
'तुलसी' की साहसी सराहिये कृपालु राम !
नाम के भरोसे परिनाम को निसोचु है ॥ ८१ ॥

शब्दार्थ—दुरित = पाप । दुराज = बुरा राज्य । पैंत = दाव । अंब = माता । डिंभ = बच्चा ।

पद्यार्थ—प्रति दिन दरिद्रता, अकाल, दुख, पाप और कुराज बढ़ते हुए देख कर सुख और पुण्य घटते जा रहे हैं । समय की विकरालता इस प्रकार बढ़ गई है कि महान पापियों का मांगा हुआ दाव लग जाता है (इच्छा पूरी हो जाती है) और भले मनुष्यों की बुराई होती है । तुलसीदासजी कहते हैं कि जिस प्रकार बच्चा का एक मात्र सहायक माता है उसी भांति सब संकटों को दूर करने के लिये मुझे केवल श्रीरामचन्द्रजी का ही सहारा है । हे कृपालु रामचन्द्रजी, आपको मेरी हिम्मत की प्रशंसा करनी चाहिये क्योंकि मैं आपके नाम के भरोसे परिणाम की कुछ भी चिन्ता नहीं करता ।

अलंकार—यमक ।

मोह-मद-मात्यो, रात्यो कुमति-कुनारि सों,
बिसारि वेद लोक-लाज, आँकरो अचेतु है ।
भावै सो करत, मुँह आवै सो कहत, कछु
काहू की सहत नाहिं, सरकस हेतु है ॥
'तुलसी' अधिक अधमाई हू अजामिल तें,
ताहू में सहाय कलि कपट-निकेतु है ।
जैबे को अनेक टेक, एक टेक ह्वैबे की, जो
पेट-प्रिय-पूत-हित रामनाम लेतु है ॥ ८२ ॥

शब्दार्थ—रात्यो = आसक्त हुआ। आँकरो = गहरा। सरकस = बड़ा भारी। हेतु = कारण। जैबे को अनेक टेक = नष्ट होने लिये अनेक कारण। ह्वैबे की = भवसागर पार होने का एक कारण।

पद्यार्थ—तुलसीदासजी अपनी और अजामिल की दशा की समता दिखलाते हुए कहते हैं कि अजामिल शराब के नशे में चूर रहता था और मैं मोह के नशे में मस्त रहता हूँ। वह वेश्याओं से अनुरक्त रहता था, मैं कुबुद्धि में अनुरक्त रहता हूं। उसने वेद मार्ग छोड़ दिया था, मैंने लोक लाज भुला दिया है। मैं भी उसी की तरह बिल्कुल अज्ञानी हूं। उसके मन में जो कुछ आता था, करता था, मेरे भी मुँह से जो कुछ निकलता है, कह डालता हूं, किसी की सहता नहीं हूँ। इसका बड़ा भारी कारण रामचन्द्रजी का भरोसा है। तुलसीदास जी कहते हैं कि मैं अजामिल से भी अधिक पापी हूं, इस पर भी कपट का घर कलि मेरा सहायक है। अजामिल की तरह मेरे नष्ट होने के तो अनेकों कारण हैं, भवसागर पार होने का एक ही कारण है, वह यह है कि मरते समय अजामिल ने अपने प्यारे पुत्र का नाम लिया था, मैं भी अपने प्यारे पेट रूपी पुत्र के पालने के लिये राम नाम लेता हूँ।

अलंकार—रूपक तथा व्यतिरेक।

जागिये न सोइए, बिगोइए जनम जाय,
दुख रोग रोइए, कलेस कोह काम को।
राजा, रंक, रागी औ विरागी, भूरि भागी ये
अभागी जीव जरत, प्रभाव कलि बाम को॥
'तुलसी' कबंध कैसो धाइबो विचारु अंध!
धुंध देखियत जग, सोच परिनाम को।
सोइबो जो राम के सनेह की समाधि-सुख,
जागिबो जो जीह जपै नीके रामनाम को॥८३॥

शब्दार्थ—बिगोइए = बिगाड़िए। जाय = व्यर्थ। भूरि भागी = बड़े भाग्यशाली। कबंध = धड़।

पद्यार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि इस संसार में न हम जागते हैं (न हरि भजन में चैतन्य रहते हैं) न सोते ही हैं (न संसार का सुख ही उठाते हैं) हम व्यर्थ में जन्म बिगाड़ते हैं और सदैव दुख, रोग से रोते हैं और क्रोध और काम के कष्ट को सहते हैं। राजा, गरीब, भोगी और योगी, भाग्यशाली और अभागे सभी जीव जले जाते हैं, यह कुटिल कलिकाल का प्रभाव है। हे मूर्ख मन, संसार में दौड़ धूप करना कबंध के दौड़ने के समान व्यर्थ है, अज्ञानता के कारण संसार तुम्हें धुँधला दिखाई देता है, तुम उसके वास्तविक रूप को नहीं पहचान सकते, तुम परिणाम को सोचो। अगर तुम्हें सोना ही है तो रामचन्द्रजी के स्नेह की समाधि-सुख को लूटो और अगर जागना चाहते हो तो जीभ से राम नाम को अच्छी तरह से जपो।

बरन-धरम गयो, आस्रम निवास तज्यो,
त्रासन चकित सो परावनो परो सो है।
करम उपासना कुवासना विनास्यो, ज्ञान
बचन, विराग वेष जगत हरो सो है॥
गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग,
निगम नियोग तें सो केलि ही छरो सो है।
काय मन बचन सुभाय 'तुलसी' है जाहि,
रामनाम को भरोसो, ताहि को भरोसो है॥८४॥

शब्दार्थ—परावनो सो परो है = भगदड़ पड़ गई है। हरो सो है = ठग लिया है। नियोग = आज्ञा। केलिही = खेलवाड़ में ही।

पद्यार्थ—चारों वर्णों के धर्म नष्ट हो गए हैं, लोगों ने चारों आश्रमों में रहना छोड़ दिया है, अधर्म के डर से लोगों में भगदड़ मच गई है। बुरी इच्छाओं ने कर्म, उपासना ज्ञान वचन और वैराग्य वेष को नष्ट कर दिया है, सारा संसार छला हुआ दिखलाई देता है। गोरख ने योग जगा कर लोगों में भक्ति के भाव को दूर कर दिया और वेद की आज्ञाओं को खेल ही में छल दिया है। तुलसी-दास जी कहते हैं कि जिस को मन, वचन, कर्म, स्वभाव से राम नाम का विश्वास है, उसी का विश्वास ठीक है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

(सवैया)

वेद पुरान विहाइ सुपंथ कुमारग कोटि कुचाल चली है।
काल कराल, नृपाल कृपालन राजसमाज बड़ोई छली है॥
वर्न-बिभाग न आस्रम-धर्म, दुनी दुख-दोष-दरिद्र-दली है।
स्वारथ को परमारथ को कलि राम को नाम-प्रताप बली है॥८५॥

पद्यार्थ—कलियुग में लोगों ने वेद और पुराण के बतलाए हुए मार्ग को छोड़कर कुमार्ग और बुरी चाल को ग्रहण कर लिया है। समय बड़ा कठिन आ गया है, यदि राजा कृपालु हैं तो उनके कर्मचारी बड़े धूर्त हैं। न वर्ण-विभाग रह गया है, न आश्रम-धर्म ही। दुख, दोष और दरिद्रता ने संसार को तबाह कर दिया है। इस कलिकाल में स्वार्थ तथा परमार्थ प्राप्ति के लिए रामचन्द्रजी के नाम का प्रताप ही बलवान है।

न मिटै भवसंकट दुर्घट है, तप तीरथ जन्म अनेक अटो।
कलि में न बिराग न ज्ञान कहूँ, सब लागत फोकट झूँठ-जटो॥

नट ज्यों जनि पेट-कुपेटक कोटिक चेटक कौतुक ठाठ ठटो।
'तुलसी' जो सदा सुख चाहिय तौ रसना निसिबासर राम रटो ॥८६॥

शब्दार्थ—अटो = घूमो। फोटक = सार रहित। कूँट-जटो = झूठ से भरा हुआ। पेट-कुपेटक = पेट रूपी बुरा पिटारा। चेटक = मन। कौतुक ठाठ ठटो = तमाशा करो।

पद्यार्थ—चाहे कितनी ही तपस्या करो, तीर्थों में घूमो तथा अनेक जन्म धारण करो लेकिन सांसारिक संकट नहीं मिट सकता, क्योंकि यह बड़ा कठिन काम है। कलियुग में न कहीं ज्ञान है, न वैराग्य है, सब कुछ साररहित है और झूठ से भरा हुआ है। इसलिये बाजीगर की तरह अपने पेट रूपी बुरे पिटारे से मंत्रों के बल करोड़ों तमाशे न करो। तुलसीदासजी कहते हैं कि अगर हमेशा सुख चाहते हो तो दिन रात अपनी जीभ से राम नाम का उच्चारण करो।

अलंकार—उदाहरण।

दम दुर्गम, दान दया, मख-कर्म, सुधर्म अधीन सबै धन को।
तप तीरथ साधन जोग बिराग सों होइ नहीं दृढ़ता तन को॥
कलिकाल कराल में, राम कृपालु ? यहै अवलंब बड़ो मन को।
'तुलसी' सब संजमहीन सबै इक नाम अधार सदा जन को ॥८७॥

शब्दार्थ—दम = इन्द्रियों का दमन करना। मख = यज्ञ।

पद्यार्थ—कलियुग में इन्द्रियों का दमन करना कठिन है, दान, दया, यज्ञ करना और धर्म सब धन ही के द्वारा किए जा सकते हैं। तप, तीर्थ, साधन, योग और वैराग्य भी नहीं हो सकते, क्योंकि इनके लिए शरीर की दृढ़ता आवश्यक है। तुलसीदास जी कहते हैं कि इस घोर कलिकाल में रामचन्द्रजी कृपालु हैं, यही मन के लिए बड़ा

भारी सहारा है। सब लोग संयमों से रहित हैं, भक्तों को केवल रामचन्द्रजी के नाम ही का सहारा है।

पाइ सुदेह विमोह-नदी-तरनी न लही, करनी न कछू की।
रामकथा बरनी न बनाइ, सुनी न कथा प्रहलाद न ध्रू की॥
अब जोर जरा जरि गात गयो, मन मानि गलानि कुबानि न मूकी।
नीके कै ठीक दई 'तुलसी' अवलंब बड़ी उर आखर दू की॥८८॥

शब्दार्थ—तरनी = नाव। जरा = बुढ़ापा। मूकी = छोड़ी। आखर दू की = दो अक्षर, रा और म की।

पद्यार्थ—ऐसी सुन्दर देह पाकर मोह रूपी नदी को पार करने के लिए नाव न पाई और न कुछ अच्छे कर्म ही किए। रामचन्द्रजी की कथा भी बना कर नहीं कही और न ध्रुव प्रहलाद की कथाओं को ही सुना। अब अत्यन्त बुढ़ापे के कारण शरीर जर्जर हो गया है, इतने पर भी मन में खेद नहीं हुआ और अपने बुरे स्वभाव को न छोड़ा। तुलसीदासजी कहते हैं कि मैंने अच्छी तरह से निश्चय कर लिया है कि मुझे केवल दो अक्षर वाले 'राम' नाम का ही सहारा है।

अलंकार—रूपक।

राम बिहाय 'मरा' जपते बिगरी सुधरी कवि-कोकिल हू की।
नामहि तें गज की, गनिका की, अजामिल की चलि गै चल-चूकी॥
नाम-प्रताप बड़े कुसमाज बजाइ रही पति पांडुवधू की।
ताको भलो अजहूँ 'तुलसी' जेहि प्रीति प्रतीति है आखर दू की॥८६॥

शब्दार्थ—कवि-कोकिल = वाल्मीकि। चल-चूकी = अपराध। बजाइ रही = डंका बजा कर बनी रही। पांडुवधू = द्रौपदी।

पद्यार्थ—शुद्ध राम नाम को छोड़ कर वाल्मीकि जी मरा मरा जपते थे, तौभी उनका बिगड़ा हुआ जीवन सुधर गया। नाम ही के प्रताप से गज, गणिका तथा अजामिल की भूलें सुधर गईं। उसी राम नाम के प्रताप से (कौरवों को) बुरे समाज में भी द्रौपदी की प्रतिष्ठा डंका बजा कर बनी रही। तुलसीदासजी कहते हैं कि जिसको दो अक्षर वाले राम के नाम पर प्रेम और विश्वास है उसका अब भी भला है।

नाम अजामिल से खल तारन, तारन वारन वार वधू को।
नाम हरे प्रहलाद बिषाद, पिताभय साँसति सागर सूको॥
नाम सों प्रीति प्रतीति बिहीन गिल्यो कलिकाल कराल न चूको।
राखिहैं राम सो जासु हिये 'तुलसी' हुलसै बल आखर दू को॥६०॥

शब्दार्थ—वारन = हाथी। वार-वधू = वेश्या। साँसति = दुख। सूको = सूख गया। गिल्यो = निगल गया। हुलसै = प्रसन्न होकर।

पद्यार्थ—रामचन्द्रजी के नाम ने अजामिल, गज तथा वेश्या जैसे दुष्ट और पापी जीवों का उद्धार किया। उसी राम नाम ने प्रहलाद के शोक को दूर किया, और उसके पिता के भय और दुख रूपी समुद्र को भी सुखा दिया। जिसको राम नाम से प्रेम और विश्वास नहीं हुआ उसको घोर कलिकाल निगल गया, छोड़ा नहीं। तुलसीदासजी कहते हैं कि जिसके हृदय में राम के दो अक्षरों का भरोसा है उसकी रामचन्द्रजी रक्षा करेंगे।

जीव जहान में जायो जहाँ सो तहाँ 'तुलसी' तिहुँ दाह दहो है।
दोस न काहू, कियो अपनो, सपनेहु नहीं सुख-लेस लहो है।
राम के नाम तें होउ सो होउ, न सोउ हिये, रसना ही कहो है।
कियो न कछू, करिबो न कछू, कहिबो न कछू मरिबोई रहो है॥६१॥

शब्दार्थ—लेस = थोड़ा सा, ज़रा भी ।

पद्यार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि संसार में जहां जहां जीव पैदा हुए हैं वहां वहां तीनों तापों से जलते हैं । इसमें उनका दोष नहीं है, उनके किए कर्मों का फल है । उनको स्वप्न में भी ज़रा सा भी सुख नहीं मिलता । अब राम नाम के प्रभाव से जो कुछ हो सो हो, उस नाम को भी मैं केवल जिह्वा से कहता हूँ, हृदय से नहीं । मैंने न तो कुछ आज तक किया, न कुछ करना ही रह गया, न कुछ कहना ही है, केवल मरना ही शेष है ।

जीजै न ठाउँ, न आपन गाउँ, सुरालय हू को न संवल मेरे ।
नाम रटो, जमबास क्यों जाउँ को आइ सकै जम-किंकर नेरे ?
तुम्हरो सब भाँति, तुम्हारिय सौं, तुमही, बलि हौं, मोकों ठाहरु हैरे ।
बैरष बाँह बसाइए पै, 'तुलसी' घरु ब्याध अजामिल खेरे ॥६२॥

शब्दार्थ—जीजै = जीने के लिए । सुरालय = स्वर्ग । संवल = रास्ते के लिए भोजन आदि सामग्री । नेरे = पास । खेरे = छोटा सा गाँव । वैरष = पताका ।

पद्यार्थ—मेरे लिए न तो जीने का स्थान है, न अपने लिए गांव है, न स्वर्ग जाने के लिए मेरे पास संवल (शुभ कर्म आदि की सामग्री) ही है । मैं आपका नाम रटता हूँ । मैं यमलोक क्योंकर जाऊँगा ? मेरे पास यम का कोई दूत कैसे आ सकता है ? तुलसीदास जी कहते हैं कि आप पर बलि जाता हूँ, आपकी सौगन्ध खाता हूँ कि आपही का मुझे सब तरह से भरोसा है, आपही के पास मेरे लिए स्थान दिखलाई पड़ता है । आप मुझे अपनी बांह का पताका देकर व्याधा और अजामिल के गांव में बसाइए ।

का कियो जोग अजामिल जू, गनिका कबहीं मति पेम पगाई ?
व्याध को साधुपनो कहिये, अपराध अगाधनि मैं ही जनाई।
करुनाकर की करुना करुनाहित, नाम-सुहेत जो देत दगाई॥
काहे को खीझिय! रीझिय पै, तुलसीहु सों है बलि सोई सगाई ॥९३॥

शब्दार्थ—प्रेम पगाई = प्रेम में लीन हो जाना। जनाई = मालूम पड़ती थी। सुहेत = कारण। सगाई = नाता।

पद्यार्थ—अजामिल ने कौन सा योग साधन किया था, और गणिका ही आपके प्रेम में कब पगी थी, व्याधा (वाल्मीकि) के साधुपना का क्या कहना, वह तो उसके अगणित अपराधों से ही पता चलता है। कृपालु रामचन्द्र जी की दया अकारण ही दया के पात्रों पर होती है, जो नाम जपने के कारण दया चाहते हैं वे छल करते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि हे रामचन्द्र जी, मैं आपकी बलि जाता हूँ, आपसे मुझे वही सम्बन्ध है, (मैं अपने को दया का पात्र समझ कर दया चाहता हूँ) आप क्यों नाराज़ होते हैं ? आपको तो मुझ पर प्रसन्न होना चाहिए।

अलंकार—परिकर।

ज मद-मार विकार भरे ते अचार बिचार समीप न जाहीं।
है अभिमान तऊ मन में 'जन भाषिहै दूसरे दीन न पाहीं, ?'
जौ कछु बात बनाइ कहौं 'तुलसी' तुमतें तुम हौ उर माहीं।
जानकी-जीवन जानत हौ हम हैं तुम्हरे, तुममें, सक नाहीं ॥९४॥

शब्दार्थ—मार = काम।

पद्यार्थ—जो भय और काम आदि विकारों से भरे हुए हैं वे आचार-विचार के समीप नहीं जाते। तौ भी उनके मन में बड़ा

घमंड है कि वे दूसरे लोगों से नम्रतापूर्वक न बोलेंगे। तुलसीदास जी कहते हैं कि मैं यदि कोई बात बनाकर कहता हूं तो आप उसे जान जायँगे क्योंकि आप मेरे हृदय में निवास करते हैं। हे जानकी जीवन, आप तो जानते ही हैं कि मैं आपका हूँ, और आप भी हमारे हैं इसमें संदेह नहीं है।

दानव देव अहीस महीस महा मुनि तापस सिद्ध समाजी।
जग जाचक, दानि दुतीय नहीं तुमही सब की सब राखत बाजी॥
एते बड़े तुलसीस तऊ सबरी के दिए बिनु भूख न भाजी।
राम गरीबनेवाज! भये हौं गरीबनेवाज गरीब-नेवाजी॥९५॥

शब्दार्थ—सब राखत बाजी = सब इच्छाएँ पूर्ण करते हो। भूख न भाजी = भूख न मिटा।

पद्यार्थ—राक्षस, देवता, शेषनाग, राजा, महर्षि, तपस्वी, सिद्ध और समाज के लोग, सारा संसार मांगने वाला है, आपके अतिरिक्त कोई दूसरा दानी नहीं है। आपही सबकी इच्छा पूर्ण करते हैं। आप इतने बड़े हैं फिर भी शबरी के दिये हुए बेरों के बिना आपकी भूख न गई। हे दीनों पर दया करने वाले, दीनों पर दया करने के कारण ही आप दीनबन्धु कहलाते हैं।

(कवित्त)

किसबी, किसान-कुल, बनिक, भिखारी, भाट,
चाकर, चपल-नट, चोर, चार, चेटकी।
पेट को पढ़त, गुन गढ़त, चढ़त गिरि,
अटत गहन-बन अहन अखेटकी॥

ऊँचे नीचे करम धरम अधरम करि,
पेट ही को पचत बेचत बेटा बेटकी।
'तुलसी' बुझाइ एक राम घनस्याम ही तें,
आगि बड़वागि तें बड़ी है आगि पेट की॥ ९६॥

शब्दार्थ—किसबी = परिश्रम करने वाले, मज़दूर। चार = दूत। चेटकी = तमाशा करने वाले, जादूगर। अटत = घूमते हैं। अहन = दिन भर। अखेटकी = शिकारी। पचत = परिश्रम करते हैं। बड़वागि = बड़वानल।

पद्यार्थ—मजदूर, किसान लोग, वनिए, भीखमंगे, भाट, नौकर, चंचल नट, चोर, दूत और बाजीगर आदि सब पेट ही के लिए गुण सीखते हैं, पेट ही के लिए अनेकों तरह के गुण गढ़ते हैं; पहाड़ों पर चढ़ते हैं और घने बनों में घूमते हैं तथा दिन भर शिकार करते फिरते हैं, पेट ही के लिये ऊंचे नीचे कर्म तथा धर्म, अधर्म करते हैं और बेटा बेटी तक बेंच देते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि यह पेट की आग केवल घनश्याम (रामचन्द्र जी) ही से बुझ सकती है, यह आग बड़वानल से भी प्रबल है।

अलंकार—परिकर।

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि,
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका-विहीन लोग सीद्यमान, सोच-बस,
कहैं एक एकन सो "कहाँ जाई, का करी ?"
वेद हू पुरान कही, लोकहू बिलोकियत,
साँकरे सबै पै राम रावरे कृपा करी।

दारिद-दसानन दबाई दुनी, दीन-बंधु!
दुरित-दहन देखि 'तुलसी' हहा करी ॥ ६७ ॥

शब्दार्थ—सीद्यमान = दुखी। दबाई = दबा दिया है। दुरित-दहन = पापों को जलाने वाले।

पद्यार्थ—इस समय किसानों की न तो खेती उपजती है, न भीग-मंगों को कहीं भीख मिलती है, न बनियों का व्यापार चलता है, न नौकरों को नौकरी मिलती है। जीविका से रहित होकर लोग दुख और शोक में पड़ गए हैं, और सब एक दूसरे से कहते हैं कि कहाँ जायँ और क्या करें। वेद और पुराणों ने भी कहा है कि संकट पड़ने पर सब पर आपने ही कृपा की है। दरिद्रता रूपी रावण ने दुनिया को दबा रखा है। इसलिए हे दीनबन्धु, यह तुलसी आपको पाप नाशक समझकर आपसे प्रार्थना करता है।

अलंकार—रूपक।

कुल, करतूति, भूति, कीरति, सुरूप, गुन,
जोबन जरत जुर, परै न कल कहीं।
राजकाज कुपथ, कुसाज, भोग रोग ही के,
वेद-बुध विद्या पाइ विवस बलकहीं।
गति तुलसीस की लखै न कोऊ जो करत,
पब्बइ तें छार, छारै पब्बइ पलक ही।
कासों कीजै रोष? दोष दीजै काहि? पाहि राम!
कियो कलिकाल कुलि खलल खलक ही ॥ ६८॥

शब्दार्थ—भूति = ऐश्वर्य। जुर = ज्वर। बलकही = बकते हैं। पब्बइ = पहाड़। कुलि = सब। खलल = उलट पलट, बाधा। खलक = दुनिया।

पद्यार्थ—श्रेष्ठ कुल, शुभकर्म, ऐश्वर्य, कीर्ति, सुन्दरता तथा गुण सब यौवन रूपी ज्वर में जल रहे हैं, कुछ कहा नहीं जाता कि क्या होगा। राजकाज इस रोग का कुपथ्य है और भोग आदि इस रोग को बढ़ाने वाली बुरी सामग्री है। पंडित लोग वेद आदि विद्याएँ पढ़ करके व्यर्थ की बकवाद करते फिरते हैं। परन्तु श्रीरामचन्द्र जी की गति को कोई नहीं जानता जो क्षण भर में पहाड़ को धूल और धूल को पहाड़ बना देते हैं। किस पर क्रोध किया जाय, किसको दोष दिया जाय, हे श्रीरामचन्द्रजी अब आप ही रक्षा कीजिये, क्योंकि इस कलि-काल ने सारी दुनियां को उलट पलट डाला है।

अलंकार—रूपक।

बबुर बहेरे को बनाय बाग लाइयत,
रूँधिबे को सोइ सुरतरु काटियतु हैं।
गारी देत नीच हरिचंद हू दधीच हू को,
आपने चना चबाइ हाथ चाटियतु है।
आप महापातकी हँसत हरि हर हू को,
आपु है अभागी, भूरि भागी डाटियतु हैं।
कलि को कलुष, मन मलिन किये महत,
मसक की पाँसुरी पयोधि पाटियतु है ॥६६॥

शब्दार्थ—हरि = विष्णु। हर = शिव। पाँसुरी = पसली। पयोधि = समुद्र। पाटियतु है = ढ़कता है।

पद्यार्थ—दुष्ट लोग बबुर और बहेरे का अच्छा बाग लगाते हैं और उसे घेरने के लिए कल्पवृक्ष को काटते हैं। वे नीच हरिश्चन्द्र और दधीचि को भी गाली देते हैं और अपने चना चबाकर हाथ चाटते हैं। अपने तो अत्यन्त पापी हैं किन्तु विष्णु और शिव को भी

हँसते हैं, अपने तो अभागे हैं, लेकिन भाग्यशालियों को भी डांट बैठते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि कलियुग के पापों ने लोगों के मन को अत्यन्त मलीन कर दिया है और वे मच्छर की पसलियों से समुद्र को पाटना चाहते हैं।

अलंकार—छेकोक्ति।

सुनिये कराल कलिकाल भूमिपाल तुम!
जाहि घालो चाहिये कहौ धौं राखै ताहि को?
हौं तौ दीन दूबरो, बिगारो ढारो रावरो न,
मैं हूँ तैं हूँ ताहि को सकल जग जाहि को।
काम कोह लाइ कै देखाऊयत आंखि मोहिं,
एते मान अकस कीबे को आपु आहि को?
साहिब सुजान जिन स्वानहू को पच्छ कियो,
रामबोला नाम, हौं गुलाम-राम-साहि को ॥१०७॥

शब्दार्थ—घालो चाहिये = नाश करना चाहते हैं। बिगारो ढारो रावरो न = आपका कुछ बनाया बिगाड़ा नहीं। अकस = विरोध। आहि = हो।

पद्यार्थ—हे कलिकाल सुनो, तुम राजा हो, जिसको तुम मारना चाहो, उसकी कौन, किस प्रकार रक्षा कर सकता है? मैं तो दीन और दुर्बल हूँ, तुम्हारा कुछ बनाया बिगाड़ा नहीं। मैं और तुम उसी रामचन्द्रजी के अधीन हैं जिसने सारे संसार की रचना की है। तुम काम, क्रोध आदि को मेरे पीछे लगा कर मुझे डराना चाहते हो, तुम मुझसे इतना मान और बैर रखने वाले कौन हो? मेरे स्वामी चतुर हैं, जिन्होंने कुत्ते का भी पक्ष लिया था, मैं उसी राम बादशाह का गुलाम हूँ और मेरा नाम रामबोला है।

(सवैया)

साँची कहौं कलिकाल कराल मैं, ढारो विगारो तिहारो कहा है ?
काम को, कोह को, लोभ को, मोह को,मोहि सों आनि प्रपंच रहा है
हौ जगनायक लायक आजु, पै मेरियौ टेव कुटेव महा है।
जानकीनाथ बिना, 'तुलसी', जग दूसरे सों करिहौं न हहा है।। १०१।।

शब्दार्थ—प्रपंच = माया। मेरियो = मेरी भी। कुटेव = बुरी आदत। हहा करि हौ = विनय करूँगा।

पद्यार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि ऐ भयानक काल, मैं सच कहता हूं कि मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है कि तुम मुझ पर काम, क्रोध, लोभ और मोह का जाल फैलाते हो। हे कलियुग, यद्यपि तुम इस समय संसार के समर्थ स्वामी हो, तथापि मेरी भी एक बुरी आदत है कि मैं जानकीनाथ, श्रीरामचन्द्रजी को छोड़ कर दूसरे किसी से प्रार्थना न करूँगा।

अलंकार—विशेषोक्ति।

भागीरथी जलपान करौं अरु नाम द्वै राम के लेत नितैहौं।
मोको न लेनो न देनो कछू कलि ! भूलि न रावरी ओर चितैहौं।
जानि कै जोर करौ परिनाम, तुम्है पछितैहो पै मैं न भितैहौं।
ब्राह्मन ज्यों उगिल्यो उरगारि, हौं त्यों ही तिहारे हिये न हितैहौं।।१०२।।

शब्दार्थ—भितैहौ = भयभीत हूँगा। उरगारि = गरुड़। न हितै हौं = लाभदायक न हूँगा।

पद्यार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि ऐ कलिकाल, मैं गंगाजल पीता हूं और सीता और राम के नाम को जपता हूँ, मुझको किसी से

कुछ लेना देना नहीं है, मैं भूल कर भी तुम्हारी ओर न देखूँगा। तुम अन्तिम परिणाम समझ कर मुझ पर अत्याचार करो, क्योंकि तुम्हें ही (अपने कर्मों पर) पछताना पड़ेगा, परन्तु मैं न डरूँगा। जिस प्रकार गरुड़ को (निगले हुए) ब्राह्मण को उगल देना पड़ा था, *उसी तरह मैं भी तुम्हारे पेट में न पचूँगा, मुझे भी तुम्हें उगलना पड़ेगा।

अलंकार—उदाहरण।

राजमराल के बालक पेलि कै, पालत लालत खूसर को।
सुचि सुंदर सालि सकेलि सुवारि कै बीज बटोरत ऊसर को।
गुन-ज्ञान-गुमान भभेरि बड़ो, कलपद्रुम काटत मूसर को।
कलिकाल बिचार अचार हरो, नहिं सूझै कछू धमधूसर को॥ १०३॥

शब्दार्थ—पेलि = हटा कर। खूसर = उल्लू। सालि = धान। सकेलि = जला करके। सुवारि = जलाकर। भभेरि = मूर्ख। धमधूसर = गँवार।

पद्यार्थ—राजहंस के बच्चों को हटाकर लोग उल्लू के बच्चों को पालते पोसते हैं, सुन्दर और अच्छे धानों को बटोर कर जला देते हैं और ऊसर भूमि के दानों को बटोरते फिरते हैं, उन्हें अपने गुण और ज्ञान का बड़ा घमंड है, लेकिन मूर्ख इतने हैं कि मूसर बनाने के लिए कल्पवृक्ष को काटते हैं। इस कलियुग ने उनके आचार विचार को हर लिया है, उस मूर्ख को कुछ नहीं सूझता।

अलंकार—ललित।

---

*नोट—गरुड़ ने एक समय भूल से एक ब्राह्मण को निगल डाला जिससे उनके पेट में पीड़ा उत्पन्न हो गई और अन्त में उन्हें उसे उगलना पड़ा।

कीबे कहा, पढ़िवे को कहा? फल बूझि न वेद को भेद विचारै।
स्वारथ को परमारथ को कलि कामद राम को नाम बिसारै।
वाद विवाद विषाद बढ़ाइ कै छाती पराई औ आपनी जारै।
चारिहुको, छहुको, नव को, दसआठ को पाठकुकाठज्योंफारै॥१०४॥

शब्दार्थ—कामद = इच्छाओं को पूर्ण करने वाला। चारिहु = चारो वेद। छहुको = छहों शास्त्रों को। नव = नव व्याकरणों। दसआठ = अठारहो पुराण।

पद्यार्थ—क्या करना चाहिए और क्या पढ़ना चाहिए, इसका फल जानकर वेदों का भेद न विचारा और कलियुग में स्वार्थ और परमार्थ को देने वाले और सारी इच्छाओं को पूर्ण करने वाले रामचन्द्रजी के नाम को भुला दिया तथा व्यर्थ के लिए वादविवाद बढ़ा कर अपनी और दूसरों की छाती जलाता फिरा तो चारों वेद, छहों शास्त्र, नवों व्याकरण और अठारहों पुराणों का पढ़ना ऐसे ही व्यर्थ हुआ जैसे बुरी लकड़ी फाड़ना।

अलंकार—उपमा।

आगम वेद पुरान बखानत, मारग कोटिन्ह जाहिं न जाने।
जे मुनि ते पुनि आपुहि आपुको ईस कहावत सिद्ध सयाने।
धर्म सबै कलिकाल ग्रसे, जप जोग विराग लै जीव पराने।
को करि सोच मरै, 'तुलसी', हम जानकीनाथ के हाथ बिकाने॥१०५

शब्दार्थ—आगम = शास्त्र। पराने = भाग खड़े हुए।

पद्यार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि वेद, शास्त्र और पुराण ईश्वर को प्राप्त करने के अनेकों मार्ग बताते हैं, लेकिन वे इतने कठिन हैं कि समझ में नहीं आते। जो मुनि हैं वे अपने ही को ईश्वर,

सिद्ध तथा चतुर कहलाना चाहते हैं। कलियुग ने सारे धर्मों को ग्रसित कर लिया है, जप, योग और वैराग्य सब अपना अपना जीव लेकर भाग खड़े हुए हैं। इन सब बातों की चिन्ता में कौन जान दे, हम तो जानकीनाथ रामचन्द्रजी के हाथों बिक चुके हैं।

धूत कहो, अवधूत कहौ, रजपूत कहो, जोलहा कहौ कोऊ।
काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब, काहू की जाति बिगारौं न सोऊ।
'तुलसी' सरनाम गुलाम है राम को, जाको रुचै सो कहो कछुकोऊ।
माँगि कै खैबो मसीत को सोइवो, लैबो को एक न दैबै को दोऊ।।१०६।।

शब्दार्थ—धूत = धूर्त। अवधूत = भिखारी। सरनाम = प्रसिद्ध। मसीत = मसजिद, देवालय। लैबो एक न दैबै को दोऊ = यह मुहावरा है जिसका अर्थ है किसी से कोई सरोकार न रखना।

पद्यार्थ—चाहे मुझे कोई धूर्त कहे, चाहे फक्कड़, चाहे राजपूत कहे या जुलाहा, मुझे किसी की बेटी से अपने लड़के का ब्याह नहीं करना है, न किसी की जाति ही बिगाड़नी है। यह तुलसी तो रामचन्द्रजी का प्रसिद्ध दास है, उसके लिये जिसकी जो इच्छा हो कहे। मुझे तो भीख मांग कर खाना है और मन्दिर में सोना है, न तो किसी से लेना एक है न देना दो अर्थात् मुझे रामचन्द्रजी का नाम लेने के अतिरिक्त और किसी से कोई सरोकार नहीं है।

अलंकार—लोकोक्ति।

(कवित्त)

मेरे जाति पाँति. न चहौं काहू की जाति पाँति,
मेरे कोऊ काम को, न हौं काहू के काम को।

लोक परलोक रघुनाथ ही के हाथ सब,
भारी है भरोसो 'तुलसी' के एक नाम को ॥
अति ही अयाने उपखानो नहिं बुझैं लोग
"साह ही को गोत गोत होत है गुलाम को" ।
साधु कै असाधु, कै भलो कै पोच, सोच कहा,
का काहू के द्वार परो? जो हौं सो हौं राम को ॥१०७॥

शब्दार्थ—अयाने = मूर्ख । उपखानो = उपाख्यान, कहावत । साह = मालिक । पोच = नीच ।

पद्यार्थ—न मेरी जाति पांति है, न मैं दूसरों की जाति पांति ही लेना चाहता हूं, न मेरे कोई काम का है, न मैं ही दूसरे किसी के काम का हूँ । मेरा लोक परलोक सब कुछ रामचन्द्रजी के हाथ में है, मुझे तो केवल रामनाम का ही बड़ा भारी भरोसा है । वे लोग बड़े ही मूर्ख हैं जो इस कहावत को नहीं समझते कि सेवक का भी वही गोत्र होता है जो मालिक का । साधु हूं या असाधु, भला हूं या बुरा मुझे इस बात की परवा नहीं । क्या मैं किसी के दरवाजे धरना दिये बैठा हूँ, मैं जो कुछ भी हूं रामचन्द्रजी का हूँ ।

अलंकार—काकुवक्रोक्ति ।

कोऊ कहै करत कुसाज दगाबाज बड़ो,
कोऊ कहै राम को गुलाम खरो खूब है ।
साधु जानैं महासाधु, खल जानैं महा खल,
बानी झूठी साँची कोटि उठल हबूब है ।
चहत न काहू सों, न कहत काहू की कछु,
सबकी सहत उर अन्तर न ऊब है ।

'तुलसी' को भलो पोच हाथ रघुनाथ ही के,
राम की भगति भूमि, मेरी मति दूब है ॥।१०८॥

शब्दार्थ—कुसाज = बुरे सामान। बूबूर = पानी के बुलबुले। ऊब = घबराहट।

पद्यार्थ—कोई कहता है कि मैं छल कपट करने वाला तथा बड़ा बखेड़ा करने वाला हूं और कोई कहता है कि रामचन्द्रजी का सच्चा सेवक हूं। साधु लोग तो मुझे बड़ा भारी साधु समझते हैं और दुष्ट लोग मुझे महा दुष्ट समझते हैं। इस तरह सैकड़ों बातें पानी के बुलबुले की तरह मेरे सम्बन्ध में उठती और निर्मूल होती रहती हैं। मैं न तो किसी से कुछ चाहता हूँ, न किसी के सम्बन्ध में कुछ कहता हूँ, मैं सब बातें सहता रहता हूँ तिस पर भी मन में घबड़ाहट नहीं मालूम होती। तुलसी का भला बुरा करना तो रामचन्द्रजी के ही हाथ में है। रामचन्द्रजी की भक्ति भूमि के समान है जिसमें मेरी बुद्धि दूब की तरह उगी हुई है।

अलंकार—रूपक।

जागैं जोगी जङ्गम, जती जमाती ध्यान धरैं,
डरैं उर भारी लोभ मोह कोह काम के।
जागैं राजा राजकाज, सेवक समाज साज,
सोचैं सुनि समाचार बड़े बैरी बाम के।
जागैं बुध बिद्याहित पण्डित चकित चित,
जागैं लोभी लालच धरनि धन धाम के।
जागैं भोगी भोगही, बियोगी रोगी सोगबस,
सोवै सुख 'तुलसी' भरोसे एक राम के ॥१०९॥

शब्दार्थ—जंगम = साधुओं का एक सम्प्रदाय। जमाती = गिरोह बना कर रहने वाले साधु। बाम = दुष्ट।

पद्यार्थ—योगी, जंगम, यती, तथा जमाती ईश्वर का ध्यान लगाने तथा लोभ, मोह, क्रोध और काम के डर से हमेशा जगे रहते हैं। राजा लोग अपने राजकाज की चिन्ता से और सेवक लोग अपने स्वामी के कार्य में लगे रहने से जगे रहते हैं और अपने बड़े दुश्मन के समाचार को सुन कर सोचते रहते हैं। पंडित लोग सावधान होकर विद्याभ्यास के लिये जागते रहते हैं और लालची ज़मीन, धन और घर के लालच में जगे रहते हैं। भोगी लोग भोग में पड़कर और वियोगी और रोगी शोक के कारण जगे रहते हैं, परन्तु मैं रामचन्द्र जी के ही भरोसे पर सुख की नींद सोता हूँ।

अलंकार—दीपक।

(छप्पय)

राम मातु, पितु, बन्धु सुजन, गुरु पूज्य, परम हित।
साहेब सखा सहाय नेह नाते पुनीत चित।
देस कोस कुल कर्म धर्म धन धाम धरनि गति।
जाति पाँति सब भाँति लागि रामहिं हमारि पति।
परमारथ स्वारथ सुजस सुलभ राम तें सकल फल।
कह 'तुलसीदास' अब जब कबहुँ एक राम तें मोर भल॥ ११०॥

शब्दार्थ—कोस = कोष, खजाना। पति = प्रतिष्ठा। गति = भरोसा, पहुँच।

पद्यार्थ—मेरे माता, पिता, बन्धु, स्वजन, पूज्य गुरु, परम हितैषी, स्वामी, मित्र, सहायक, तथा पवित्र मन के जो कुछ नाते हैं वे सब मेरे

रामचन्द्रजी ही हैं। देश, कोष, कुल, कर्म, धर्म, धन, धर्म, धन, घर, जमीन, भरोसा, जाति पांति, सब तरह से मेरी मर्यादा एक रामचन्द्रजी ही के हाथ में है। स्वार्थ, परमार्थ, सुयश आदि सब फल रामचन्द्रजी से सुलभ हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि चाहे जब कभी हो, रामचन्द्र जी से ही मेरी भलाई हो सकती है।

महाराज बलि जाउँ रामसेवक-सुखदायक।
महाराज बलि जाउँ राम सुन्दर सब लायक।
महाराज बलि जाउँ राम सब सङ्कट-मोचन।
महाराज बलि जाउँ राम राजीव-विलोचन॥
बलि जाउँ राम करुनायतन प्रनतपाल पातकहरन।
बलि जाउँ राम कलि-भय-विकल 'तुलसिदास' राखिय सरन॥१११॥

शब्दार्थ—राजीव-विलोचन = कमल के समान नेत्रवाले रामचन्द्र जी। करुनायतन = करुणा के घर। प्रनतपाल = दुखियों का पालन करने वाले। पातकहरन = पाप दूर करने वाले।

पद्यार्थ—हे सेवकों को सुख देने वाले महाराज रामचन्द्रजी, मैं आपकी बलि जाता हूँ, सुन्दर और सब तरह से योग्य महाराज रामचन्द्रजी, मैं आपकी बलि जाता हूं, सब संकटों को दूर करनेवाले महाराज रामचन्द्रजी मैं आपकी बलि जाता हूँ, हे कमल के समान नेत्र वाले महाराज रामचन्द्रजी मैं आपकी बलि जाता हूँ, हे करुणा के घर, दुखियों का पालन करने वाले और पापहरण करने वाले रामचन्द्रजी मैं आपकी बलि जाता हूँ, कलियुग के भय से व्याकुल अपने दास इस तुलसी को शरण में रखिये।

अलंकार—दीपक।

जय ताड़का-सुबाहु-मथन, मारीच-मानहर।
मुनि-मख-रच्छन-दच्छ, सिलातारन करुनाकर।
नृपगन-बलमद सहित संभु-कोदंड-विहंडन।
जय कुठारधर-दर्पदलन, दिनकरकुल-मंडन॥
जय जनकनगर-आनन्दप्रद, सुखसागर सुखमाभवन।
कह 'तुलसिदास' सुर-मुकुटमनि, जय जय जय जानकिरवन॥११२॥

शब्दार्थ—मथन = मथन करने वाले, मारने वाले। मानहर = घमंड दूर करने वाले। संभु-कोदंड-विहंडन = शिवजी के धनुष को तोड़ने वाले। कुठारधर = फरसा धारण करने वाले, परशुराम। दर्पदलन = घमंड चूर करने वाले। दिनकरकुल-मंडन = सूर्यकुल को सुशोभित करने वाले सुखमा-भवन = सुन्दरता के घर।

पद्यार्थ—ताड़िका, सुबाहु को मारने वाले तथा मारीच के घमंड को दूर करने वाले रामचन्द्रजी की जय हो। विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करने में दक्ष तथा शिला-रूप अहिल्या का उद्धार करने वाले दयालु श्रीरामचन्द्रजी की जय हो। राजाओं के बल के घमंड तथा शिव के धनुष को तोड़ने वाले रामचन्द्रजी की जय हो। परशुराम के घमंड को चूर्ण करने वाले और सूर्यकुल की शोभा बढ़ाने वाले रामचन्द्रजी की जय हो। सुख के समुद्र तथा सुन्दरता के घर जनक-पुर के लोगों को आनन्द देने वाले रामचन्द्रजी की जय हो। तुलसी-दासजी कहते हैं कि देवताओं में शिरोमणि जानकीनाथ रामचन्द्रजी की जय हो।

जय जयंत-जयकर, अनंत, सज्जनजन रंजन।
जय विराध-वध-विदुष, विबुध-मुनिगन-भयभंजन॥
जय निसिचरी-विरूप-करन रघुवंस-विभूषन।
सुभट चतुर्दस-सहस-दलन त्रिसिरा खर दूषन॥

जय दंडकवन-पावन-करन 'तुलसिदास' संसय-समन।
जगबिदित जगतमनि जयति, जय जय जय जय जानकिरमन ॥११३॥

शब्दार्थ—रंजन—प्रसन्न करने वाले। बिदुर = चतुर। बिबुध = देवता। संसय-समन = शंका दूर करने वाले।

पद्यार्थ—जयंत पर विजय प्राप्त करने वाले, सज्जनों के मन को प्रसन्न करने वाले अनन्त श्रीरामचन्द्रजी की जय हो। बिराध के बध करने में चतुर और देवताओं और मुनियों के भय को दूर करने वाले रामचन्द्रजी की जय हो। सूर्पनखा को कुरूप करनेवाले रघुवंश विभूषण रामचन्द्रजी की जय हो। खरदूषण त्रिसिरा और उनकी चौदह हज़ार सेना का नाश करने वाले रामचन्द्रजी की जय हो। तुलसीदासजी कहते हैं कि दंडकवन को पवित्र करने वाले तथा संशय का नाश करने वाले रामचन्द्रजी जय हो। संसार में प्रसिद्ध जगत में मणि रूप जानकीपति रामचन्द्रजी की जय हो।

जय मायामृगमथन गीध-सबरी-उद्धारन।
जय कबंधसूदन बिसाल तरुताल-बिदारन॥
दवन बालि बलसालि, थपन सुग्रीव, संत-हित।
कपि-कराल-भट-भालु कटक-पालन, कृपालु चित॥
जय सियबियोग-दुखहेतु-कृत-सेतु बंध बारिधि-दमन।
दससीस-बिभीषन-अभयप्रद जय जय जय जानकिरमन ॥११४॥

शब्दार्थ—दवन = दमन, मारने वाले। थपन = स्थापित करने वाले। कटक = सेना। कृत-सेतु-बंध = सेतु बाँधने वाले। दससीस-बिभीषन-अभयप्रद = रावण से डरे हुए विभीषण को अभय दान देने वाले।

पद्यार्थ—माया के मृग को मारने वाले तथा गिद्ध और सवरी का उद्धार करने वाले रामचन्द्रजी की जय हो। कवंध को मारने वाले और

वड़े ताड़ वृक्षों का नाश करने वाले रामचन्द्रजी की जय हो। बलशाली वालि को मारने वाले, सुग्रीव को स्थापित करने वाले और संतों का कल्याण करने वाले रामचन्द्रजी की जय हो। वन्दर और भालुओं की विकट सेना का पालन करने वाले, दयालु चित्त रामचन्द्रजी की जय हो। सीता के वियोग के दुख के कारण सेतु बांधने वाले और समुद्र का घमंड चूर करने वाले रामचन्द्रजी की जय हो। रावण के भय से भयभीत विभीषण को अभय दान देने वाले जानकीनाथ रामचन्द्रजी की जय हो।

कनक-कुधर केदार, वीज सुंदर सुरमनि वर।
सींचि कामधुक धेनु सुधामय पय विसुद्धतर॥
तीरथपति अंकुर-सरूप, जच्छेस रच्छ तेहि।
मरकतमय साखा, सुपत्र मंजरिय सुलच्छि जेहि॥
कैवल्य सकल फल कल्पतरु सुभ सुभाव सब सुख वरिस।
कह'तुलसिदास' रघुवंसमनि तौ कि होहि तुव कर सरिस॥११५॥

शब्दार्थ—कनक-कुधर=सोने का पहाड़, सुमेरु पर्वत। केदार= क्यारी। सुरमनि = चिन्तामणि। कामधुक = इच्छाओं को पूर्ण करने वाली। तीरथपति=प्रयागराज। जच्छेस = यक्षों का मालिक कुबेर। सुलच्छि=लक्ष्मी। कैवल्य=मोक्ष। सरिस=समान।

पद्यार्थ—यदि सुमेरु पर्वत रूपी क्यारी में श्रेष्ट चिन्तामणि रूपी सुन्दर वीज वोया जाय और उसे कामधेनु के अमृत के समान शुद्ध दूध से सींचा जाय और उससे प्रयाग रूपी अंकुर उत्पन्न हो जिसकी रक्षा कुवेर करें और उससे मरकत मणि रूपी शाखा और पत्ते तथा लक्ष्मी रूपी मंजरी उत्पन्न हो; ऐसे मोक्ष आदि सब फलों को देने वाला और सब सुख की वर्षा करने वाला तथा सुन्दर स्वभाव वाला कोई

कल्पवृक्ष हो तो क्या वह रामचन्द्रजी के हाथों की बराबरी कर सकता है ?

अलंकार—रूपक तथा अतिशयोक्ति ।

जाय सो सुभट समर्थ पाइ रन रारि न मंडै ।
जाय सो जती कहाय बिषय-बासना न छंडै ॥
जाय धनिक विनु दान, जाय निर्धन बिनु धर्महिं ।
जाय सो पंडित पढ़ि पुरान जो रत न सुकर्महिं ॥
सुत जाय मातु-पितु-भक्ति बिनु, तिय सो जाय जेहि पति न हित ।
सब जाय दास 'तुलसी' कहै जो न रामपद नेह नित ॥ ११९ ॥

शब्दार्थ—पाइ रन रारि न मंडै=युद्ध का अवसर पाकर लड़ाई न करे ।

पद्यार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जो शक्तिशाली योद्धा युद्ध का अवसर पाकर युद्ध न करे वह व्यर्थ है। जो यती कहलाने पर भी विषय बासना नहीं छोड़ता, वह व्यर्थ है। दान न करने वाला धनी और धर्महीन निर्धन व्यर्थ हैं। पुराणों का पढ़ा हुआ पंडित जो शुभ कर्म में लीन नहीं है, व्यर्थ है। जिस पुत्र में माता पिता के प्रति भक्ति नहीं है वह व्यर्थ है। जिस स्त्री में पतिभक्ति नहीं है वह व्यर्थ है। यदि रामचन्द्रजी के चरणों में सदा स्नेह नहीं है तो सब कुछ व्यर्थ है।

अलंकार—तुल्ययोगिता ।

को न क्रोध निरदह्यो, कामबस केहि नहिं कीन्हो ?
को न लोभ दृढ़फंद बांधि त्रासन करि दीन्हों ?
कौन हृदय नहिं लाग कठिन अति नारिनयनसर ?
लोचनजुत नहिं अंध भयो श्री पाइ कौन नर ?

सुर-नागलोक महिमंडलहु को जु मोह कीन्हो जय न ?
कह 'तुलसिदास' सो ऊबरै जेहि राख राम राजिवनयन ॥११७॥

शब्दार्थ—निरदह्यो = जलाया । श्री = लक्ष्मी, धन ।

पदार्थ—कौन ऐसा है जिसे क्रोध ने नहीं जलाया ? कामदेव ने किसको अपने अधीन नहीं किया ? कौन ऐसा है जिसे लोभ ने अपने दृढ़ फंदे में बांध कर भयभीत नहीं किया ? कौन ऐसा हृदय है, जिसमें स्त्रियों के नयन-वाण नहीं विंधे ? कौन ऐसा मनुष्य है जो धन पा करके आंखों के रहते हुए भी अंधा न हुआ ? देवलोक, नागलोक और पृथ्वी में कौन ऐसा है जिसे मोह ने न जीता हो ? तुलसीदासजी कहते हैं कि इन सब से वही बच सकता है जिसकी कमल के समान नेत्रवाले रामचन्द्रजी रक्षा करें ।

अलंकार—काकुवक्रोक्ति ।

(सवैया)

भौंह कमान-सँधान सुठान जे नारि-बिलोकनि-बान तें बाँचे ।
कोप-कृसानु गुमान-अवाँ घट ज्यों जिनके मन आँच न आँचे ॥
लोभ सबै नट के बस ह्वै कपि ज्यों जग में बहु नाच न नाँचे ।
नीके हैं साधु सबै 'तुलसी' पै तेई रघुबीर के सेवक साँचे ॥११८॥

शब्दार्थ—सुठान = अच्छी तरह । बिलोकनि = नेत्र, कटाक्ष । गुमान-अवाँ = घमंड रूपी भट्ठी । आँच न आँचे = गर्मी से तपे नहीं ।

पदार्थ—जो स्त्रियों के भौंह रूपी धनुष से अच्छी तरह सन्धान किये गये कटाक्ष रूपी बाणों से बच गए हैं, जिनका मन रूपी घड़ा अहंकार रूपी अवां के क्रोध रूपी आंच से न जला और लोभ रूपी नट

के वश में होकर जो बन्दर के समान संसार में अनेक प्रकार के नाच न नाचा, तुलसीदासजी कहते हैं कि वही रामचन्द्रजी का सच्चा सेवक है, यद्यपि कहने के लिये सभी साधु अच्छे हैं।

अलंकार—उपमा और रूपक।

(कवित्त)

भेष सुबनाइ, सुचि बचन कहैं चुवाइ,
जाइ तौ न जरनि धरनि धन धाम की।
कोटिक उपाय करि लालि पालियत देह,
मुख कहियत गति राम ही के नाम की।
प्रगटै उपासना, दुरावै दुरवासनाहिं,
मानस निवास-भूमि लोभ मोह, काम की।
राग रोष ईरषा कपट कुटिलाई भरे
'तुलसी' से भगत भगति चहैं राम की ॥११६॥

शब्दार्थ—चुवाई = बनाकर। दुरावै = छिपाते हैं।

पद्यार्थ—ऊपर से सुन्दर भेष बनाए रहते हैं और मुँह से चिकनी चुपड़ी बातें बना कर कहते हैं। परन्तु दिल से ज़मीन, धन और घर की चिन्ता नहीं जाती। अनेकों उपाय करके देह का पालन पोषण करते हैं और मुख से अपने को रामचन्द्रजी का शरणागत बताते हैं। प्रकट रूप में तो उपासना करते हैं, लेकिन मन में बुरी वासनाएँ भरी रहती हैं। उनका मन लोभ, मोह और काम के रहने की जगह है। राग, क्रोध, ईर्षा, कपट और कुटिलता से भरे हुए तुलसी के समान भक्त भी रामचन्द्रजी की भक्ति चाहते हैं।

'काल्हिही तरुन तन, काल्हिही धरनि धन,
काल्हि ही जितौंगो रन, कहत कुचालि है।
काल्हिही साधौंगो काज, काल्हिही राजा समाज',
मसक ह्वै कहै "भार मेरे मेरु हालिहै"।
'तुलसी' यही कुभाँति घने घर घालि आई,
घने घर घालति है, घने घर घालिहै।
देखत सुनत समुझत हू न सूझै सोई,
कबहूँ कह्यो न 'काल हू को काल काल्हि है' ॥१२०॥

शब्दार्थ—साधौंगो = साधूँगा। मसक = मच्छर। हालिहै = हिलेगा। घने = अनेकों। घालना = बर्बाद करना।

पद्यार्थ—कुमार्गी लोग कहते हैं कि कल ही मैं जवान हूँगा और कल ही मेरे पास ज़मीन और धन हो जायगा और कल ही मैं शत्रुओं को लड़ाई में जीतूँगा। कल ही सब काम सिद्ध करूँगा, कल ही राज समाज इकट्ठा कर लूँगा। मच्छर के समान तुच्छ होते हुए भी वे कहते हैं कि मेरे भार से मेरु पर्वत हिल जायगा। तुलसीदासजी कहते हैं कि इसी कुबुद्धि के कारण अनेकों घर नष्ट हो गए, अनेकों घर नष्ट हो रहे हैं और अनेकों घर नष्ट होंगे। देखते, सुनते और समझते हुए भी किसी को नहीं सूझता। वे कभी नहीं कहते कि कल मृत्यु का भी समय है अर्थात् कल मैं मर भी सकता हूँ और मेरे सभी मनोरथ अपूर्ण रह सकते हैं।

अलंकार—ललित।

भयो न तिकाल तिहूँ लोक 'तुलसी' सो मंद,
निंदैं सब साधु, सुनि मानौं न सकोचु हौं।

जानत न जोग, हिय हानि मानौं, जानकीस !
काहे को परेखो पातकी प्रपंची पोचु हौं ॥
पेट भरिवे के काज महाराज को कहायों,
महाराज हू कह्यो है 'प्रनत-विमोचु हौं' ।
निज अघ जाल, कलिकाल की करालता
बिलोकि होत ब्याकुल, करत सोई सोचु हौं ॥१२१॥

शब्दार्थ—मंद = बुरा । परेखो = उलहना । प्रनत-विमोचु = शरण आये हुए का दुख दूर करने वाले ।

पद्यार्थ—तीनों कालों (भूत, भविष्य, वर्तमान) तीनों लोकों में तुलसी के समान कोई मूर्ख पैदा न हुआ, ऐसा कह कर साधु लोग मेरी निन्दा करते हैं, लेकिन यह सुनकर भी मैं बुरा नहीं मानता । हे रामचन्द्रजी, आप मुझे योग्य नहीं समझते, इसलिये मुझे अपनाने में अपनी हानि समझते हैं । इसके लिये मैं आपको क्यों उलहना दूँ, क्योंकि मैं खुद बहुत पापी, छलिया और नीच हूँ । मैं पेट भरने के लिये आपका कहलाता हूँ । महाराज ने भी अपने को शरणागतों का दुख दूर करने वाला कहा है । लेकिन अपने पापों के समूह और कलिकाल की करालता को देख कर मन में घबड़ाहट पैदा होती है, मैं इसी चिन्ता में रहता हूँ ।

अलंकार—उपमान लुप्तोपमा ।

धरम के सेतु जगमंगल के हेतु, भूमि-भार
हरिवे को अवतार लियो नर को ।
नीति औ प्रतीति-प्रीति-पाल प्रभु चालि मान,
लोकवेद राखिवे को पन रघुबर को ।

बानर विभीषन की ओर के कनावड़े हैं,
सो प्रसंग सुने अंग जरै अनुचर को।
राखे रीति आपनी जो होइ सोई कीजै, बलि,
'तुलसी' तिहारो घरजायउ है घर को॥ १२२॥

शब्दार्थ—कनावड़े=ऋणी। प्रसंग=हाल। घरजायउ=घर का पैदा हुआ, घरैला।

पदार्थ—हे रामचन्द्र जी, आप धर्म की मर्यादा हैं, आपने संसार के कल्याण के लिये और पृथ्वी का भार दूर करने के लिये मनुष्य रूप में अवतार लिया है। नीति, विश्वास और प्रेम की रक्षा करने वाला आपका स्वभाव है और लोक और वेद की मान-रक्षा करने का आपका प्रण है। आप बन्दरों और विभीषण के ऋणी हैं, यह सुन कर मुझको जलन होती है। अपनी रीति की रक्षा करते हुए आपसे जो हो सके वही कीजिये, तुलसी तो आप के घर का घरैला सेवक है।

अलंकार—रूपक।

नाम महाराज के निबाह नीको कीजै उर,
सबही सोहात, मैं न लोगनि सोहात हौं।
कीजै राम बार यहि मेरी ओर चखकोर,
ताहि लगि रंक ज्यों सनेह को ललात हौं।
'तुलसी' बिलोकि कलिकाल की करालता,
कृपालु को सुभाव समुझत सकुचात हौं॥
लोक एक भाँति को, तिलोकनाथ लोक बस,
आपनो न सोच, स्वामी सोच हो सुखात हौं॥१२३॥

शब्दार्थ—चखकोर=दया-दृष्टि। सनेह=तेल, प्रेम।

पद्यार्थ—महाराज रामचन्द्रजी के नाम से हृदय में अच्छी तरह निर्वाह करने वाला सब को अच्छा लगता है, लेकिन मैं किसी को अच्छा नहीं लगता। हे रामचन्द्रजी इस बार मेरी ओर निगाह कीजिये, उस प्रेम भरी निगाह के लिये मैं दरिद्री की तरह से लालायित रहता हूँ। तुलसीदासजी कहते हैं कि कलिकाल की करालता और रामचन्द्र जी के स्वभाव को देख कर मैं मन में सकुचाता रहता हूँ। संसार के लोग सभी एक तरह पाप में लिप्त रहने वाले हैं और तीनों लोकों के स्वामी रामचन्द्रजी लोगों के अधीन हैं, मुझे अपना सोच नहीं है बल्कि अपने स्वामी के सोच में सूखा जाता हूं।

तौलौं लोभ, लोलुप ललात लालची लबार,
बार बार लालच धरनि धन धाम को।
तब लौं बियोग-रोग-सोग, भोग जातना को,
जुग सम लगत जीवन जाम जाम को।
तौलौं दुख दारिद दहत अति नित तनु,
'तुलसी' है किंकर बिमोह कोह काम को।
सब दुख आपने निरापने सकल सुख,
जौलों जन भयो न बजाइ राजा राम को ॥१२४॥

शब्दार्थ—जाम=याम, पहर। निरापने=पराया। बजाई=प्रकट रूपक से।

पद्यार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जब तक मनुष्य प्रकट रूप से रामचन्द्रजी का दास नहीं हो जाता तभी तक वह सांसारिक सुख का चाहनेवाला, लालची, झूठा और ज़मीन, धन और घर का लालची बना रहता है; तभी तक उसे वियोग, रोग, शोक, यातनाएँ भोगनी

पड़ती हैं और जीवन का हर एक पहर उसे युग के समान मालूम होता है; तभी तक दुख, और दरिद्रता शरीर को जलाते हैं और मनुष्य मोह, क्रोध और काम का दास बना रहता है। उसके लिये सभी दुख अपने और सुख पराए होते हैं।

अलंकार— वृत्यानुप्रास।

तब लौं मलीन हीन दीन, सुख सपने न,
जहाँ तहाँ दुखी जन भाजन कलेस को।
तब लौं उबेने पायँ फिरत पेटै खलाय,
बाये मुँह सहत पराभौ देस देस को।
तब लौं दयावनो, दुसह दुख दारिद को,
साथरी को सोइबो, ओढ़िबो भूने खेस को।
जब लौं न भजै जीह जानकी-जीवन राम,
राजन को राजा सों तौ साहेब महेस को ॥१२५॥

शब्दार्थ—उबेने पायँ = नंगे पाँव। पेटै खलाय = खाली पेट दिखलाकर। पराभै = अपमान। दयावनो = दया का पात्र। साथरी = चटाई। भूने = बारीक। खेस = पुरानी रूई का बना हुआ खुरदरा कपड़ा।

पद्यार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जब तक जिह्वा राजाओं के राजा, शिवजी के भी स्वामी, सीतापति रामचन्द्र जी को नहीं भजता, तभी तक पापी, दीन, हीन बना रहता है, उसे स्वप्न में भी सुख नहीं मिलता। जहां कहीं भी वह रहता है क्लेश का पात्र बना रहता है। तभी तक वह नंगे पांव, खाली पेट लोगों को दिखलाते हुए, मुँह खोले हुए तथा देश विदेश का अपमान सहते हुए, घूमा करता है। तभी तक वह असह्य दुख सहता रहता हैं और दयनीय बना रहता है तथा उसे चटाई पर सोना और बारीक खुरदरा कपड़ा ओढ़ना पड़ता है।

ईसन के ईस, महाराजन के महाराज,
देवन के देव, देव ! प्रान हूँ के प्रान हौ।
काल हू के काल, महाभूतन के महाभूत,
कर्म हूँ के करम, निदान के निदान हौ।
निगम को अगम, सुगम 'तुलसी' हू से को,
एते मान सीलसिंधु करुनानिधान हौ।
महिमा अपार, काहू बोल को न वारापार,
बड़ी साहिबी में नाथ बड़े सावधान हौ ॥१२६॥

शब्दार्थ—महाभूत = पृथ्वी, जल वगैरः। निदान = आदि कारण। एतेमान = इतने।

पद्यार्थ—हे रामचन्द्रजी, आप ईशों के भी ईश, महाराजाओं के भी महाराजा, देवताओं के भी देवता, प्राणों के भी प्राण, कालों के भी काल, पृथ्वी, जल, आकाश, वायु और अग्नि इन महाभूतों के भी आदि कारण, कर्म के भी कर्म और कारण के भी कारण हैं। वेदो के लिये भी अगम्य हैं लेकिन आप इतने शीलवान और करुणा के घर हैं कि तुलसी जैसे साधारण लोगों के लिये भी सुगम हैं। आपकी महिमा इतनी अपार है कि कोई उसका वर्णन करके पार नहीं पा सकता। आप इतना बड़ा प्रभुत्व पाकर भी बड़ा सावधान रहते हैं, अपने सेवकों को नहीं भूलते।

(सवैया)

आरतपालु कृपालु जो राम, जेही सुमिरे तेहि को तहँ ठाढ़े।
नाम प्रताप महा महिमा, अँकरे किये खोटेउ, छोटेउ बाढ़े।
सेवक एक तें एक अनेक भए 'तुलसी' तिहुँ ताप न डाढ़े।
प्रेम बदों प्रहलादहि को जिन पाहन तें परमेश्वर काढ़े॥ १२७॥

शब्दार्थ—खँकरे=खरे, उत्तम। डाढ़े=जले हुए। बर्दों=सराहता हूँ।

पद्यार्थ—श्रीरामचन्द्रजी दुखियों का पालन करने वाले तथा कृपालु हैं। जो उनका जहाँ पर स्मरण करता है उसे वहीं पर वह खड़े दिखलाई पड़ते हैं उनके नाम का प्रताप और महिमा बहुत भारी है, जिसने खोटे को भी खरा और छोटे को भी बड़ा बना दिया। श्रीरामचन्द्र जी के सेवक एक से एक बढ़ कर हुए लेकिन तुलसी तो प्रहलाद के ही प्रेम की प्रशंसा करेगा, जिसने पत्थर से परमेश्वर पैदा किया।

काढ़ि कृपान, कृपा न कहूँ पितु काल कराल विलोकि न भागे।
'राम कहाँ?' 'सब ठाँउ है', 'खंभ में?', 'हाँ' सुनि हाँक नृकेहरि जागे।
बैरी विदारि भए विकराल, कहे प्रहलादहि के अनुरागे।
प्रीति प्रतीति बढ़ी 'तुलसी' तब तें सब पाहन पूजन लागे॥१२८॥

शब्दार्थ—कृपान=तलवार। नृकेहरि=नरसिंह भगवान। विदारि=फाड़कर।

पद्यार्थ—हिरणकश्यप ने तलवार खींच ली, जरा भी कृपा न की। उधर प्रहलाद भी अपने पिता को भयानक काल के रूप में देखकर भागा नहीं। हिरण्यकश्यप ने पूछा "तेरा राम कहां है?" प्रहलाद ने उत्तर दिया, "सर्वत्र है"। तब हिरण्यकश्यप पूछा, "क्या वह इस खंभे में भी है?" प्रहलाद ने उत्तर दिया, "हां।" यह सुनते ही नरसिंह भगवान प्रकट हो गये और बैरी को विदीर्ण करके बहुत ही भयानक रूप धारण किया। लेकिन प्रहलाद के प्रार्थना करने से वह शान्त हो गये। तुलसीदासजी कहते हैं कि तभी से लोगों का उनमें विश्वास और प्रेम बढ़ा और लोग पत्थर की पूजा करने लगे।

अलंकार—यमक।

अंतरजामिहु तें बड़ बाहरजामि हैं राम, जे नाम लिए तें।
धावत धेनु पन्हाइ लवाई ज्यों बालक बोलनि कान किए तें।
आपनी बूझि कहै 'तुलसी', कहिबे की न बावरी बात बिये तें।
पैज परे प्रहलादहु को प्रगटे प्रभु पाहन तें, न हिये तें॥ १२६॥

शब्दार्थ—अंतरजामि = निर्गुण। बाहरजामि = सगुण। पन्हाइ = पेन्हा लेना, दूध देने के लिये तैयार कर लेना। लवाई = हाल की ब्याई गाय। कान किये तें = सुनने से। बिये तें = दूसरे से। पैज = प्रतिज्ञा।

पद्यार्थ—ईश्वर के निर्गुण रूप से उनका सगुण रूप श्रेष्ठ है। क्योंकि सगुण रूप रामचन्द्रजी का नाम लेते ही वह अपने भक्त के पास वैसे ही दौड़ते हैं जैसे हाल की ब्याई हुई गाय अपने बछड़े की बोली सुनकर अपने थनो में दूध उतारती हुई उसके पास चली आती है। तुलसीदास जी कहते हैं कि मैं अपनी समझ के अनुसार कहता हूँ यद्यपि अपने पागलपन की बात दूसरे से कहने योग्य नहीं होती, प्रहलाद की प्रतिज्ञा को निबाहने के लिये भगवान् पत्थर से प्रकट हुए न कि हृदय से।

अलंकार—उदाहरण।

बालक बोलि दियो बलि काल को, कायर कोटि कुचाल चलाई।
पापी है बाप, बड़े परिताप तें आपनी ओर तें खोरि न लाई।
भूरि दई बिषमूरि, भई प्रहलाद सुधाई सुधा की मलाई।
रामकृपा 'तुलसी' जन को, जग होत भलेको भलाई भलाई॥ १३०॥

शब्दार्थ—खोरि न लाई = कमी न की। सुधाई = सीधापन।

पद्यार्थ—हिरण्यकश्यप ने प्रहलाद को बुलाकर काल के हवाले कर दिया। उस कायर ने प्रहलाद को मारने के लिये अनेकों प्रयत्न

किए। प्रहलाद का बाप बड़ा पापी था उसने घोर कष्ट देने में अपनी ओर से कोई कसर न रखी। उसने प्रहलाद को अनेकों विष की जड़ियां दीं। लेकिन प्रहलाद की सिधाई से सब कुछ अमृत की भलाई बन गया। तुलसीदासजी कहते हैं कि रामचन्द्रजी की कृपा से भले मनुष्य की भलाई इस संसार में अच्छी तरह से होती है।

अलंकार—यमक।

कंस करी ब्रजवासिन पै करतूति कुभाँति, चली न चलाई।
पांडु के पूत सपूत, कुपूत सुजोधन भो कलि छोटो छलाई।
कान्ह कृपालु बड़े नतपालु, गए खल खेचर खीस खलाई।
ठीक प्रतीत कहै 'तुलसी' जग होइ भले को भलाई भलाई ॥१३१॥

शब्दार्थ—नतपालु = शरण में आए हुओं को पालने वाले। खेचर = राक्षस। खीस गये = नष्ट हो गये। खलाई = दुष्टता से।

पद्यार्थ—कंस ने ब्रजवासियों पर बड़ा अत्याचार किया, लेकिन उसकी एक न चली। पाण्डु पुत्र सपूत थे और दुर्योधन कुपूत था, वह छल प्रपंच में कलि का छोटा भाई था। श्रीकृष्णजी बड़े कृपालु तथा शरणागतों की रक्षा करने वाले थे, इसलिये दुष्ट राक्षस अपनी दुष्टता से नष्ट हो गए। तुलसीदासजी अपना पक्का विश्वास कहते हैं कि संसार में अच्छे को अच्छाई है।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास।

अवनीस अनेक भए अवनी जिनके डर तें सुर सोच सुखाहीं।
मानव-दानव-देव-सतावन रावन घाटि रच्यो जगमाहीं॥
ते मिलये धरि धूरि सुजोधन जे चलते बहु छत्र की छाँहीं।
वेद पुरान कहै, जगजान गुमान गोविन्दहि भावत नाहीं॥ १३२॥

शब्दार्थ—घाटि रच्यो = उत्पात किया। छाँही = छाया।

पद्यार्थ—पृथ्वी में अनेकों बड़े बड़े राजा हुए जिनके घर से देवता लोग भी शोक से सूख जाते थे। मनुष्यों, राक्षसों और देवताओं को सताने वाले रावण ने संसार में बहुत उत्पात किये। दुर्योधन अनेक छत्रों की छाया में चलता था। भगवान ने उन्हें, उनके घमंड के कारण, धूल में मिला दिया। वेद और पुराण कहते हैं और संसार जानता है कि भगवान को घमंड अच्छा नहीं लगता।

जब नैनन प्रीति ठई ठग स्याम सों, स्यानी सखी हठि हौं बरजी।
नहिं जान्यो वियोग सो रोग है आगे झुकी, तब हौं, तेहि सों तरजी।
अब देह भई पट नेह के घाले सों, ब्योंत करै बिरहा दरजी।
ब्रजराज-कुमारबिना सुनु, भृंग! अनंग भयो जिय को गरजी॥१२३॥

शब्दार्थ—ठई = ठानी। ठग = मोहित होकर। हठि हौं बरजी = मुझे बहुत मना किया। झुकी = नाराज़ हुई। तरजी = झिड़क दिया। पट = वस्त्र। नेह के घाले सों = प्रेम करने से। अनंग = कामदेव। गरजी = ग्राहक।

पद्यार्थ—एक सखी उद्धव से कहती है कि जब मेरे नेत्रों ने छलिया श्रीकृष्ण से प्रेम बढ़ाया तो मेरी स्यानी सखी ने मुझे बहुत मना किया। उस समय मैंने नहीं जाना कि आगे वियोग का रोग भी है। उस समय मैंने नाराज़ होकर उसे झिड़क दिया। अब प्रेम के करने से शरीर वस्त्र के समान दुबला पतला हो गया है, विरह रूपी दर्जी इसे काट छांट रहा है। हे भौरे, सुनो, कृष्ण के बिना कामदेव भी मेरी जान का ग्राहक हो गया है।

अलंकार—रूपक।

जोग कथा पठई व्रज को, सब सो सठ चेरी की चाल चलाकी।
ऊधो जू! क्यों न कहैं कुबरी जो बरी नट नागर हेरि हलाकी।
जाहि लगै पर जानै सोई,'तुलसी' सो सुहागिनि नंदलला की।
जानी है जानपनी हरि की, अब बाँधियैगी कछु मोटि कला की।१३४।

शब्दार्थ=शठ चेरि=कुबजा। बरी=ब्याहा। नट नागर=चतुर खेलाड़ी, श्रीकृष्ण। हेरि = देखकर। हलाकी = घातक। जानपनी= चालाकी। कला=चतुराई। कुबरी=कुबजा, बुरे वर शादी करने वाली,

पद्यार्थ—गोपियां उद्धव से कहती है कि श्रीकृष्ण ने व्रज के लिये योग का जो संदेशा भेजा है वह सब दुष्ट दासी कुब्जा की चालाकी भरी चाल है। हे उद्धव जी, हम उसे कुबरी क्यों न कहें, क्योंकि उसने घातक और चतुर खेलाड़ी कृष्ण को ढूँढ़ कर ब्याह कर लिया। परन्तु जिसको (चोट) लगती है वही जानता है। वह तो नंदलला, श्रीकृष्ण की सोहागिनी है। अब हम लोगों ने भी कृष्ण के ज्ञान को समझ लिया है (कि वह कुबड़ी पीठ पर ही रीझते हैं) इसलिये हम लोग चतुराई से अपनी पीठ पर कुछ गठरी सी बांध लेंगे (जिससे हम लोगों को कुबड़ी समझ कर कृष्ण हम पर रीझेंगे)।

अलंकार—परिकर।

(कबित्त)

पठयो है छपद छबीले कान्ह कैहूँ कहूँ
　　खोजि कै खवास खासो कूबरी सी बाल को।
ज्ञान को गढ़ैया, बिनु गिरा को पढ़ैया, बार
　　खाल को कढ़ैया, सो बढ़ैया उर साल को।
प्रीति को बधिक, रस रीति को अधिक, नीति-
　　निपुन, बिवेक है, निदेस देसकाल को।

'तुलसी' कहे न बनै, सहेही बनैगी सब,
जोग भयो जोग को, बियोग नंदलाल को ॥१३५॥

शब्दार्थ—छपद = भौंरा। कैहूँ = किसी तरह से। कहूँ = कहीं से। खवास = नौकर। खासो = अच्छा। बाल = बाला, युवती। बार खाल कढ़ैया = बाल की खाल निकालने वाला। साल = पीड़ा। निदेस = आज्ञा। जोग = योग, अवसर।

पदार्थ—छबीले कृष्ण ने किसी तरह कहीं से खोज कर कुवरी जैसी युवती के अच्छे सेवक को भौंरा बनाकर भेजा है। वह बना बनाकर ज्ञान की बातें कहने वाला, बिना वाणी के ही बोलने वाला, बाल की खाल निकालने वाला और हृदय में पीड़ा उत्पन्न करने वाला है। वह प्रीति की हत्या करने वाला, रसरीति का और भी प्रबल शत्रु, नीति में चतुर तथा ज्ञानी है। यह देश और काल को देखते हुए ठीक ही है। अब कुछ कहा नहीं जाता, सब कुछ सहना ही पड़ेगा। क्योंकि श्रीकृष्ण से वियोग होने पर योग का अवसर आही गया।

अलंकार—हेतु।

हनुमान ह्वै कृपालु, लाड़िले लखन लाल,
भावते भरत कीजै सेवक सहाय जू।
बिनती करत दीन दूबरो दयावनो सो,
बिगरे तें आपुही सुधारि लीजै भाय जू।
मेरी साहिबिनी सदा सीस पर बिलसति,
देवि! क्यों न दास को दिखाइयत पाँयजू।
खीझहू में रीझिबे की बानि, राम रीझत हैं,
रीझे ह्वै हैं राम की दुहाई रघुराय जू॥ १३६॥

शब्दार्थ—लाड़िले = प्यारा। भावते = प्रिय। साहिबिनी = स्वामिनी।

पद्यार्थ—हे हनुमान जी, हे प्यारे लखनलालजी, हे प्यारे भरतजी आप लोग कृपालु होकर इस सेवक की सहायता कीजिये। मैं दीन, दुर्बल, दया का पात्र, आपसे विनती करता हूँ। यदि विनती करने में किसी तरह की भूल हुई हो तो उसे आप ही सुधार लीजिये। मेरी स्वामिनी सीता जी सदा लोगों के शिश पर विराजमान रहती हैं। हे देवि, आप अपने दास को अपने चरणों का दर्शन क्यों नहीं करातीं? रामचन्द्र जी की तो नाराज़ होने पर भी प्रसन्न होने की आदत है, वह तो प्रसन्न होते ही हैं। मैं रामचन्द्र जी की दुहाई देकर कहता हूँ कि वह अवश्य ही प्रसन्न हुए होंगे।

अलंकार—विरोध।

(सवैया)

वेष विराग को, राग भरो मनु, माय! कहौं सतिभाव हौं तोसों।
तेरे ही नाथ को नाम लै बेंचिहौं पातकी पामर प्राननि पोसों।
एते बड़े अपराधी अघी कहुँ, तैं कहु अंब! को मेरो तू मो सों।
स्वारथ को परमारथ को, परिपूरन भो फिरि घाटि न होसों ॥१३७

शब्दार्थ—राग = प्रेम। पामर = नीच। घाटि = कम।

पद्यार्थ—हे माता, मैं शुद्ध मन से आपसे कहता हूँ कि मेरा वेष तो वैरागियों का है, लेकिन मेरे मन में राग भरा हुआ है। मैं पापी और नीच आपही के स्वामी रामचन्द्रजी का नाम बेंच कर अपने प्राणों को पालता हूँ। हे माता, मेरे जैसे पापी और अपराधी को भी 'तू मेरा है' ऐसा कह दो। जिससे मेरा स्वार्थ और परमार्थ दोनों पूर्ण हो जाय, फिर मुझे किसी बात की कमी न रह जाय।

(कवित्त)

जहाँ बालमीकि भए व्याध ते मुनींद्र साधु,
'मरा मरा' जपे सुनि सिष ऋषि सात की।
सीय को निवास लव-कुस को जनमथल,
'तुलसी' छुवत छाँह ताप गरै गात की।
विटप-महीप सुरसरित समीप सोहै,
सीतावट पेखत पुनीत होत पातकी।
वारिपुर दिगपुर बीच बिलसति भूमि,
अंकित जो जानकी-चरन-जलजात की ॥१३८॥

शब्दार्थ—ताप गरै = तीनों ताप नष्ट हो जाते हैं। विटप-महीप = वृक्षों का राजा, सीतावट। पेखत = देखते ही। जलजात = कमल।

पद्यार्थ—जहां पर सप्तऋषियों की शिक्षा को सुन कर 'मरा मरा' जपते जपते वाल्मीकि जी बहेलिया से महर्षि हो गए, जो सीता का निवास स्थान तथा लव-कुश की जन्म भूमि है, जिस स्थान की छाया के स्पर्श मात्र से शरीर के तीनों ताप नष्ट हो जाते हैं, वह वृक्षों का राजा सीतावट गंगा के किनारे सुशोभित है, जिसके दर्शन मात्र से पापी भी पवित्र हो जाता है। वह स्थान वारिपुर और दिगपुर के बीच विराजमान है, जहां पर सीता जी के कमल चरण के चिन्ह अंकित हैं।

मरकत बरन परन, फल मानिक से,
लसै जटाजूट जनु रूख बेप हरु है।
सुपमा को ढेरु, कैधौं सुकृत सुमेरु, कैधौं
संपदा सकल मुद मंगल को घरु है।
देत अभिमत जो समेत प्रीति सेइये,
प्रतीति मानि 'तुलसी' बिचारि काको थरु है।

सुरसरि निकट सोहावनी अवनि सोहै,
राम-रमनी को वट कलि काम-तरु है ॥१३९॥

शब्दार्थ—मरकत वरन परन = मर्कत मणि के रंग के पत्ते। लसै = सुसोभित होता है। हरु = शिवजी। सुषमा = सुन्दरता। कैधौं = अथवा। अभिमत = इच्छित वस्तु। थरु = स्थान।

पद्यार्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि जिसके पत्ते नीलम के से, फल माणिक के से, और जटाएँ ऐसी सुशोभित हैं मानों पेड़ के वेष में शिवजी खड़े हैं। जो शोभा का ढेर अथवा शुभ कर्मों का सुमेरु है अथवा सभी सम्प्रदाओं तथा आनन्द मंगल का घर है। जो विश्वास करके प्रेमपूर्वक सेवा करने से सारी इच्छाओं को पूर्ण करता है, ऐसे सीतावट के समान दूसरा स्थान कौन है? वह सीतावट गंगा के निकट सुन्दर भूमि में शोभायमान है जो कलि में साक्षात कल्पवृक्ष है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा और संदेह।

देवधुनो पास मुनिवास श्रीनिवास जहाँ,
प्राकृत हूँ वट वूट बसत पुरारि हैं।
जोग जप जाग को विराग को पुनीत पीठ,
रागिनी पै सीठि डीठि बाहरी निहारि हैं।
'आयसु,, 'आदेस' 'बाबा', 'भलो भलो' 'भाव सिद्ध',
तुलसी विचारि जोगी कहत पुकारि हैं।
रामभगतन को तौ कामतरु तें अधिक,
सिय-बट सेए करतल फल चारि हैं ॥१४०॥

शब्दार्थ—देवधुनी = गंगाजी। वट वूट = बरगद का पेड़। पुरारि = शिवजी। पीठ = स्थान। सीठि = कठोर। डीठि = निगाह। बाहरी = बाज। करतल = हथेली में, प्राप्त।

पद्यार्थ—साधारण बरगद के पेड़ों में भी शिवजी निवास करते हैं। यह स्थान तो गंगा जी के पास है और यहां पर वाल्मीकि मुनि और सीता जी का निवास स्थान है। वह योग, जप, यज्ञ और वैराग्य के लिए पवित्र स्थान है और मनुष्य के काम, क्रोध, लोभ रूपी पक्षियों पर बाज की तरह कड़ी दृष्टि रखता है। तुलसीदास जी कहते हैं कि वहां पर रहने वाले योगी विचार के साथ 'आयसु' 'आदेश,' 'बाबा,' 'भलो भलो,' 'भाव सिद्धि,' आदि शब्दों का उच्चारण किया करते हैं। राम भक्तों के लिये तो वह कल्प वृक्ष से भी अधिक है, क्योंकि सीताबट की सेवा करने से वे अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों फल प्राप्त कर लेते हैं।

जहाँ बन पावनो, सुहावनो बिहङ्ग मृग,
देखि अति लागत अनन्द खेत खूंट सो।
सीतारामलषननिवास, बास मुनिन को,
सिद्ध साधु साधक सबै बिबेक बूंट सो।
झरना झरत झारि सीतल पुनीत बारि,
मंदाकिनी मंजुल महेस जटाजूट सो।
'तुलसी' जौ रामसों सनेह सांचो चाहिये,
तौ सेइये सनेह सों बिचित्र चित्रकूट सो॥१४१॥

शब्दार्थ—खेत खूंट = खेत खलिहान।

पद्यार्थ—जहां पवित्र वन है, सुन्दर पशु पक्षी हैं, जो स्थान देखने में खेत खलिहान की तरह आनन्ददायक जान पड़ता है, जहां रामचन्द्र व सीता जी तथा लक्ष्मण रहते हैं, जो मुनियों का निवास स्थान है, जो सिद्ध, साधु, साधकों के लिये ज्ञान का वृक्ष है, जहां शीतल और स्वच्छ जल वाले झरने झरते रहते हैं, जहां महादेव की जटा से

निकल कर सुन्दर मंदाकिनी नदी बहती है। तुलसीदास जी कहते हैं कि अगर रामचन्द्र जी से सत्य स्नेह चाहते हो तो प्रेमपूर्वक ऐसे विचित्र चित्रकूट पर्वत का सेवन करो।

अलंकार—उपमा।

मोहवन कलिमल-पल-पीन जानि जिय,
साधु गाय विप्रन के भय को नेवारिहै।
दीन्ही है रजाइ राम, पाइ सो सहाइ लाल,
लषन समर्थ वीर हेरि हेरि मारिहै॥
मंदाकिनी मंजुल कमान असि, वान जहाँ
वारि-धार, धीरि धरि सुकर सुधारिहै।
चित्रकूट अचल अहेरी बैठ्यो घात मानो,
पातक के व्रात घोर सावज सँहारिहै॥१४२॥

शब्दार्थ—पल = माँस। पीन = मोटा। रजाइ = आज्ञा। सुकर = अपने हाथ से। अचल = पहाड़। व्रात = समूह। असि = ऐसी। सावज = बनैले जन्तु। सँहारि है = मारेंगे।

पद्यार्थ—मोह रूपी वन में कलियुग के पापों को मोटा ताज़ा जानकर जो साधु, गाय और ब्राह्मणों के भय को दूर करेगा। इसके लिये रामचन्द्र जी ने आज्ञा दी है। वह लक्ष्मण जी ऐसे समर्थ वीर की सहायता पाकर ढूँढ़ ढूँढ़ कर पापों का शिकार करेगा। वहां चित्रकूट पर्वत शिकारी की तरह घात में बैठा है। वह मंदाकिनी रूपी धनुष और उसकी जल की धारा रूपी बाण को धीरतापूर्वक धारण करके पापों के समूह रूपी जंगली जानवरों का शिकार करेगा।

अलंकार—रूपक।

(सवैया)

लागि दवारि पहार ठही, लहकी कपि लंक जथा खर-खौकी।
चारु चुवा चहुँ ओर चलैं, लपटैं झपटैं सो तमीचर तौंकी।
क्यों कहि जाति महा सुषमा, उपमा तकि ताकत है कवि कौंकी।
मानो लसी 'तुलसी' हनुमान हिये जगजीति जराय की चौकी ॥१४३

शब्दार्थ—ठही = अच्छी तरह। लहकी = जल उठी। खर-खौकी = तृण को खाने वाली, आग। चुवा = चौपाये। तमीचर = राक्षस तौंकी = तप कर। कौंकी = कितनी देर से। लसी = सुशोभित हुई। जराय = जड़ाऊ।

पद्यार्थ—पहाड़ में दावाग्नि अच्छी तरह से लगी मानों हनुमान जी ने लंका में आग लगा दी है। सुन्दर सुन्दर जानवर चारों ओर इस प्रकार भागे जा रहे हैं मानो राक्षस आग से झुलस कर भागे जा रहें हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि उस बड़ी सुन्दरता का वर्णन कैसे हो सकता है। उसकी उपमा के लिये कवि कभी से परेशान है। वह ऐसी जान पड़ती है मानो संसार भर में विजयी होने के कारण हनुमान जी की छाती पर जड़ाऊ चौकी सुशोभित है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

देव कहैं अपनी अपना अवलोकन तीरथ-राज चलो रे।
देखि मिटैं अपराध अगाध, निमज्जत साधु समाज भलो रे।
सोहै सितासित को मिलिवो, 'तुलसी' हुलसै हिय हेरि हलोरे।
मानो हरे तृन चारु चरैं बगरे सुरधेनु के धौल कलोरे॥ १४४॥

शब्दार्थ—निमज्जत = स्नान करने से। सितासित = (सित =

सफेद + असित = काला) सफेद और नीले जल वाली गंगा, यमुना। हुलसै = प्रसन्न होता है। हलेरे = लहर। कलोरे = बछड़े।

पद्यार्थ—देवता लोग आपस में कहते हैं कि तीर्थराज प्रयाग का दर्शन करने चलना चाहिये। उनके दर्शन से भारी पाप नष्ट हो जाते हैं। वहां पर अच्छे साधुओं का समाज स्नान करता है। तुलसीदास जी कहते हैं कि गंगा यमुना का मिलना बड़ा अच्छा लगता है। उसको देखकर चित्त प्रसन्न होता है। तरंगों को देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो कामधेनु के सुन्दर सफ़ेद बछड़े फैले हुए हरी हरी दूब को चर रहे हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

देवनदी कहँ जो जन जान किये मनसा, कुल कोटि उधारे।
देखि चले, झगरैं सुरनारि, सुरेस बनाइ बिमान सँवारे।
पूजा को साज बिरंचि रचैं, 'तुलसी' जे महातम जानन हारे।
ओक की नींव परी हरिलोक बिलोकत गंग तरंग तिहारे ॥२४५॥

शब्दार्थ—ओक = घर।

पद्यार्थ—गंगा जी में स्नान करने के लिये जो इच्छा मात्र करते हैं उनके करोड़ों पुरुषाओं का उद्धार हो जाता है। उनको स्नान करने के लिये चलते देख कर देवताओं की स्त्रियां उनके लिये आपस में लड़ने लगती हैं और इन्द्र उनको लाने के लिये अपने रथ को अच्छी तरह सजाने लगते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि ब्रह्माजी जो गंगा के महात्म को जानने वाले हैं उनको पूजने के लिये पूजा का सामान सजाने लगते हैं। हे गंगा जी तुम्हारे तरंगों को देखते ही स्वर्ग में उनके लिये मकान की नींव पड़ जाती है।

अलंकार—अतिशयोक्ति।

ब्रह्म जो व्यापक वेद कहैं, गम नाहिं गिरा गुन-ज्ञान गुनी को।
जो करता भरता हरता सुर-साहिब, साहिब दीन दुनी को।
सोइ भयो द्रवरूप सही जु है नाथ बिरंचि महेस मुनी को।
मानि प्रतीति सदा 'तुलसी' जल काहे न सेवत देवधुनी को ?१४६॥

शब्दार्थ—गम नाहिं = पहुँच नहीं है, अगम्य हैं। गिरा = सरस्वती द्रवरूप = जल के रूप में।

पद्यार्थ—जिस ब्रह्म को वेद सर्व व्यापी कहता है, जिसके गुण और ज्ञान तक सरस्वती और गुणियों तक की पहुँच नहीं है, जो संसार का कर्ता भर्ता और हर्ता है, जो देवताओं का स्वामी और दीन दुखियों की सुधि लेने वाला है तथा जो ब्रह्मा, शिव और मुनियों का नाथ है, वही ब्रह्म जल रूप हुआ है। तुलसीदास जी कहते हैं कि ऐसा विश्वास करके गंगाजी का सेवन करना चाहिये।

बारि तिहारो निहारि, मुरारि भये परसे पद पाप लहौंगो।
ईस ह्वै सीस धरौं पै डरौं, प्रभु की समता बड़ दोष दहौंगो।
बरु बारहिं बार सरीर धरौं, रघुबीर को ह्वै तव तीर रहौंगो।
भागीरथी! बिनवौं करजोरि, बहोरि न खोरि लगै सो कहौंगो॥१४७॥

शब्दार्थ—खोरि = दोष। बहोरि = फिर।

पद्यार्थ—हे गंगा जी, तुम्हारा जल ब्रह्म स्वरूप है, विष्णु भगवान के चरणों से निकला है यह जान कर यदि मैं उसे पैरों से छूऊँ तो भगवान की बराबरी करने के कारण मुझे पाप लगेगा। अगर मैं शिवजी की तरह उसे सिर पर धारण करूँ, तो प्रभु की बराबरी करने के दोष से मैं जलूँगा। बल्कि मुझे बार बार शरीर धारण करना पड़े पर मैं रामचन्द्र जी का होकर तुम्हारे तट पर निवास करूँगा। हे गंगा जी, मैं हाथ जोड़ कर प्रार्थना करता हूँ कि मैं वहीं बात कहूँगा जिससे मुझे फिर दोष न लगे।

(कवित्त)

लालची ललात, बिललात द्वार द्वार दीन,
बदन मलीन, मन मिटै न बिसूरना ।
ताकत सराध, कै विवाह, कै उछाह कछू,
डोलै लोल बूझत सबद ढोल तूरना ॥
प्यासे हू न पावै वारि, भूखे न चनक चारि,
चाहत अहारन पहार, दारि कूरना ।
सोक को अगार दुख-भार-भरो तौलौं जन
जौलौं देवी द्रवै न भवानी अन्नपूरना ॥१४८॥

शब्दार्थ—बिसूरना = सोच। तूरना = तुरही। चनक = चना। दारि कूरना = दाल के कूर भरे हुए अच्छे पकवानों का ढेर।

पद्यार्थ—लालची आदमी लालायित और दीन होकर दरवाजे दरवाजे भटकता फिरता है। उसका चेहरा मलीन रहता है, उसके मन से सोच नहीं दूर होता। वह देखता रहता है कि कहीं पर श्राद्ध, विवाह या और कोई उत्सव तो नहीं हो रहा है और वह ढोल और तुरही का शब्द सुन कर चंचल होकर घूमता रहता है और पूछता रहता है (कि यहां कोई उत्सव तो नहीं हो रहा है।) प्यास लगने पर उसे जल भी नहीं मिलता और न भूख लगने पर चने के चार दाने ही मिलते हैं। पर वह चाहता है कि अच्छे अच्छे पकवानों का ढेर भोजन के लिये मिले। वह मनुष्य उस समय तक शोक का घर और दुख के बोझ से भरा हुआ रहता है, जब तक भवानी अन्नपूर्णा उस पर दया नहीं करतीं।

(छप्पय)

भस्म अंग, मर्दन अनंग, संतत असंग हर।
सीस गंग, गिरजा अधंग, भूषन भुजंगवर ॥
मुंडमाल, विधु-बाल भाल, डमरू कपाल कर।
विबुध-बृन्द-नवकुमुद-चंद, सुख-कंद, सूलधर ॥
त्रिपुरारि त्रिलोचन दिग्वसन, विषभोजन भव-भय-हरन।
कह 'तुलसिदास' सेवत सुलभ सिव सिव सिव संकर सरन ॥ १४६ ॥

शब्दार्थ—मर्दन = नाश करने वाले। अनंग = कामदेव। संतत असंग = सदा अकेला रहने वाले। अधंग = अर्द्धांगिनी। विधु-बाल भाल = ललाट पर दूज का चन्द्रमा। विबुध-बृंद-नवकुमुद-चंद = देवता रूपी नये कुमुद को खिलाने के लिये चन्द्रमा के समान। सूलधर = त्रिशूल धारण करने वाले। दिगवसन = दिशाएं हैं वस्त्र जिनका, नंगे रहने वाले।

पद्यार्थ—शरीर में भस्म रमाये हुए, कामदेव का नाश करने वाले, सदा एकान्त में रहने वाले शिव, जिनके सिर पर गंगा, आधे अंग में पार्वती हैं और सर्पराज जिनके भूषण हैं, जो मुंडों की माला पहने हुए हैं, जिनके ललाट पर दूज का चन्द्रमा हैं, हाथ में डमरू और खप्पर धारण किये हुए हैं, जो देवता रूपी नये कुमुदो को खिलाने के लिये चन्द्रमा के समान हैं, जो सुख के मूल और त्रिशूल को धारण करने वाले हैं, जो त्रिपुर राक्षस के शत्रु, तीन नेत्र वाले, बिल्कुल नंगे रहने वाले, विष का भोजन करने वाले, संसार के तापों को दूर करने वाले तथा जो सेवा करने पर सुलभ हैं, तुलसीदासजी कहते हैं कि मैं ऐसे शिवजी की सदा शरण में हूँ।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

गरल-असन, दिग्वसन, व्यसन-भंजन, जन-रंजन ।
कुंद-इंदु-कपूर--गौर, सच्चिदानंद घन ॥
विकट वेष, उर सेष, सीस सुरसरित सहज सुचि ।
सिव, अकाम, अभिराम धाम, नित रामनाम रुचि ॥
कंदर्प-दर्प-दुर्गम-दवन, उमारवन गुनभवन हर ।
तुलसीस त्रिलोचन, त्रिगुन-पर, त्रिपुर-मथन, जयत्रिदसवर ॥१५०॥

शब्दार्थ—व्यसन भंजन = बुरी आदतों को दूर करने वाले । जन-रंजन = भक्तों को प्रसन्न करने वाले, कुंद-इन्दु-कपूर-गौर = कुंद फूल, चन्द्रमा, और कपूर के समान गोरे । अकाम = इच्छारहित । अभिराम धाम = आनन्द के घर । कंदर्प-दर्प-दुर्गम-दवन = कामदेव के कठिन अभिमान को चूर्ण करने वाले । त्रिगुन-पर = तीनोंगुणों (सत, रज, तम) से परे । त्रिदसवर = देवताओं में श्रेष्ठ ।

पदार्थ—विष का भोजन करने वाले, नंगे रहने वाले, बुरी आदतों को छुड़ाने वाले, लोगों को प्रसन्न करने वाले, सच्चिदानन्दमय, भयानक भेष वाले, छाती पर शेषनाग को लपेटे हुए, स्वभाव से ही पवित्र गंगा जी को सिर पर धारण करने वाले, इच्छा रहित, आनन्द के घर, राम नाम में नित्य रुचि रखने वाले, कामदेव के कठिन अभिमान को चूर्ण करने वाले, उमारमण, गुणों के घर, तुलसी के स्वामी, तीन नेत्र वाले, तीनों गुणों से परे, त्रिपुर राक्षस का नाश करने वाले, देवताओं में श्रेष्ठ शिवजी की जय हो ।

अलंकार—स्वभावोक्ति ।

अर्ध-अंग अंगना, नाम जोगीस जोगपति ।
विषम असन, दिग वसन, नाम विस्वेस विस्वगति ॥

कर कपाल, सिर माल व्याल, बिष भूति बिभूषन।
नाम सुद्ध, अविरुद्ध, अमर, अनवद्य, अदूषन ॥
बिकराल भूत-बैताल-प्रिय, भीम नाम भवभय-दमन।
सब बिधि समर्थ, महिमा अकथ 'तुलसिदास' संसयसमन ॥ १५१॥

शब्दार्थ—अंगना = स्त्री। विषम = कठिन। विश्वगति = संसार को शरण देने वाले। अविरुद्ध = जिसके विरुद्ध कोई न हो। अनवद्य = बन्दनीय। भीम = भयंकर।

पदार्थ—उनके बायें अंग में स्त्री विराजमान है, पर उनका नाम योगियों का स्वामी और योगपति हैं। वह भांग धतूरे आदि विषम पदार्थों का सेवन करते हैं और नंगे रहते हैं, फिर भी उनका नाम विश्वेश्वर और संसार को शरण देने वाला है। वह हाथ में खप्पर, सिर में सर्पों की माला तथा विष और भस्म का आभूषण धारण किये हुए हैं। फिर भी उनका नाम है शुद्ध, जिनका विरोधी कोई नहीं है। वह अमर, बन्दनीय और दोषरहित हैं। वह भयंकर भूत बैतालों को प्रिय हैं और उनका नाम भयंकर है और वह संसार के भय को दूर करने वाले हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि वह सब तरह से समर्थ हैं, उनकी महिमा अपरम्पार है और वह संशय को दूर करने वाले हैं।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

भूतनाथ भयहरन, भीम, भय-भवन भूमिधर।
भानुमंत, भगवंत, भूति भूषन भुजंग वर ॥
भव्य-भाव-वल्लभ, भवेस भवभार-बिभंजन।
भूरि भोग, भैरव, कुजोग-गंजन, जनरंजन ॥
भारती-बदन बिष-अदन सिव, ससि-पतंग-पावक-नयन।
कह 'तुलसिदास' किन भजसि मन भद्रसदन मर्दनमयन ॥१५२॥

शब्दार्थ—भानुमंत = प्रकाशमान । भव्य-भाव-वल्लभ = पवित्र भाव ही जिन्हें प्रिय है । कुजोग-गंजन = दुर्भाग्य को मिटाने वाले । भारती-वदन = अपने मुख में सरस्वती को रखने वाले । विष-अदन = विष खाने वाले । पतंग = सूर्य । भद्र सदन = कल्याण के घर । मर्दनमयन = कामदेव को नष्ट करने वाले ।

पद्यार्थ—वह भूतों के स्वामी, भव को दूर करने वाले प्रकाशमान सौभाग्यशाली, भस्म तथा सर्प का आभूषण धारण करने वाले हैं । पवित्र भाव ही उनको प्रिय है, वह संसार के स्वामी और संसार के भार को उतारने वाले हैं । वह अनेक भोगों को भोगने वाले भयंकर कुयोगों का नाश करने वाले तथा लोगों को प्रसन्न करने वाले हैं । उनके मुँह में सरस्वती रहती हैं, वह विष को खाने वाले तथा कल्याण करने वाले हैं और चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि उनके नेत्र हैं । तुलसीदासजी कहते हैं कि ऐ मन, ऐसे कल्याण के घर और कामदेव को नाश करने वाले शिवजी को क्यों नहीं भजते ।

(सवैया)

नाँगो फिरै, कहै माँगतो देखि "न खाँगो कछू, जनि माँगिए थोरो" ।
रांकनि नाकप रीझि करै, 'तुलसी' जग जो जुरै जाचक जोरो ।
"नाक सँवारत आयो हौं नाकहिं, नाहिं पिनाकिहिं नेकु निहोरो" ।
ब्रह्म कहै "गिरिजा! सिखवो, पति रावरो दानिहैबावरो भोरो"॥१५३॥

शब्दार्थ—न खाँगो कछू = मुझे किसी वस्तु की कमी नहीं है । राँकनि = भिखारी । नाकप = इन्द्र । जाचक जोरो = भीखमंगे इकट्ठा करते हैं । नाक = स्वर्ग । सँवारत = बनाते हुये । नाकहिं = नाक में दम आगया है । पिनाकिहिं = शिवजी । नेकु = थोड़ासा । निहोरो = परवाह ।

पद्यार्थ—वह स्वयं नंगा फिरता है लेकिन भिखमंगों को देखकर कहता है कि मेरे पास किसी चीज़ की कमी नहीं है, थोड़ा न मांगो। संसार में इकट्ठा करने से जितने भी भिखारी मिल सके, उनको एकत्र किया और प्रसन्न होकर उन्हें इन्द्र बना दिया। स्वर्ग बनाते बनाते मेरी नाक में दम आ गया है, लेकिन शिव को इसकी ज़रा भी परवाह नहीं है। ब्रह्माजी पार्वती से प्रार्थना करते हैं कि हे पार्वती, तुम्हारा पति दानी तो है पर भोला और बावला है। तुम उन्हें समझाओ।

विष-पावक, ब्याल कराल गरे, सरनागत तौ तिहुँ ताप न डाढ़े।
भूत बैताल सखा, भव नाम, दलै पल में भव के भय गाढ़े।
तुलसीस दरिद्र-सिरोमनि सो सुमिरे दुखदारिद होहिं न ठाढ़े।
भौन में भाँग, धतूरोई आँगन, नाँगे के आगे हैं माँगने बाढ़े॥१५४॥

पद्यार्थ—शिवजी के कंठ में विष, नेत्रों में अग्नि और गले में भयानक सर्प लपटे हुए हैं, लेकिन उनकी शरण में आये हुए तीनों तापों से दग्ध नहीं होते। भूत वैताल उनके सखा हैं, उनका नाम भव है, और वह क्षणमात्र में संसार के कठिन भय से मुक्त कर देते हैं। तुलसी के ईश शंकरजी दरिद्रियों में शिरोमणि हैं, किन्तु उनका स्मरण करने से दुख और दरिद्रता खड़े नहीं रह सकते। उनके घर में भांग और आंगन में धतूरा है, तोभी इस नंगे के आगे भीखमंगों की भीड़ लगी हुई है।

अलंकार—व्याजस्तुति।

सीस बसै बरदा, बरदानि, चढ़्यो बरदा, धरन्यौ बरदा है।
धाम धतूरो विभूति को कूरो, निवास तहाँ शव लै मरे दाहै।
व्याली कपाली है ख्याली, चहूँ दिसि भाँगकी टाटिन को परदा है।
राँक-सिरोमनि काकिनि भाग विलोकत लोकप को? करदा है॥१५५

शब्दार्थ—बरदा = गंगाजी, बैल, वर देने वाली। घरन्यौ = स्त्री, पार्वती। ख्याली = कौतुकी। काकिनि = कौड़ी। लोकपको = लोकपाल क्या हैं। करदा = धूल, तुच्छ।

पद्यार्थ—उनके सिर पर गङ्गाजी निवास करती हैं, वे श्रेष्ट दानी हैं, बैल की सवारी करते हैं और उनकी स्त्री, पार्वती भी वर देने वाली हैं। उनके घर में धतूरे और भस्म के कूड़े लगे हुए हैं और उनका निवास स्थान वहां पर है जहां पर मुर्दे जलाये जाते हैं। वह गले में सर्प और हाथ में खप्पर धारण करने वाले तथा कौतुकी हैं। उनके घर के चारों तरफ़ भांग की टट्टियों का पर्दा लगा हुआ है। ऐसे दरिद्रियों में शिरोमणि शिवजी कौड़ी के महँगे को भी देखते ही इतना धनवान बना देते हैं कि उसके सामने लोकपाल की भी क्या गिनती है ? वे भी उसके सामने तुच्छ हैं।

दानी जो चारि पदारथ को त्रिपुरारि तिहूँपुर में सिर-टीको।
भोरो भलो, भले भाय को भूखो भलोई कियो सुमिरे 'तुलसी' को॥
ता बिनु आस को दास भयो, कबहूँ न मिट्यो लघु लालच जी को।
साधो कहा करि साधन तैं जो पै राधो नहीं पति पारवती को॥१५६

शब्दार्थ—सिर-टीको = श्रेष्ठ। राधो = आराधना किया।

पद्यार्थ—जो शिवजी अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों पदार्थों का दान देने वाले हैं, तथा तीनो लोकों में शिरोमणि हैं, वह बहुत भोले भाले और सच्ची भक्ति के चाहने वाले हैं। उन्होंने स्मरण करते ही तुलसी का भला किया। उनको छोड़कर तुम (सांसारिक) आशाओं का दास हुआ और तुम्हारे दिल से लालच जरा भी दूर न हुआ। तुमने योग तप आदि साधन करके क्या सिद्ध कर लिया, यदि तुमने पार्वती के स्वामी शिवजी की आराधना न की।

जात जरे सब लोक बिलोकि त्रिलोचन सो बिष लोकि लियो है।
पान कियो बिष, भूषन भो, करुना-बरुनालय साँइ हियो है॥
मेरोई फोरिबे जोग कपार, किधौं कछु काहू लखाय दियो है।
काहे न कान करौ बिनती 'तुलसी' कलिकाल बिहाल कियोहै॥१५७॥

शब्दार्थ—लोकि लियो = पकड़ लिये। पानकियो = पी लिया। वरुणालय = समुद्र। कान करौ = सुनते। बिहाल = व्याकुल।

पद्यार्थ—सारे संसार को जलता हुआ देखकर शिवजी ने विष को झपट कर ग्रहण कर लिया और उसे पी गये। वह विष उनके लिये आभूषण हो गया। मेरे स्वामी शिवजी का हृदय तो करुणा का समुद्र है, लेकिन मेरा सिर ही फोड़ने योग्य है (मेरा भाग्य ही फूटा है)। ऐसा जान पड़ता है कि उन्हें किसी ने मेरा दोष दिखला दिया है। तुलसीदास जी कहते हैं कि हे शिवजी, आप मेरी प्रार्थना पर क्यों नहीं ध्यान देते? कलियुग ने मुझे व्याकुल कर दिया है।

(कवित्त)

खायो कालकूट, भयो अजर अमर तनु,
भवन मसान, गथ गाँठरी गरद की।
डमरू कपाल कर, भूषन कराल ब्याल,
बावरे बड़े की रीझ बाहन बरद की।
'तुलसी' बिसाल गोरे गात बिलसति भूति,
मानो हिमगिरि चारु चाँदनी सरद की।
अर्थ धर्म काम मोक्ष बसत बिलोकनि में,
कासी करामाति जोगी जागत मरद की॥१५८॥

शब्दार्थ—कालकूट = विष। गथ = धन। गरद = धूल, भस्म। करामाति = चमत्कार।

पद्यार्थ—विष खाने पर भी उनका शरीर अजर और अमर हो गया। उनका घर स्मशान भूमि है, भस्म की गठरी उनका धन है। उनके हाथ में डमरू और खप्पर है, भयानक सर्प उनका आभूषण है, और वह ऐसे पागल हैं कि और सब सवारियों को छोड़कर बैल की सवारी से प्रसन्न होते हैं। तुलसीदास जो कहते हैं कि उनके गोरे और विशाल शरीर पर त्रिभूति ऐसी शोभा देती है मानो हिमालय पहाड़ पर शरद ऋतु की चांदनी पड़ रही हो। उनके देखने मात्र से अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष प्राप्त हो जाते हैं। ऐसे योगी पुरुष की करामात काशी में जगमगा रही है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

पिंगल जटा कलाप, माथे पै पुनीत आप,
पावक नैना, प्रताप भ्रू पर वरत हैं।
लोचन विसाल लाल, सोहै बालचंद्र भाल,
कंठ कालकूट, व्याल भूषन धरत हैं।
सुन्दर दिगंबर बिभूति गात, भाँग खात,
रूरे सृंगी पूरे काल-कंटक हरत हैं।
देत न अघात, रीझि जात पात आक ही के,
भोलानाथ जोगी जब औढर ढरत हैं॥१५६॥

शब्दार्थ—पिङ्गल = भूरा। कलाप = समूह। पुनीत आप = पवित्र जल, गङ्गा जी। रूरे = सुन्दर। सृङ्गी = शिवजी का बाजा। पूरे = बजाकर। औढर ढरत हैं = खूब प्रसन्न होते हैं।

पद्यार्थ—शिवजी के सिर पर भूरा जटा समूह है जिसमें गंगा जी विराजमान हैं, उनके नेत्रों में अग्नि है जिसका प्रकाश भौंहों पर जगमगा रहा है। उनके नेत्र बड़े और लाल हैं, ललाट पर द्वितीया का चन्द्रमा

सुशोभित है, कंठ में विष और गले में सर्प का आभूषण सुशोभित है। उनके सुन्दर और नंगे शरीर में विभूति लगी है, वह भाँग खाते हैं, और सुन्दर शृंगी बाजा बजाकर काल और बाधाओं को दूर करते हैं। वह मदार के पत्तों को ही चढ़ाने से रीझ जाते हैं और जब योगी-राज शिवजी प्रसन्न होते हैं तब देते देते तृप्त नहीं होते।

अलंकार—विरोधाभास।

देत संपदा समेत श्रीनिकेत जाचकनि,
भवन विभूति, भाँग, वृषभ बहनु है।
नाम बामदेव, दाहिनो सदा, असँग रंग,
अर्द्ध अंग अंगना, अनंग को महनु है॥
'तुलसी' महेस को प्रभाव भाव ही सुगम,
निगम अगम हूँ को जानिबो गहनु है।
वेष तो भिखारि को, भयंक रूप संकर,
दयालु दीनबंधु दानि दारिद-दहनु है॥ १६०॥

शब्दार्थ—श्रीनिकेत = वैकुण्ठ। वृषभ = बैल। बहनु = सवारी। असँग रंग = एकान्त प्रिय। महनु = मथनेवाले। गहनु = कठिन।

पद्यार्थ—शिवजी के घर में भस्म और भाँग तथा बैल की सवारी है तौभी वह भिखारियों को धन धान्य संपन्न बैकुंठ देते हैं। उनका नाम तो वामदेव है किन्तु सदा दाहिने अर्थात् अनुकूल रहते हैं। वह एकान्त प्रिय हैं, परन्तु उनके वाम अंग में पार्वती विराजमान हैं तिस पर भी वह कामदेव को जलाने वाले हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि शिवजी का प्रभाव जानना भक्ति से ही सुगम है, यों तो उसे जानना वेद और शास्त्र के लिये भी कठिन है। उनका वेष तो भिखारी का और

रूप भयंकर है, लेकिन वह बड़े दयालु, दीनबन्धु, दानी तथा दरिद्रता का नाश करने वाले हैं।

अलंकार—विरोधाभास।

चाहै न अनंग-अरि एकौ अंग मंगन को,
देबोई पै जानिये सुभाव-सिद्ध बानि सो।
बारिबुंद चारि त्रिपुरारि पर डारिए तौ
देत फल चारि, लेत सेवा साँची मानि सो॥
'तुलसी' भरोसो न भवेस भोलानाथ को तौ
कोटिक कलेस करौ मरौ छार छानि सो।
दारिद-दमन, दुख-दोष-दाह-दावानल,
दुनी न दयालु दूजो दानि सूलपानि सो॥ १६१॥

शब्दार्थ—अनंग-अरि = कामदेव के शत्रु, शिवजी। एकौ अंग = षोड़शोपचार पूजा का एक भी अंग। छार छानि मरौ = धूल छानते हुए मर जाव। पानि = हाथ। सूलपानि = हाथ में त्रिशूल धारण करने वाले, शिवजी।

पद्यार्थ—शिवजी भिखारी से पूजा का एक अंग भी नहीं चाहते, देना ही उनका सहज स्वभाव है इसे निश्चयपूर्वक जानिये। शिवजी केवल चार बूँद जल चढ़ाने से ही उसे सच्ची सेवा मानकर चारों पदार्थ दे देते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं, कि यदि तुम्हें संसार के स्वामी शिवजी का भरोसा नहीं है तो करोड़ों कष्ट उठाते रहो और खाक छानते फिरो। दरिद्रता का नाश करने वाले, दुख, दोष और कष्टों के लिये बड़वाग्नि रूप शिवजी के समान संसार में कोई दूसरा दयालु दानी नहीं है।

अलंकार—अनुप्रास।

काहे को अनेक देव सेवत, जागै मसान,
खोवत अपान, सठ होत हठि प्रेत रे!
काहे को उपाय कोटि करत मरत धाय,
जाचत नरेस देस देस के, अचेत रे!
'तुलसी' प्रतीति बिनु त्यागै तैं प्रयाग तनु,
धन ही के हेतु दान देत कुरु खेत रे!
पात द्वै धतूरे के दै, भोरे कै भवेस सों
सुरेस हू की संपदा सुभाय सों न लेत रे! १६२॥

शब्दार्थ--अपान=अपनापन, प्रतिष्ठा। कुरु-खेत=कुरुक्षेत्र।

पदार्थ—अरे मूर्ख मन, तू अनेकों देवताओं की क्यों सेवा करता फिरता है? क्यों मसान जगाता है? क्यों अपनी प्रतिष्ठा खोता फिरता है? ऐ मूर्ख, ज़बरदस्ती प्रेत बनता है? क्यों करोड़ों उपाय करते हुए दौड़ता फिरता है? क्यों देश देश के राजाओं से मांगता फिरता है? तुलसीदास जी कहते हैं कि विश्वास के बिना प्रयाग में शरीर छोड़ने और धन प्राप्त करने के लिये कुरुक्षेत्र में दान देने से क्या लाभ हो सकता है? शिवजी को धतूरे के दो पत्ते चढ़ाकर, उन्हें सहज ही प्रसन्न कर इन्द्र की संपदा अनायास ही क्यों नहीं प्राप्त कर लेते?

अलंकार—परिवृत्ति।

स्यंदन, गयंद, बाजिराजि, भले भले भट,
धन-धाम-निकर, करनि हू न पूजै क्वै।
बनिता बिनीत, पूत पावन सोहावन, औ
बिनय, बिवेक, बिद्या सुलभ, सरीर ज्वै।
इहाँ ऐसो सुख, परलोक सिवलोक ओक,
जाको फल 'तुलसी' सों सुनौ सावधान ह्वै।

जाने, बिनु जाने, कै रिसाने, केलि कबहुँक,
सिवहिं चढ़ाये ह्वै हैं बेल के पतौवा द्वै ॥१६३॥

शब्दार्थ—स्यंदन = रथ। गयंद = हाथी। बाजिराजि = घोड़ों की कतारें। करनि = करतूत। क्वै = कोई। ज्वै = जो कुछ। ओक = घर। केलि = खेल। पतौवा = पत्ते।

पदार्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि रथ, हाथी, घोड़े, अच्छे अच्छे योधा, धन और घर का समूह, पूज्य करतूत, बिनीत स्त्री, सुन्दर और पवित्र पुत्र, तथा अपने में विनय, ज्ञान, विद्या, शरीर आदि जो सुन्दर पदार्थ इस लोक में सुलभ हैं, और परलोक में शिवलोक के समान सुख यह सब जिसका फल है उसे सावधान होकर सुनो। 'यह सब जाने अथवा बिना जाने, क्रोध में या खेलवाड़ में, किसी दशा में भी शिवजी पर दो बेल के पत्ते चढ़ाने का फल है।

अलंकार—परिवृत्ति।

रति-सी रवनि, सिंधु-मेखला-अवनिपति,
औनिप अनेक ठाढ़े हाथ जोरि हारि कै।
संपदा समाज देखि लाज सुरराज हू के,
सुख सब बिधि बिधि दीन्हें हैं सँवारि कै।
इहाँ ऐसो सुख, सुरलोक सुरनाथ-पद,
जाको फल 'तुलसी' सो कहैगो बिचारि कै।
आक के पतौवा चारि, फूल कै धतूरे के द्वै,
दीन्हे द्वै हैं बारक पुरारि पर डारि कै ॥ १६४ ॥

शब्दार्थ—रवनि = रमणी, स्त्री। सिंधु-मेखला-अवनिपति = सिन्धु पर्यंत पृथ्वी के स्वामी। औनपि = राजा। बारक = एक बार।

पदार्थ—रति की तरह स्त्री हो, सिन्धु पर्यंत पृथ्वी का चक्रवर्ती राजा हो, अनेकों राजा पराजय मान कर हाथ जोड़ कर खड़े हों,

उसकी संपति और साज सामान देखकर इन्द्र भी लज्जित होते हों, ब्रह्मा ने उसे सब तरह से सुख सँवार कर दिये हों, इस संसार में तो ऐसा सुख हो और स्वर्ग में उसे इन्द्र का पद प्राप्त हो, यह सब जिसका फल है उसे तुलसीदास विचार कर कहता है कि उस मनुष्य ने शिवजी पर आक के चार पत्ते या धतूरे के दो फूल एक बार चढ़ाया होगा।

अलंकार—परिवृत्ति।

देवसरि सेवौं बामदेव गाउँ रावरे ही,
नाम राम ही कें माँगि उदर भरत हौं।
दीबे जोग 'तुलसी' न लेत काहू को कछुक,
लिखी न भलाई भाल, पोच न करत हौं।
एते पर हू जो कोऊ रावरो ह्वै जोर करै,
ताको जोर, देव दीन द्वारे गुदरत हौं।
पाइकै उराहनो, उराहनो न दीजै मोहिं,
काल-कला कासीनाथ कहे निबरत हौं॥ १६५॥

शब्दार्थ—देवसरि = गंगा। पोच = नीच, खोटा। रावरो ह्वै = आपका दास होकर। गुदरत हौं = कहता हूँ। उराहना = उपालंभ। काल-कला = कलिकाल की चालबाजी। निबरत हौं = छुटकारा पा जाता हूँ।

पद्यार्थ—हे शिवजी, आप ही की पुरी में रहकर मैं गंगाजी का सेवन करता हूँ और राम ही के नाम पर भीख मांग कर पेट भरता हूँ।

नोट—एक बार शिव भक्तों ने तुलसीदास को बहुत तंग किया तब वह उपरोक्त कवित्त विश्वनाथ जी के मन्दिर के दरवाजे पर लिख कर काशी से बाहर चले गये। दूसरे दिन शिव भक्तों ने जब मन्दिर का दरवाजा बन्द देखा तब वह बहुत लज्जित हुए और तुलसीदास से बहुत प्रार्थना करके वापस लौटा लाए। तब विश्वनाथ जी का दरवाजा खुला।

तुलसी दूसरों को कुछ देने योग्य तो है ही नहीं, किन्तु वह दूसरों से कुछ लेता भी नहीं। मेरे भाग्य में भलाई करना तो लिखा ही नहीं है, लेकिन मैं किसी के साथ बुराई भी नहीं करता। इतने पर यदि कोई आपका भक्त मुझ पर अत्याचार करता है, तो उसके अत्याचार की बात मैं दीन होकर आप ही के दरवाजे पर निवेदन करता हूँ। हे शिव जी, आप रामचन्द्रजी से उलाहना पाकर मुझे उलाहना न दीजियेगा। हे काशीनाथ, मैं कलियुग की करनी कह कर आपसे छुटकारा पाता हूँ।

> चेरो राम राय को, सुजस सुनि तेरो हर!
> पाइँ तर आइ रह्यो सुरसरि तीर हौं।
> बामदेव, राम को सुभाव सील जानि जिय,
> नातो नेह जानियत, रघुबीर भीर हौं।
> अविभूत-बेदन बिषम होत, भूतनाथ!
> 'तुलसी' विकल, पाहि, पचत कुपीर हौं।
> मारिए तो अनायास कासी बास खास फल,
> ज्याइए तौ कृपाकरि निरुज सरीर हौं॥ १६६॥

शब्दार्थ—अविभूत-वेदन=सांसारिक कष्ट। विषम=असह्य। पचत कुपीर हौं=कठिन पीड़ा से कष्ट पा रहा हूँ। निरुज=रोग रहित।

पद्यार्थ—हे शिवजी, मैं रामचन्द्रजी का दास हूँ। मैं आपका यश सुनकर आपके चरणों के पास आकर गंगाजी के किनारे रहता हूँ।

नोट—कहा जाता है कि एक बार काशी के कोतवाल भैरव जी ने देखा कि हमारी नगरी में तुलसीदास अपना हुक्म चलाना चाहता है। इससे ईर्षा के मारे उनकी बाँह में कठिन पीड़ा पैदा कर दी। तब तुलसीदास ने कई कवित्तों में महादेवजी की प्रार्थना की। ये कई कवित्त उसी अवसर पर लिखे गये थे।

आप रामचन्द्रजी के शील स्वभाव से तो परिचित ही हैं और उनसे मेरे प्रेम के सम्बन्ध को भी आप जानते हैं। मैं रामचन्द्रजी से ही डरता हूँ। हे भूतनाथ, मुझे सांसारिक वेदना असह्य हो रही है, मैं कठिन पीड़ा से व्याकुल हो रहा हूँ मेरी रक्षा कीजिये। अगर आपको मुझे मार ही डालना मंजूर है, तो अनायास ही मार डालिये, जिससे मुझे काशीवास का अच्छा फल मिले और अगर आपको मुझे जिलाना मंजूर हो तो शीघ्र ही मेरा शरीर नीरोग हो जाय।

जीवे की न लालसा, दयालु महादेव ! मोहिं,
मालुम है तोहिं मरिबेई को रहतु हौं।
कामरिपु ! राम के गुलामनि को कामतरु,
अवलंब जगदंब सहित चहतु हौं।
रोग भयो भूत सो, कुसूत भयो 'तुलसी' को,
भूतनाथ पाहि पदपंकज गहतु हौं।
ज्याइए तौ जानकी-रमन जन जानि जिय,
मारिए तौ माँगी मीचु सूधियै कहतु हौं ॥१६७॥

शब्दार्थ—जगदंब = संसार की माता, पार्वती । मीचु = मृत्यु । कुसूत = असुविधा झंझट । सूधियै = सीधी तरह से ।

पद्यार्थ—हे दयालु शिवजी, मुझे जीने की लालसा नहीं है। आपको मालूम ही है कि मैं मरने ही के लिये यहां पर रहता हूँ। हे कामदेव के शत्रु, आप रामचन्द्रजी के सेवकों को कल्पवृक्ष के समान हैं, मैं पार्वती सहित आपकी सहायता चाहता हूं। यह रोग मेरे लिये भूत के समान दुखदाई हो गया है, जिससे मुझे बड़ी असुविधा हो रही है। हे भूतनाथ शिवजी, आपके कमलवत चरणों को पकड़ता हूं, आप मेरी रक्षा कीजिये। यदि आपको मुझे जिलाना हो तो मुझे

रामचन्द्रजी का भक्त जान कर जिलाइये, अगर आप मुझे मारना चाहते हैं तो मुझे मुँह मांगी मृत्यु दीजिये।

अलंकार—उपमा।

भूतभव ! भवत पिसाच-भूत-प्रेत-प्रिय,
आपनी समाज सिव ! आपु नीके जानिये।
नाना वेष, बाहन, बिभूपन, बसन, बास,
खान-पान, बलि-पूजा-विधि को बखानिये ॥
राम के गुलामनि की रीति प्रीति सूधी सब,
सबसों सनेह सबही को सनमानिये।
'तुलसी' की सुधरै सुधारे भूतनाथ ही के,
मेरे माय बाप गुरु संकर भवानिये ॥ १६८ ॥

शब्दार्थ—भूतभव = पंच भूतों को उत्पन्न करने वाले। भवत = आप। सूधी = सीधी सादी।

पद्यार्थ—हे पंचभूतों को उत्पन्न करनेवाले शिवजी, आपको भूत, प्रेत और पिशाच प्रिय हैं। आप अपने समाज को अच्छी तरह से जानते हैं। उनके तरह तरह के वेप, सवारी, पोशाक, आभूषण, निवास स्थान, भोजन, बलि और पूजा का बखान कौन कर सकता है। रामचन्द्रजी के भक्तों की सब रीति प्रीति सीधी सादी है, वह सब से प्रेम और सब का सम्मान करते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि आप ही के सुधारने से मेरी दशा सुधर सकती है। मेरे मां बाप और गुरु सब कुछ शिव और पार्वती ही हैं।

अलंकार—तुल्ययोगिता।

गौरीनाथ, भोलानाथ, भवत भवानीनाथ,
विस्वनाथ-पुर फिरी आन कलिकाल की।

संकर से नर, गिरिजा सी नारी कासी-बासी,
बेद कही, सही ससिसेखर कृपाल की ॥
छमुख गनेस तें महेस के पियारे लोग,
बिकल बिलोकियत, नगरी बिहाल की।
पुरी-सुरबेलि केलि काटत किरात-कलि,
निठुर ! निहारिये उघारि डीठि भाल की ॥१६६॥

शब्दार्थ—ससि-सेखर = शिवजी। छमुख = कार्त्तिकेय। सुरबेलि = कल्पलता।

पद्यार्थ—हे भोलानाथ, आप पार्वती के स्वामी हैं, आपकी नगरी में कलिकाल की दुहाई फिर रही है। काशी के रहनेवाले पुरुप शंकर के समान, स्त्रियां पार्वती के समान हैं, इस बात को वेदों ने कहा है और कृपालु आप भी इसका समर्थन करते हैं। जो लोग शिवजी को कार्तिकेय और गणेश से भी प्यारे थे वे व्याकुल दिखाई देते हैं। कलियुग ने सारे नगर को बेचैन कर दिया है। कल्पलता के समान इस नगरी को किरात रूपी कलियुग खेल ही में काट रहा है। हे निष्ठुर शिवजी, आप अपने ललाट के तीसरे नेत्र को खोल कर कलि-युग को देख कर उसे भस्म कर दीजिये।

अलंकार—उपमा और रूपक।

ठाकुर महेस, ठकुराइनि उमा सी जहाँ,
लोक बेद हू बिदित महिमा ठहर की।
भट रुद्रगन, पूत गनपति सेनापति,
कलिकाल की कुचाल काहू तौ न हरकी।
बीसी बिस्वनाथ की बिपाद बढ़ी बारानसी,
बूझिए न ऐसी गति संकर-सहर की।

कैसे कहै 'तुलसी,' बृषासुर के बरदानि !
बानि जानि सुधा तजि पियनि जहर की ॥१७०॥

शब्दार्थ—ठहर = स्थान । हरकी = मना किया । बीसी = बीस वर्ष (सं० १६६९ से १६८९ तक का बीस वर्ष जो शिवजी के भाग में पड़ा था) । वारानसी = बनारस, काशी । बृषासुर = भस्मासुर ।

पद्यार्थ—जिस काशी नगरी के मालिक शिव के समान और मलकिन पार्वती के समान हैं, जिस स्थान की महिमा लोक और वेद में भी प्रगट है, जहां पर वीरभद्र आदि रुद्रगण योधा हैं, गणेश सेनापति हैं, वहां पर कलियुग के कुचाल को किसी ने भी नहीं रोका। विश्वनाथ की बीसी में काशी में दुख बढ़ गया । शिवजी की पुरी की ऐसी दुर्दशा हो, कुछ समझ में नहीं आता । हे भस्मासुर को वर देने वाले शिवजी, आपसे तुलसी कैसे क्या कहे। आपके अमृत छोड़ कर विष पीने की आदत को वह अच्छी तरह जानता है ।

अलंकार—विशेषोक्ति।

लोक बेद हू बिदित बारानसी की बड़ाई,
बासी नरनारि ईस-अंबिका-सरूप हैं।
कालनाथ कोतवाल, दंड-कारि दंडपानि,
सभासद गनप से अमित अनूप हैं।
तहाँऊ कुचालि कलिकाल की कुरीति, कैधौं
जानत न मूढ़, इहाँ भूतनाथ भूप हैं।
फलैं फूलैं फैलैं खल, सीदैं साधु पल पल,
खाती दीपमालिका, ठठाइयत सूप हैं ॥ १७१ ॥

शब्दार्थ—कालनाथ = कालभैरव । दंड-कारि = दंड देने वाले । दंडपानि = दंडपानि भैरव । अमित = बहुत । सीदैं = कष्ट पाते हैं । ठठाइयत = पीटा जाता है ।

पद्यार्थ—काशी की बड़ाई लोक और वेद में विदित है। यहां के रहनेवाले स्त्री पुरुष पार्वती और शिव के रूप हैं। काल भैरव यहां के कोतवाल हैं, दंडपानि भैरव दंड देने वाले हैं और गणेश जी के समान बहुत से अनुपम सभासद हैं। वहां भी कलियुग अपनी मनमानी कर रहा है। क्या उस मूर्ख को मालूम नहीं है कि यहां के राजा विश्वनाथ जी हैं। यहां पर दुष्ट लोग तो फल फूल रहे हैं और संत लोग क्षण क्षण कष्ट पा रहे हैं। यह तो वही कहावत हुई कि घी खाय दीवाली और पीटा जाय सूप।

अलंकार—छेकोक्ति।

पंचकोस पुन्यकोस, स्वारथ परारथ को,
जानि आप आपने सुपास बास दियो है।
नीच नरनारि न सँभारि सकैं आदर
लहत फल कादर बिचारि जो न कियो है।
बारी बरानसी बिनु कहे चक्रपानि चक्र,
मानि हितहानि सो मुरारि मन भियो है।
रोष में भरोसो एक, आसुतोष कहि जात,
बिकल बिलोकि लोक कालकूट पियो है ॥१७२॥

शब्दार्थ—परारथ = परमार्थ। बारी = जलादी। चक्रपानि = श्रीकृष्ण। हितहानि मानि = मित्रता में हानि समझ कर। भियो है = डरा है। आसुतोष = शीघ्र प्रसन्न होने वाले, शिवजी।

पद्यार्थ—काशी के इर्द गिर्द की पांच कोस की भूमि पुण्यभूमि है। यह लौकिक और पारलौकिक सुख के लिये बहुत अच्छा स्थान है। ऐसा समझ कर ही आपने वहां के निवासियों को अपने पास बसाया। यहां के नीच स्त्री पुरुष आपके दिए हुए इस आदर को सँभाल न सके। उन्होंने जो विचार कर काम नहीं किया उसका फल

वह पा रहे हैं। जिस समय श्रीकृष्ण ने मिथ्या वासुदेव को मारने के लिये सुदर्शन चक्र को छोड़ा था और उसने उसे मार कर विना आज्ञा के ही बनारस को जला दिया था, उस समय तो श्रीकृष्ण भी मित्रता में कमी पड़ने के डर से मन में डर गये थे, *(क्या कलिकाल आप से न डरेगा) यदि यह महामारी की बीमारी आप ही के क्रोध करने के कारण हुई है तो उस अवस्था में भी लोगों को एक मात्र आपही का भरोसा है। आप 'आशुतोष' कहे जाते हैं और आपने एक बार लोगों को व्याकुल देख कर विष पी लिया था (अतः इस बार भी प्रसन्न होकर आप इस बीमारी के विष को पी जाइये।)

रचत विरंचि, हरि पालत, हरत हर,
तेरे ही प्रसाद जग, अगजग-पालिके।
तोहि में विकास विस्व, तोहि में विलास सब,
तोहि में समात मातु भूमिधर बालिके।
दीजै अवलंब जगदंब न विलंब कीजै,
करुना-तरंगिनी कृपा-तरंग-मालिके॥
रोष महामारी परितोष, महतारी दुनी!
देखिये दुखारी मुनि-मानस-मरालिके॥ १७३॥

शब्दार्थ—अग = अचर। जग = चर। भूमिधर बालिके = पहाड़ की बेटी, पार्वती। करुना-तरंगिनी = करुणा की नदी। कृपा-तरंग-मालिके = कृपा रूपी तरंगों की माला, अत्यन्त कृपालु। मरालिके = हंसिनी।

---

* नोट—एक समय काशी के राजा 'मिथ्या वासुदेव' ने द्वारिका पर चढ़ाई की। श्रीकृष्ण ने चक्र को उसे मारने की आज्ञा दी। चक्र ने उसे मार डाला और काशी को विना श्रीकृष्ण की आज्ञा के ही जला डाला, उस समय श्रीकृष्ण ने काशी जलने के अपराध में शिवजी से क्षमा माँगी थी।

पद्यार्थ—हे चराचर को पालन करने वाली पार्वती जी, तेरी ही कृपा से ब्रह्मा सृष्टि की रचना करते, विष्णु पालन करते और शिव नाश करते हैं। हे हिमालय की पुत्री पार्वती जी, सारे संसार का विकाश तुम्हीं से होता है, तुम्हीं से उसका पालन होता है, अंत में उसका लय भी तुम्हारे में ही हो जाता है। हे करुणा की नदी, कृपा रूपी तरंग की माला, जगदम्बिके, अब मेरी सहायता करने में विलंब न कीजिये। हे मुनियों के हृदय रूपी मानसरोवर की हंसिनी, महामारी का कोप प्रबल हो रहा है और तू संसार को दुखी देखकर भी संतोष किये बैठी हुई हो।

अलंकार—परिकरांकुर।

निपट अनेरे, अघ औगुन बसेरे नर
नारिऊ घनेरे जगदंब चेरी चेरे हैं।
दारिदी दुखारी देखि भूसुर भिखारी भीरु
लोभ मोह काम कोह कलिमल घेरे हैं।
लोकरीति राखी राम, साखी बामदेव जान,
जनकी विनति मानि, मातु! कहि मेरे हैं।
महामायी, महेसानि, महिमा की खानि, मोद-
मंगल की रासि, दास कासीबासी तेरे हैं॥१७४॥

शब्दार्थ—अनेरे = व्यर्थ। भूसुर = ब्राह्मण। भीरु = डरपोक।

पद्यार्थ—हे माता, काशी के रहने वाले ये स्त्री पुरुष बिल्कुल व्यर्थ और पाप और अवगुणों के घर हैं, परन्तु ये तेरे दास दासी हैं। ये दरिद्री, दुखिया, ब्राह्मण और भिखारी को देख कर डर जाते हैं कि कहीं कोई कुछ मांग न बैठे, इन्हें लोभ, मोह, काम, क्रोध और पाप घेरे रहते हैं। रामचन्द्रजी ने सदैव लोक की मर्यादा

रखी है जिसके साक्षी शिवजी हैं। इसलिये हे माता, इस दास की विनती मान कर महामारी से कह दो कि ये मेरे दास दासी हैं, इन्हें न सताओ। हे महामाया शंकरी, तू महिमा की खानि और आनन्द और मंगल की राशि हो, और काशी के रहनेवाले तेरे सेवक हैं।

अलंकार—अनुप्रास।

लोगन के पाप, कैधौं सिद्ध-सुर-साप, कैधौं
काल के प्रताप कासी तिहूँ-ताप तई है।
ऊँचे, नीचे, बीच के, धनिक, रंक, राजा, राय,
हठनि बजाय, करि डीठि, पीठि दई है।
देवता निहारे, महामारिन्ह सों कर जोरे,
भोरानाथ जानि भोरे आपनी सी ठई है।
करुनानिधान हनुमान बीर बलवान,
जस-रासि जहाँ-तहाँ तैं ही लूटि लई है॥ १७५॥

शब्दार्थ—हठनि बजाय=हठ करके। करि डीठि=देखते हुए। पीठि दई है=मुँह फेर लिया है। आपनी सी ठई है=अपने ही मन का किया है।

पदार्थ—चाहे लोगों के पाप के कारण, अथवा सिद्ध और देवताओं के शाप के कारण, अथवा कलिकाल के प्रताप से इस समय काशी तीनों तापों से जल रही है। ऊँचे, नीचे, मध्यवर्ती धनी, गरीब, राजा, राय सब देखकर भी हठपूर्वक अनदेखा कर देते हैं। (यह जानते हुए भी कि दान पुण्य आदि धर्म कर्म करना अच्छा है, उससे विमुख हो रहे हैं।) मैंने देवताओं से प्रार्थना की, महामारी से भी हाथ जोड़ा लेकिन कुछ फल न निकला। उसने

भोलानाथ को सीधा सादा जान कर अपने मन का कर लिया है। ऐसी अवस्था में हे करुणा के घर, वीर, बलवान हनुमान जी, इस बीमारी को दूर करके आप ही यश को लूटिये। क्योंकि जहां तहां आपही ने यश लूटा है।

अलंकार—तुल्ययोगिता।

संकर-सहर सर, नर-नारि वारिचर,
विकल सकल महामारी माँजा भई है।
उछरत उतरात हहरात मरि जात,
भभरि भगत, जल-थल मीचुमई है।
देव न दयालु, महिपाल न कृपालु चित,
बारानसी बाढ़ति अनीति नित नई है।
पाहि रघुराज, पाहि कपिराज रामदूत,
रामहू की बिगरी तुहीं सुधारि लई है॥ १७६॥

शब्दार्थ—माँजा = एक रोग जो मछलियों को होता है। भभरि = घबड़ाकर। मीचुमयी = मृत्युमयी।

पद्यार्थ—शंकर की नगरी, काशी, एक तालाब के समान है, स्त्री-पुरुष जल-जन्तु हैं, महामारी रूपी मांजा के हो जाने से सभी व्याकुल हैं। वे उछलते हैं, उतराते हैं, घबड़ाकर भागते हैं और हाय, हाय करते हुए मर जाते हैं। जल-थल में मृत्यु ही मृत्यु दिखलाई पड़ती है। देवता दयालु नहीं रह गये हैं, न राजाओं के चित्त में दया है। काशी में नित्य नई नई अनीति बढ़ रही है। हे रघुराज रामचन्द्रजी, रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। हे रामचन्द्रजी के दूत हनुमानजी, रामचन्द्रजी को मौका पड़ने पर आपही ने सहायता दी थी, इसलिये इस अवसर पर आप ही सहायता कीजिये।

अलंकार—रूपक।

एक तो कराल कलिकाल सूल-मूल तामें,
कोढ़ में की खाजु सी सनीचरी है मीन की।
वेद-धर्म दूरि गये, भूमि-चोर भूप भये,
साधु सीद्यमान, जानि रीति पाप-पीन की।
दूवरे को दूसरो न द्वार, राम दया-धाम !
रावरी ही गति बल-विभव-विहीन की।
लागैगी पै लाज वा विराज मान विरुदहिं,
महाराज आजु जौ न देत दादि दीन की॥ १७७॥

शब्दार्थ—सनीचरी है मीन की। मीन राशि पर स्थित शनिश्चर है (इसके फल स्वरूप राजा प्रजा दोनों का नाश होता है।) विरुदहिं = यश को, नामवरी को। दादि देवा = सहायता करना।

पदार्थ—एक तो घोर कलिकाल ही घोर दुख का कारण हो रहा है, दूसरे मीन राशि पर शनिश्चर का आना कोढ़ का खाज हो गया है, (अत्यन्त कष्टदाई हो गया है)। वेद और धर्म नष्ट हो गये हैं, राजा लोग प्रजा की भूमि चुराने वाले हो गये हैं, (अथवा भूमि को चुराने वाले लोग राजा हो गये हैं), साधु लोग पाप की अधिकता को देखकर दुखी हो गये हैं। हे दया के घर, रामचन्द्रजी, दुर्वलों को आपका दरवाजा छोड़ कर दूसरा दरवाजा नहीं है। बल और वैभव से रहित लोगों को आप ही का भरोसा है। हे महाराज, यदि आप आज दीनों की सहायता न करेंगे, तो आपकी विश्वव्यापी कीर्ति लज्जित होगी।

अलंकार—धर्मलुप्तोपमा।

राम-नाम मातु-पितु, स्वामि, समरथ हितु,
आस राम-नाम की, भरोसो राम-नाम को।

प्रेम राम-नाम ही सों, नेम राम-नाम ही को,
जानौं न मरम पद दाहिनों न वाम को।
स्वारथ सकल, परमारथ को राम-नाम,
राम-नाम-हीन 'तुलसी' न काहू काम को।
राम को शपथ, सरबस मेरे रामनाम,
कामधेनु कामतरु मो-से छीन-छाम को ॥ १७८ ॥

शब्दार्थ—छीन छाम = अत्यंत दुर्बल।

पद्यार्थ—राम नाम ही मेरा माता पिता, स्वामी, समर्थ, सहायक है, मुझे राम नाम ही की आशा है और राम नाम ही का भरोसा है। मुझे राम नाम ही से प्रेम है, राम नाम जपने का ही मेरा नियम है। राम नाम को छोड़ कर मैं न तो कोई अच्छा मार्ग जानता हूँ, न बुरा। राम नाम ही से संपूर्ण लौकिक और पारलौकिक सुख मिलते हैं। राम नाम से रहित मनुष्य किसी काम का नहीं है। तुलसीदासजी रामचन्द्र जी की शपथ लेकर कहते हैं कि राम का नाम ही मेरे लिये सब कुछ है। मेरे जैसे दुर्बल के लिये राम नाम ही कामधेनु और कल्पवृक्ष के समान सब कुछ देने वाला है।

अलंकार—तुल्ययोगिता और रूपक।

मारग मारि, महीसुर मारि, कुमारग कोटिक कै धन लीयो।
संकर को सों पाप को दाम परीच्छित जाहिगो जारि कै हीयो।
कासी में कंटक जेते भए ते गे पाइ अघाइ कै आपनो कीयो।
आजु कि कालिह परौं कि नरौं जड़ जाहिंगे चाटि दिवारी को दीयो॥

शब्दार्थ—मारग मारि = राहगीरों को मार कर। जाहिगो = नष्ट हो जायगा। गे = गये, नष्ट हो गये।

पद्यार्थ—यात्रियों को लूट कर, ब्राह्मणों की हत्या करके, तथा और अनेकों बुरे मार्गों से अधर्मी लोग धन इकट्ठा करते हैं। वह पाप का धन शंकरजी के क्रोध से हृदय को जलाकर अवश्य नष्ट हो जायगा। काशी में जितने बाधा पहुँचाने वाले हुए हैं, वे अपने किए हुए कर्मों का फल पाकर नष्ट हो गये हैं। वे मूर्ख आज या कल, परसों या नरसों, उसी तरह से नष्ट हो जायँगे, जैसे दीवाली के दीये को चाट कर कीड़े पतिंगे नष्ट हो जाते हैं।

अलंकार—लोकोक्ति।

कुंकुम-रंग सुअंग जितो, मुख-चंद सों चंद सों होड़ परी है।
बोलत बोल समृद्धि चुवै, अवलोकत सोच विषाद हरी है।
गौरी कि गंग विहंगिनि बेष, कि मंजुल मूरति मोद-भरी है।
पेखि सप्रेम पयान समै सब सोच-विमोचन छेमकरी है॥ १८०॥

शब्दार्थ—कुंकुम-रंग=केसरिया रंग। होड़ परी है=बाजी लगी है। समृद्धि=वैभव। पेखि=देख करके। पयान=यात्रा। छेम करी=एक पक्षी का नाम जिसकी बोली सुनना शुभ माना जाता है।

पद्यार्थ—इस क्षेमकरी पक्षी की चोंच के रङ्ग ने केसरिया रङ्ग को भी जीत लिया है। इसका चन्द्रमुख सुन्दरता में चन्द्रमा से बाजी लगाता है। इसकी बोली से वैभव टपकता है और केवल देखने मात्र से ही यह मनुष्य के सोच और दुख को दूर कर देता है। पक्षी के रूप

नोट—तुलसीदास ने ऊपर सवैया को किसी यात्रा के समय क्षेमकरी पक्षी को देखकर उसी के सम्बन्ध में कहा था। किन्तु कुछ लोगों का अनुमान है कि तुलसीदास ने मरने के कुछ समय पहले क्षेमकरी पक्षी को देखकर इस सवैया की रचना की थी।

में यह पार्वती है ? या गङ्गा है ? या प्रसन्नचित कोई और ही मूर्ति है। यात्रा के समय प्रेमपूर्वक इस कल्याणकारी पक्षी का दर्शन करने से मनुष्य के सारे शोक दूर हो जाते हैं।

अलंकार—ललितोपमा और संदेह।

मंगल की रासि, परमारथ की खानि, जानि,
बिरचि बनाई बिधि, केसव बसाई है।
प्रलयहू काल राखी सूलपानि सूल पर,
मीचु-बस नीच सोऊ चहत खसाई है ।
छाँड़ि छिति-पाल जो परीछित भए कृपालु,
भलो कियो खल को, निकाई सो नसाई है।
पाहि हनुमान ! करुनानिधान राम पाहि !
कासी-कामधेनु कलि कुहत कसाई है ॥ १८१ ॥

शब्दार्थ—बिरचि बनाई = अच्छी तरह रचकर बनाया। केसव = विष्णु। चहत खसाई = नाश करना चाहता है। परीछित = अभिमन्यु का पुत्र। निकाई = भलाई। कुहत = मारता है।

पद्यार्थ—मंगल की राशि और परमार्थ का घर समझ कर ब्रह्मा ने काशी की अच्छी तरह रचना की और विष्णु ने उसका पालन किया। शिवजी ने प्रलयकाल के समय भी उसे अपने त्रिशूल पर रख कर बचाया। नीच कलिकाल मृत्यु के वश होकर उसे भी नष्ट करना चाहता है। राजा परीक्षित ने कलियुग को छोड़ कर जो उसके प्रति दया की और उस दुष्ट का भला किया, उसने उस भलाई को नष्ट कर दिया। हे हनुमानजी, अब मेरी रक्षा कीजिये। हे करुणा के घर रामचन्द्रजी, मेरी रक्षा कीजिये। कलियुग रूपी कसाई काशीरूपी कामधेनु की हत्या कर रहा है।

अलंकार—रूपक।

विरची विरंचि की, वसति विस्वनाथ की जो,
प्रानहूँ ते प्यारी पुरी केसव कृपाल की।
ज्योतिरूप-लिंगमई, अगनित-लिंगमई,
मोक्ष-वितरनि, विदरनि जग-जाल की।
देवी देव देव-सरि सिद्ध मुनिवर वास,
लोपति विलोकत कुलिपि भोंड़े भाल की।
हा-हा करै 'तुलसी' दयानिधान राम! ऐसी
कासी की कदर्थना कराल कलिकाल की॥ १८२॥

शब्दार्थ—मोक्ष-वितरनि=मोक्ष बाँटने वाली। विदरनि=नष्ट करने वाली। लोपति=लुप्त कर देती है। भोंड़े=बुरे। कदर्थना=दुर्दशा।

पद्यार्थ—जिसे ब्रह्मा ने बनाया, जो विश्वनाथ की नगरी है, जो कृपालु विष्णु की प्राणों से प्यारी नगरी है, जहां द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक लिंग विराजमान है, जहां असंख्य शिव-लिंग हैं, जो मोक्ष को बांटने वाली और संसार के झंझटों को नष्ट करने वाली है, जहां देवता, देवी, गंगाजी, सिद्ध, मुनि लोग वास करते हैं और दुर्भाग्य की बुरी रेखायें जिसके देखने मात्र से नष्ट हो जाती हैं, ऐसी काशी को भयानक कलिकाल ने बिलकुल दुर्दशा कर डाली है। तुलसीदासजी प्रार्थना करते हैं कि हे दयालु रामचन्द्रजी, काशी की रक्षा कीजिये।

आश्रम बरन कलि-बिवस बिकल भए,
निज-निज मरजाद मोटरी-सी डार दी।
संकर सरोष महामारि ही तें जानियत,
साहिब सरोष दुनी दिन-दिन दार दी।
नारि-नर आरत पुकारत, सुनै न कोऊ,
काहू देवतनि मिलि मोटी मूठि मार दी।

'तुलसी' सभीत-पाल सुमिरे कृपालु राम,
समय सुकरुना सराहि सनकार दी॥ १८३ ॥

शब्दार्थ—मोटरी = गठरी। दारदी = दरिद्री। मोटो मूठि मार दी = ख़ूब अच्छी तरह से जादू कर दिया। सनकारदी = इशारा कर दिया।

पद्यार्थ—चारों आश्रम और चारों वर्ण कलियुग के कारण व्याकुल हो गये हैं और उन्होने अपनी अपनी मर्यादा को गठरी की तरह दूर फेंक दिया है। शंकरजी का क्रोधित होना तो महामारी ही से जाना जाता है और मालिक के क्रोधित होने से दिनो-दिन दुनिया में दरिद्री बढ़ते जाते हैं। स्त्री और पुरुष दुखी होकर पुकार रहे हैं, लेकिन कोई उस पर ध्यान नहीं देता। जान पड़ता है, देवताओं ने मिलकर जादू सा कर दिया है। तुलसीदासजी कहते हैं कि भयभीतों के रक्षक कृपालु रामचन्द्रजी को स्मरण करने से उन्होंने अपनी करुणा की सराहना कर मौके पर उसे इशारा कर दिया। अर्थात् रामचन्द्रजी की दया करने से महामारी दूर हो गई।